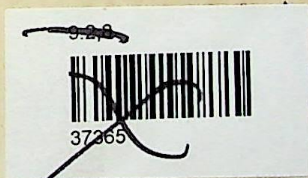
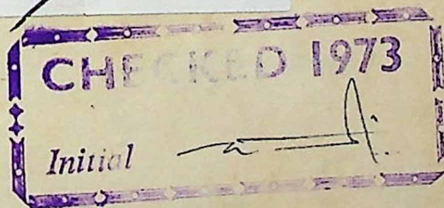
सत्यनारायण कविरत्न की जीवनी


37365


CHECKED 1973
Initial

सुलभ-साहित्य-माला १८

कविरत्न सत्यनारायणजी

की

जीवनी

लेखक

पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी

प्रकाशक

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

प्रथमवार १००० } संवत् १९८३ वि० { १)



प्रकाशक
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग



मुद्रक—
काव्यतीर्थ पं० विश्वम्भरनाथ वाजपेयी
ओंकार प्रेस, प्रयाग

Birth is a mystery, death is a mystery.
Between them lies the tableland of life.

"जनम-मरन जग के रहस, जटिल गहन गम्भीर।
दुहुँ बिच जीवन उच्च भुवि, विविध कुतूहल भीर॥"



श्रीमान् महाराजा सर सयाजीराव गायकवाड़, बड़ौदा-नरेश

कृष्ण-प्रेस, प्रयाग।

कृतज्ञता-प्रकाश



श्रीमान् बड़ौदा-नरेश महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ महोदय ने बम्बई के सम्मेलन में स्वयं उपस्थित होकर जो पाँच सहस्र रुपये की सहायता सम्मेलन को प्रदान की थी उसी सहायता से सम्मेलन इस "सुलभ-साहित्य-माला" के प्रका-शन का कार्य कर रहा है। इस "माला" में जिन सुन्दर और मनोरम ग्रन्थ-पुष्पों का ग्रन्थन किया जा रहा है उनकी सुरभि से समस्त हिन्दी संसार सुवासित हो रहा है। इस "माला" के द्वारा जो हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि हो रही है उसका मुख्य श्रेय श्रीमान् बड़ौदा-नरेश महोदय को है। श्रीमान् का यह हिन्दी-प्रेम भारत के अन्य हिन्दी-प्रेमी श्रीमानों के लिए अनुकरणीय है।

निवेदक—

मन्त्री,

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन,

प्रयाग।

विषय-सूची

दो फूल

प्रिय पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी के रचे हुए अपने मित्र के इस साहित्यिक श्राद्ध के अवसर पर उनकी स्वर्गीय आत्मा के चरणों में श्रद्धा के दो फूल मैं भी अर्पित करना चाहता हूं।

कविरत्न पं० सत्यनारायणजी का जीवन आदि से अन्त तक, सवाह्याभ्यन्तर, अत्यन्त मधुर था। मधुरता ही उनके जीवन का रहस्य है। आगरे में मेरा उनका तीन वर्ष तक घनिष्ट सत्संग रहा। ऐसा एक दिन भी नहीं बीतता था कि, जब वह शहर में आवें, और मेरे द्वार पर आकर मधुरता की आवाज़ न लगावें। चाहे जितनी जल्दी में हों, दो मिनट अपने सम्भाषण का सुख मुझे अवश्य दे जाते थे। उनका हृदय जितना कोमल था, उनके वचन और उनके कार्य भी उतने ही कोमल थे। तीन वर्ष के अन्दर मैंने उनको कभी क्रोधित होते हुए नहीं देखा। मेरा उनका मतभेद भी जब कभी उपस्थित होता, इतनी कोमलता से अपना रोष प्रकट करते कि उनके उस रोष में भी मैं रमणीयता का अनुभव करता था—उनके उस रूठने में मुझे एक प्रकार का आनन्द आ जाता था। उन्होंने अपने इस छोटे जीवन में

आनन्द, मधुरता और कोलमता एक क्षण भर के लिए भी नहीं छोड़ी। उनकी याद आते ही मुझे वेद का यह बचन याद आ जाता है :—

मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम्।
वाचा वदामि मधुमद् भूमासौ मधुसदृशः॥

इस बचन को भगवान ने उनके जीवन में स्वाभाविक ही चरितार्थ कर रक्खा था। उनकी मधुर मिलन की मूर्ति मित्रों की स्मृति से कभी न जायगी।

यदि रमणीयता ही कवित्व का लक्षण है, तो सत्यनारायण जी मूर्तिमान् कवित्व का अवतार थे। उनका बोलना-चालना, हँसना, सब कवितामय था। उनका कोई कार्य कविता से ख़ाली नहीं था। व्रजभाषा की कविता का तो—कम से कम अभी कुछ दिन के लिए जब तक कोई दूसरा वैसा कवि पैदा न हो—उनसे अन्त होगया। उनको "व्रज-कोकिल" कहना सदैव शोभा देगा।

इस व्रजकोकिल का यह सुन्दर चरित्र हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की ओर से प्रकाशित होना हिन्दी-संसार के लिए सच-मुच ही बड़े सौभाग्य की बात है। परमात्मा इसके लेखक को यश दे!

लक्ष्मीधर वाजपेयी
साहित्य-मंत्री

चार आँसू



डित सत्यनारायण, सरलता की—विनय की—मूर्त्ति, स्नेह की प्रतिमा और सज्जनता के अवतार थे। जो उनसे एक बार मिला, वह उन्हें फिर कभी नहीं भूला। मुझे वह दिन और वह दृश्य अबतक याद है। सन् १९१५ ई० में, (अक्टूबर के अन्तिम सप्ताह में) उनसे प्रथमवार साक्षात्कार हुआ था। पं० मुकुन्दराम का तार पाकर वे ज्वालापुर आये थे। मैं उन दिनों वहीँ महा-विद्यालय में था। वे स्टेशन से सीधे (पं०मुकुन्दराम के साथ) पहले मेरे पास पहुँचे। मैं पढ़ा रहा था। इससे पूर्व कभी देखा न था, आने की सूचना भी न थी। सहसा एक सौम्यमूर्त्ति को विनीत भाव से सामने उपस्थित देखकर मैं आश्चर्य-चकित रह गया। दुपल्लू टोपी, वृन्दावनी बगलबन्दी, घुटनों तक धोती, गले में अँगोछा। यह वेष-भूषा थी। आँखों से स्नेह बरस रहा था। भीतर की स्वच्छता और सदाशयता मुस्कराहट के रूप में चेहरे पर झलक रही थी। उस समय 'किरातार्जुनीय' का पाठ चल रहा था। व्यास-पाण्डव-समागम का प्रकरण था। व्यासजी के वर्णन में भारवि की ये सूक्तियाँ छात्रों को समझा रहा था:—

"प्रसह्य चेतःसु समासजन्तमसंस्तुतानामपि भावमार्द्रम्"
"माधुर्य विस्रम्भ-विशेष-भाजा कृतोपसंभाषमिवेक्षितेन"

इन सूक्तियों के मूर्तिमान् अर्थ को अपने सामने देखकर मेरी आँखें खुल गईं। इस प्रसंग को सैकड़ों बार पढ़ा, पढ़ाया था, पर इनका ठीक अर्थ उसी दिन समझ में आया। मैं समझ गया कि हों न हों ये सत्यनारायणजी हैं; पर फिर भी परिचय-प्रदान के लिये पं० मुकुन्दराम को इशारा कर ही रहा था कि आपने तुरन्त अपना यह मौखिक 'विज़िटिंग कार्ड' हृदयहारी टोन में स्वयं पढ़ सुनाया :—

"नवलनागरी-नेह-रत, रसिकन ढिँग बिसराम।
आयौ हौं तुव दरस कौं, सत्यनरायन नाम॥"

मुझे याद है, उन्होंने 'निरत नागरी' कहा था, (२२५ तथा २२८ पृष्ठ पर, इसी रूप में, यह छपा भी है) 'निरत' 'रत' में पुनरुक्ति सी समझकर मैंने कहा—'नवलनागरी' कहिये तो कैसा? फ़िक़रा चुस्त हो जाय। हस्बहाल मज़ाक़ (समयोचित विनोद) समझकर वे एक अजीब भोलेपन से मुसकराने लगे, बोले—"अच्छा, जैसी आज्ञा।"

यह पहली मुलाक़ात थी। इस मौके पर शायद दो दिन पं० सत्यनारायणजी ज्वालापुर ठहरे थे। उनके मुख से कविता-पाठ सुनने का अवसर भी पहलीवार तभी मिला था।

सत्यनारायणजी से मेरी अन्तिम भेंट दिसम्बर १९१७ में हुई थी, जब वे 'मालतीमाधव' का अनुवाद समाप्त करके हम लोगों को--मुझे और साहित्याचार्य श्री पण्डित शालग्रामजी शास्त्री को—सुनाने के लिये ज्वालापुर पधारे थे। परामर्शानुसार अनुवाद की पुनरालोचना करके छपाने से पहले एक बार फिर दिखाने को वे कह गये थे, पर फिर न मिल सके। उनके जीवनकाल में दो बार मैं धाँधूपुर भी उनसे मिलने गया था। एक बार की यात्रा में श्री पं० शालग्रामजी साहित्याचार्य भी साथ थे। उनकी मृत्यु के पश्चात् भी दो-तीन बार मैं धाँधूपुर गया हूँ और सत्य-रायण की याद में जी खोलकर रो आया हूँ। अब भी जब उनकी याद आती है, जी भर आता है। एक प्रोग्राम बनाया था कि दो-चार व्रजभाषा-प्रेमी मित्र मिलकर छः महीने व्रज में घूमें, व्रज की रज में लोटें, गाँवों में रहकर जीवित व्रजभाषा का अध्ययन करें, व्रजभाषा के प्राचीन ग्रन्थों की खोज करें, व्रजभाषा का एक अच्छा प्रामाणिक कोष तयार करें। ऐसी बहुत सी बातें सोची थीं, जो उनके साथ गयीं और हमारे जी में रह गयीं! अफ़सोस!

"ख़्वाब था जो कुछ कि देखा, जो सुना अफ़साना था!"

सत्यनारायण के कविता-पाठ का ढंग बड़ा ही मधुर और मनो-हारी था। सहृदय भावुक तो बस सुनकर बे-सुध से हो जाते थे, वे स्वयं भी पढ़ते समय भावावेश की सी मस्ती में झूमने लगते

थे। ब्रजभाषा की कोमल कान्त पदावली और सत्यनारायणजी का कोकिलकण्ठ, "हेम्नः परमामोदः" — सोने-सुगन्ध का योग और मणिकाञ्चन का संयोग था।

पठ्यमान — गीयमान — विषय का आँखों के सामने चित्र सा खिंच जाता था और वह हृदय-पट पर अङ्कित हो जाता था। सुनते सुनते तृप्ति न होती थी। कविता सुनाते समय वे इतने तल्लीन हो जाते थे कि थकते न थे। सुनाने का जोश और स्वर-माधुर्य, उत्तरोत्तर बढ़ता जाता था। उच्चारण की विस्पष्टता, स्वर की स्निग्ध गम्भीरता, गले की लोच में सोज़ और साज़ तो था ही, इसके सिवा एक और बात भी थी, जिसे व्यक्त करने के लिये शब्द नहीं मिलता। किसी शायर के शब्दों में यही कह सकते हैं :—

"ज़ालिम में थी इक और बात इसके सिवा भी।"

सत्यनारायणजी के श्रुति-मधुर स्वर में सचमुच मुरली-मनोहर के वंशीरव के समान एक सम्मोहनी शक्ति थी, जो सुनने वालों पर जादू का सा असर करती थी। सुननेवाला चाहिये, चाहे जब तक सुने जाय, उन्हें सुनाने में उज्र न था। एक दिन हमलोग उनसे निरन्तर ६—७ घंटे कविता सुनते रहे, फिर भी न वे थके, न हमारा जी भरा।

सत्यनारायण स्वाभाविक सादगी के पुतले थे; गुदड़ी में छिपे लाल थे। उनकी भोली भाली सूरत, ग्रामीण वेषभूषा, बोल

चाल में ठेठ व्रजभाषा, देख-सुनकर अनुमान तक न हो सकता था कि इस चोले में इतने अलौकिक गुण छिपे हैं ! उनकी सादगी सभा-सोसाइटियों में उनके प्रति अशिष्ट व्यवहार का कारण बन जाती थी। इसकी बदौलत उन्हें कभी-कभी धक्के तक खाने पड़ते थे। प्लेटफार्म की सीढ़ियों पर मुश्किल से बैठने पाते थे ! इस जीवनी में ऐसे कई प्रसङ्गों का उल्लेख है। इस प्रकार की एक घटना उन्होंने स्वयं सुनायी थी:—

मथुराजी में स्वामी रामतीर्थजी महाराज आये हुए थे। ख़बर पाकर सत्यनारायणजी भी दर्शन करने पहुँचे। स्वामीजी का व्याख्यान होने को था; सभा में श्रोताओं की भीड़ थी; व्याख्यान का नान्दी पाठ-मंगलाचरण - हो रहा था। अर्थात् कुछ भजनीक भजन अलाप रहे थे। सद्यःकवि लोग अपनी-अपनी ताज़ी तुकबन्दियाँ सुना रहे थे। सत्यनारायणजी के जी में भी उमङ्ग उठी; ये भी कुछ सुनाने को उठे। व्याख्यान-वेदि की ओर बढ़े, आज्ञा माँगी, पर 'नागरिक' प्रबन्धकर्ताओं ने इस "कोरे सत्य, ग्राम के वासी" को रास्ते में ही रोक दिया। दैवयोग से उपस्थित सज्जनों में कोई इन्हें पहचानते थे। उन्होंने कह-सुनकर किसी तरह ५ मिनट का समय दिला दिया। श्रीकृष्णभक्ति के दो सवैये इन्होंने अपने ख़ास ढंग में इस प्रकार पढ़े कि सभा में सन्नाटा छा गया; भावुकशिरोमणि श्रीस्वामी रामतीर्थजी सुनकर मस्ती में झूमने लगे। ५ मिनट का नियत समय समाप्त होने पर जब ये बैठने

लगे तब स्वामीजी ने आग्रह और प्रेम से कहा कि अभी नहीं, कुछ और सुनाओ। ये सुनाते गये और स्वामीजी अभी और, अभी और, कहते गये; व्याख्यान सुनाना भूल कर कविता सुनने में मग्न हो गये। ५ मिनिट की जगह पूरे पौन घंटे तक कविता-पाठ जारी रहा। मथुरा की भूमि, व्रजभाषा में श्रीकृष्णचरित की कविता, भावुक भक्त-शिरोमणि स्वामी रामतीर्थ का दरबार, इन्हें और क्या चाहिये था :—

"मद्भाग्योपचयादयं समुदितः सर्वोगुणानां गणः।"

का सुन्दर सुयोग पाकर रसवृष्टि से सबको शराबोर कर दिया—यमुना तट पर 'व्रजभाषा सुरसरी की हिलोर में सबको डुबो दिया। कहा करते थे. वैसा आनन्द कविता-पाठ में फिर नहीं आया।

हिन्दी-साहित्य की निःस्वार्थ सेवा और व्रजभाषा की कविता का प्रचार, लोकरुचि को उसकी ओर आकृष्ट करना, व्रज-कोकिल सत्यनारायण के जीवन का मुख्य उद्देश था। उन्होंने भिन्न-भाषा-भाषी अनेक प्रसिद्ध पुरुषों के अभिनन्दन में जो-प्रशस्तियाँ लिखी हैं उनमें प्रशस्तिपात्रों से यही अपील की है:—

"जैसी करी कृतारथ तुम अँग्रेजी भाषा।
तिमि हिन्दी-उपकार करहुगे ऐसी आशा॥"

—(कवीन्द्र रवीन्द्र के अभिनन्दन में)

"नित ध्यान रहे तव हृदय में ईशचरन-ग्ररविन्द को।
प्रिय सजन, मित्र, निज छात्रजन हिन्दी हिन्दू हिन्द को॥"

—(डाब्सन साहब के अभिनन्दन में)

स्वामी रामतीर्थजी के वे इसलिये भी अनन्यभक्त थे कि उन्हें - "व्रज-व्रजभाषा-भक्त भक्ति-रस रुचिर रसायन" समझते थे। (अपने समय के महापुरुषों में सबसे अधिक भक्ति उनकी स्वामी रामतीर्थजी ही में थी। स्वामी जी भी सत्यनारायणजी के गुणों पर मुग्ध थे। उन्हें अपने साथ अमेरिका ले जाने के लिये बहुत आग्रह करते रहे, पर सत्यनारायणजी अपने गुरु की बीमारी के कारण न जासके, और इसका सत्यनारायणजी को सदा पश्चात्ताप रहा)। अस्तु सत्यनारायण, सभा-सोसाइटियों में भी इसी उद्देश से, कष्ट उठाकर सम्मिलित होते थे, जैसा कि उन्होंने एक बार अपने एक मित्र से कहा था—

"मैं तो व्रजभाषा को पुकार लै कें जरूर जाऊंगो" और कछू नायँ तो व्रजभाषासुरसरी को हिलोर में सब को भिजायँ तो आऊंगो!

सत्यनारायण मनसा, वाचा, कर्मणा, हिन्दी के सच्चे उपासक थे, और अपनी वेषभूषा, आचार-व्यवहार और भाव-भाषा से प्राचीन हिन्दुत्व और भारतीयता के पूरे प्रतिनिधि थे। बी०ए० तक अँगरेज़ी पढ़कर और अँगरेज़ी के विद्वानों की संगति में रात-दिन रहकर भी वे अँगरेज़ी से बचते थे। अनावश्यक अँगरेज़ी बोलने का हमारे नवशिक्षितों को कुछ व्यसन सा होगया है। इनकी हिन्दी

में भी तीन तिहाई अँगरेज़ी की पुट रहती है। सत्यनारायण इस व्यापक दुर्व्यसन का अपवाद थे।

एक बार जब वे ज्वालापुर में आये हुए थे, हिन्दी-भाषा-भाषी एक नवयुवक साधु से मैंने उनका परिचय कराया। मैं भूल से यह भी कह गया कि सत्यनारायणजी अँगरेज़ी के भो विद्वान् हैं। फिर क्या था, यह सुनते ही साधु साहब प्लुतस्वर में हाँ ३ कहकर लगे अँगरेज़ी उगलने। यद्यपि वार्तालाप का विषय हिन्दी-भाषा का प्रचार था।'साधु महात्मा'बराबर अँगरेज़ी बूँकते रहे और सत्यनारायणजी अपनो सीधी-सादी हिन्दी में उत्तर देते रहे। कोई एक घन्टे तक यह अँगरेज़ी-हिन्दी-संग्राम चलता रहा, पर सत्यनारायणजी ने एक वाक्य भी अँगरेज़ी का बोलकर न दिया वे अपने व्रत से न डिगे। अन्त में हारकर साधु साहब ने पूछा—'क्या अँगरेज़ी बोलने की आपने क़सम तो नहीं खा रक्खी ?, इन्होंने गम्भीरता से कहा—"मैं किसी भी ऐसे मनुष्य के साथ, जो टूटी-फूटी भी हिन्दी बोल समझ सकता है,अँगरेज़ी नहीं बोलता। हिन्दी बोलने समझने में सर्वथा ही असमर्थ किसी अँगरेज़ीदाँ से वास्ता पड़ जाय तो लाचारी है, तब अंग्रेज़ी भी बोल लेता हूँ।" उक्त साधु अँगरेज़ी के कोई बड़े विद्वान् न थे, इन्ट्रेंस तक पढ़े थे। कुछ दिनों मद्रास की हवा खा आये थे और उन्हें अँगरेज़ी बोलने का संक्रामक रोग लग गया था।

सत्यनारायणजी ने समय अनुकूल न पाया। कविता के लिये यह समय वैसे ही प्रतिकूल है, फिर ब्रजभाषा की कविता

से तो लोगों को कुछ राम नाम का वैर हो गया है। व्रजभाषा की कविता का उत्कर्ष तो क्या, उसकी सत्ता भी आजकल के साहित्य-धुरन्धरों को सह्य नहीं। सत्यनारायणजी के रोम रोम और श्वास श्वास में व्रजभाषा और व्रजभूमि का अनन्य प्रेम भरा था। यह पूर्व जन्म की प्रकृति थी—

(सतीव योषित् प्रकृतिश्च निश्चला पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि)

जन्मान्तरीण संस्कार थे, जो उन्हें बरबस इधर खींच रहे थे!

"मोइ तो व्रज में ही छोड़ि कें अन्त कहूँ अच्छौ नाय लगै गौ! मैं तो व्रज में ही आऊँगौ—मेरी व्रज की ही वासना है।"

(पृष्ठ २४८)

उनके इन उद्गारों से दृढ़ धारणा होती है कि अष्टछापवाले किसी महाकवि महात्मा की आत्मा सत्यनारायण के रूप में उतरी थी। अन्यथा इस......काल में यह सब कुछ कब सम्भव था! यह तो दलबन्दी का ज़माना है, विज्ञापनबाज़ी का युग है, सब प्रकार की सफलता 'प्रोपगंडा' पर निर्भर है, जिसे इन साधनों का सहारा मिला, वह ग़ुबारा बनकर ख्याति के आकाश में चमक गया। ग़रीब सत्यनारायण को कोई भी ऐसा साधन उपलब्ध न था। यही नहीं, भाग्य से उन्हें कुछ मित्र भी ऐसे मिले जिन्होंने उनके बेहद भोलेपन को अपने मनोविनोद की सामग्री या तफ़रीह तबा का सामान समझा; जिन्होंने दाद देने या उत्साह बढ़ाने की जगह उनकी तथा व्रजभाषा के अन्य कवियों की कविताओं की हास्योत्पादक समालोचना करना ही सन्मित्र का कर्तव्य समझा

था, और हाय उनकी उस जन्म भर की कमाई 'हृदय-तरङ्ग' को, जिसे याद कर करके वे सदा दुःख के सांस लेते रहे, दरिद्र के मनोरथ की गति को पहुँचानेवाले भी तो उनके सुहृच्छिरोमणि कोई सज्जन ही थे। ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में पलकर और ऐसी क़द्रदान सोसाइटी पाकर भी आश्चर्य है, सत्यनारायण "कवि-रत्न" कैसे कहला गये। इसे स्वामी रामतीर्थ जैसे सिद्ध महात्मा का आशीर्वाद या अदृष्ट की महिमा ही समझना चाहिए।

सत्यनारायण के सद्गुणों का पूर्ण परिचय अभी संसार को प्राप्त नहीं हुआ था, नन्दन कानन का यह पारिजात अभी खिलने भी न पाया था कि संसार की विषैली वायु के झोकों ने झुलस दिया! व्रजकोकिल ने पञ्चम में आलाप भरना प्रारम्भ ही किया था कि निर्दय काल-व्याध ने गला दबा दिया! भारतीय आत्मा कृष्ण को पुकारती ही रह गयी और कोकिल उड़गया! "वह कोकिल उड़ गया, गया, वह गया, कृष्ण दौड़ो, आओ।"

संसार में समय-समय पर और भी ऐसी दुर्घटनाएं हुई हैं; पर सत्यनारायण का इस प्रकार आकस्मिक वियोग भारत-भारती हिन्दी-भाषा का परम दुर्भाग्य ही कहा जायगा।

इस जीवनी में सत्यनारायण के सार्वजनिक जीवन पर, उनकी साहित्य-सेवा और व्यक्तित्व पर, अनेक विद्वानों ने भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से विचार किया है, और ख़ूब किया है; कोई बात बाक़ी नहीं छोड़ी। मैं भी प्यारे सत्यनारायण की याद में चार आंसुओं

की जलाञ्जलि दे रहा हूँ। मेरी इच्छा थी कि उनकी कविता पर (और यही उनका वास्तविक जीवन था) ज़रा और विस्तृत रूप से विचार करूँ। पर सोचने पर अपने में इस काम की पात्रता न पायी, क्योंकि मैं व्रजभाषा की कविता का पक्षपाती प्रसिद्ध हूँ, और सत्यनारायण मेरे मित्र थे। सत्यनारायण की कविता की समालोचना का यथार्थ अधिकारी कोई तटस्थ विद्वान् ही हो सकता है, जो इस समय तो नहीं पर कभी आगे चलकर सम्भव है—

"कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।"

दुर्भाग्य की बात है कि सत्यनारायणजी की उत्कृष्ट कविता का अधिकांश 'यार लोगों की इनायत' से नष्ट होगया। जिसके लिये वे अन्त समय तक तड़पते रहे। फिर भी उनकी बची-खुची जो कविता इस समय उपलब्ध है, वह उन्हें कमसे कम कविरत्न प्रमाणित करने के लिये, मैं समझता हूँ, पर्याप्त है। भले ही कुछ समालोचक उन्हें 'महाकवि' मानने को तयार न हों; अपनी-अपनी समझ ही तो है। सत्यनारायण के सम्बन्ध में यह विवाद उठ चुका है। व्रजभाषा के प्रवीण पारखी श्रीवियोगी हरिजी ने "व्रजमाधुरीसार" में लिखा है—

"इसमें सन्देह नहीं कि सत्यनारायणजी व्रजभाषा के एक महाकवि थे"

इस पर एक विद्वान् समालोचक ने यह कर आपत्ति की—"...सत्यनारायण को महाकवि कहना उनकी स्तुति भले ही हो, पर उसका औचित्य भी मानने के लिये कमसे कम हम तो तय्यार नहीं हैं"।

इस पर वियोगी हरिजी ने "नम्र निवेदन" किया—

"जो कवि एक आलोचक की दृष्टि में महाकवि है वही दूसरे की नज़र में साधारण कवि भी नहीं है। स्वर्गीय सत्यनारायण को अभी चाहे कोई महाकवि न माने, पर कुछ काल के बाद वे निःसंदेह महाकवियों की श्रेणी में स्थान पायँगे। यह अनुमान मुझे महाकवि भवभूति वर्डस्वर्थ और देव का स्मरण करके हुआ है।"—

—"सम्मेलन-पत्रिका", भा० ११, अं० १०।

भगवान् करे ऐसा ही हो। अब न सही, आगे चलकर ही सत्यनारायण को समझनेवाले पैदा हों और श्रीवियोगी हरिजी की इस सूक्ति का अनुमोदन करें—

"जगब्योहारन भोरो कोरो गाम-निवासी।
ब्रज-साहित्य-प्रवीन काव्य-गुन-सिन्धु-विलासी।
रचना रुचिर बनाय सहज ही चित आकरषै।
कृष्ण-भक्ति अरु देस-भक्ति आनँद रस बरषै।
पढ़ि 'हृदय-तरंग' उमंग उर प्रेमरंग दिन-दिन चढ़ै।
सुचि सरल सनेही सुकवि श्रीसतनारायन जसु बढ़ै!"

— कविकीर्तन

सत्यनारायण की जीवनी करुण-रसका एक दुःखान्त महानाटक है। जिस प्रतिकूल परिस्थिति में उन्हें जीवन बिताना पड़ा और फिर जिस प्रकार उन्हें "अनचाहत को संग" के हाथों तंग आकर समय से पहले ही संसार से कूच करने के लिये विवश होना पड़ा, उसका हाल पढ़-सुनकर किसी भी सहृदय को उनकी

दयनीय भाग्यहीनता पर दुःख और समवेदना हो सकती है। पर एक बात में सैकड़ों से वे बड़े ही सौभाग्यशाली सिद्ध हुए। गहन अन्धकार में भटकते को दीपक दीख गया; अपार सागर में थके हुए पंछी को मस्तूल मिल गया; सत्यनारायण को मरने के बाद ही सही, चुपकी दाददेने वाला एक 'भारतीय हृदय', मुर्दा हड्डियों में जान डालनेवाला-'यशःशरीर पर दया दिखानेवाला— एक 'मसीहा' मिल गया। जिसके कारण सत्यनारायण की स्वर्गीय, संतप्त आत्मा अपने सांसारिक जीवन की समस्त दुःखदायी दुर्घटनाओं को भूलकर सन्तोष की साँस ले सकती है, और अन्यान्य परलोकवासी हिन्दी के वे अभागे कवि, लेखक जिनका नाम भी यह कृतघ्न और स्वार्थी संसार भूल गया, सत्यनारायण की इस ख़ुशनसीबी पर रश्क कर सकते हैं, इस सौभाग्य-शीलिता को स्पृहा की दृष्टि से देख सकते हैं। यही नहीं, हिन्दी के अनेक जीवित लेखक और कवि भी, यदि उन्हें यह विश्वास हो जाय कि मुर्दों को ज़िंदा करनेवाला कोई ऐसा 'मसीहा' हमें भी मिल जायगा, तो सुखपूर्वक इस संसार से सदा के लिये विदा होने को, उस लेडी की तरह तयार हो जायँ, जिसने आगरे के "ताज" को देखकर अपने पति द्वारा यह पूछा जाने पर कि कहो इस अद्भुत इमारत के विषय में तुम्हारी क्या राय है? उत्तर दिया था कि "मैं इसके सिवा कुछ नहीं कह सकती कि यदि आप मेरी क़बर पर ऐसा स्मारक बनावें तो मैं आज ही मरने को तयार हूँ।" मेरा मतलब इस जीवनी के लेखक 'भारतीय हृदय' पंडित

बनारसीदासजी चतुर्वेदी से है। चतुर्वेदीजी की पर-दुःख-कातरता और दीनबन्धुता प्रसिद्ध है, प्रवासी भारतवासियों की राम-कहानी सुनाने में जो काम आपने किया है वह बड़े-बड़े दिग्गज लीडरों से भी न बन पड़ा।

अब उससे भी महत्त्व-पूर्ण कार्य में आपने हाथ लगाया है। अर्थात् साहित्य-सेवियों की (जिनकी रामकहानी प्रवासी भारतवासियों से कुछ कम करुणाजनक नहीं है) जीवनी लिखने का पुण्य कार्य प्रारम्भ कर दिया है, जिसका श्रीगणेश सत्य-नारायण की इस जीवनी से हुआ है। इसके सम्पादन में जितना परिश्रम चतुर्वेदीजी ने किया है, वह उन्हीं का काम था और इसकी जितनी दाद दी जाय, कम है। हिन्दी-संसार में अपने ढंग का यह बिलकुल नया अनुष्ठान है। यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि हिन्दी के किसी भी कवि या लेखक की जीवनी का मसाला, उसकी मृत्यु के बाद, इस परिश्रम, लगन और खोज के साथ इकट्ठा नहीं किया गया। जाननेवाले जानते हैं कि सत्य-नारायण की जीवनी से सम्बन्ध रखनेवाली एक-एक चिट्ठी के के लिये जीवनी-लेखक को कितना भगीरथ प्रयत्न करना पड़ा है, यदि इन सब बातों का उल्लेख किया जाय तो एक ख़ासा जासूसी उपन्यास तयार हो जाय। जो चाहे सत्यनारायणजी की जीवनी के उस मसाले को हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कार्यालय में जाकर देख सकता है।

सच तो यह है कि सत्यनारायणजी की यह जीवनी पं० बनारसीदासजी ही लिख सकते थे। यों कहने को सत्यनारायण जी के अनेक अन्तरङ्ग और गाढ़े मित्र थे और हैं; पर मित्रता का नाता चतुर्वेदीजी ने ही निबाहा है। मानो मरते वक्त सत्यनारायण की आत्मा इनके कान में कह गयी थी :—

"यों तो मुँह देखे की होती है मुहब्बत सबको।
मैं तो तब जानूँ मेरे बाद मेरा ध्यान रहे॥"

जीवनी लिखने का उपक्रम करके चतुर्वेदीजी प्रवासी-भारत-वासियों के पुराने राजरोग में फँसकर जीवनी के कार्य को स्थगित कर बैठे थे, इस पर मैंने तक़ाज़े के दो तीन पत्र लिखकर उन्हें जीवनी की याद दिलाई, शीघ्र पूरा करने की प्रेरणा की, और पूछा कि क्या इस पचड़े में पड़ कर सत्यनारायण को भी भूल गये ? इसके उत्तर में जो पत्र उन्होंने लिखा, उसके एक-एक शब्द से निःस्वार्थ प्रेम, गहरी सहृदयता और सच्ची सहानुभूति टपकती है। मैं उस पत्र का कुछ अंश इस अभिप्राय से यहाँ उद्धृत करना चाहता हूँ कि मित्रता का दम भरनेवाले और बात-बात पर सहृदयता की डींग मारनेवाले हम लोग उसे पढ़ें, सोचें और हो सके तो कुछ शिक्षा भी ग्रहण करें। (चतुर्वेदीजी इस "दोस्त-फ़रोशी" के लिये मुझे क्षमा करें)। 'भारतीय हृदय' ने लिखा था:—

"... ...सत्यनारायण के अन्य मित्र उन्हें भले ही भूल जायँ; पर मैं कभी नहीं भूल सकता। जितना लाभ उनकी जीवनी से मुझे हुआ है, उतना

किसी दूसरे को नहीं हो सकता। उनकी कविताओं ने मेरा मनोरंजन किया है, उनके गृहजीवन के दुःखान्त नाटक ने मुझे कितनी ही बार रुलाया है, उनकी निःस्वार्थ साहित्य-सेवा ने मेरे सामने एक अनुकरणीय दृष्टान्त उपस्थित किया है, उनकी 'हृदय-तरङ्ग' ने मुझे कीर्ति प्रदान की है, उनकी सरलता के स्मरण ने मुझे समय-समय पर अलौकिक आनन्द दिया है, (उनके सा भोलापन भला कहां मिल सकता है ?) और उनके निष्कपट व्यवहार और प्रेमपूर्ण स्वभाव की स्मृति ने मेरे हृदय को कितनी ही बार द्रवित करके पवित्र किया है ।... ... ...'जीवन के कण्टकाकीर्ण पथ में जब निराशा के मेघ हमें भयभीत करेंगे, जब चारों ओर व्याप्त 'व्यापारिकता' का अन्धकार चित्त को बेचैन करेगा, जब धन का भूत साहित्य-क्षेत्र को अपनी भयंकर क्रीड़ाओं से कलङ्कित करेगा, उस समय सत्यनारायण का निःस्वार्थ साहित्यमय जीवन विद्युज्ज्योति का काम देकर हमारे पथ को आलोकित करेगा।" ... ... 'सत्यनारायणजी उस संक्रामक भयंकर रोग से, जिसका नाम व्यापारिकता Commercialifm है और जो कुछ हिन्दी - साहित्य-सेवियों को बेतरह ग्रस रहा है, बिलकुल मुक्त थे। न उन्होंने धन के लिये लिखा, न कीर्ति के लिये, जैसे कोकिल का स्वभाव ही मधुर स्वर से गान करना है उसी प्रकार उस ब्रज-कोकिल का स्वभाव ही सुन्दर कविता का गान करना था'... 'ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे अनेक साहित्यसेवी, 'सहृदयता' के पीछे हाथ धोकर पड़े हैं, दूसरों को उत्साहित करना दूसरे के गुणों की प्रशंसा करके उन्हें ऊँचे उठाना, धैर्य-पूर्वक दूसरों की आकांक्षाओं को सुनना और उन्हें यथोचित परामर्श देना, ये बातें तो वे जानते ही नहीं । विद्वान् तो संसार में बहुत से हैं, लेखक भी सहस्रों हैं, पर सहृदय कितने हैं ? सच बात तो यह है कि हृदयहीन विद्वान् के सम्मुख मेरी तबीयत तो

घबराती है, मुझे इस बात की आशंका है कि हिन्दी-साहित्य-सेवी, व्याप-रिकता के कारण अपने कोमल भावों को तिलांजलि देकर शुष्क "पुस्तक-लेखक-मशीन" बनते जा रहे हैं। ... ...।"

जीवनी लिख चुकने के बाद चतुर्वेदीजी ने एक पत्र में मुझे लिखा था :—

..."सत्यनारायणजी के विषय में मैंने कई काम सोचे थे।

(१) बचीखुची फुटकर कविताओं का संग्रह—यह 'हृदय-तरङ्ग' के नाम से प्रकाशित हो चुका है।

(२) जीवनचरित—यह समाप्त करके हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को देदिया गया है। इसके लिए मुझे चार बार धांधूपुर जाना पड़ा, सैकड़ों ही चिट्ठियां लिखनी पड़ीं, उनके बीसियों मित्रों से मिलना पड़ा।

(३) चित्र—एक रङ्गीन चित्र अपने पास से १००) रु० व्यय करके भारती-भवन फ़ीरोज़ाबाद को दिया, और भारत-भक्त एन्ड्रूज़ साहब को फ़ीरोज़ाबाद लाकर उसका उद्घाटन-संस्कार कराया और दूसरा चित्र ४५) रु० व्यय करके प्रयाग हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को दिया।

(४) सत्यनारायण कुटीर—इसके लिये ८००) इकट्ठे करने का वादा कर चुका हूं, जिसमें से ३२४) भिजवा चुका हूँ।

सत्यनारायणजी की 'जीवनी' से, या उनके 'हृदय-तरङ्ग' से एक पैसा मैंने नहीं कमाया। इसमें अपने पास से कम से कम ३००) व्यय कर चुका हूँ। ...

पंडित सत्यनारायण के चरित्र में चतुर्वेदीजी का कितना अधिक अकृत्रिम अनुराग है, इसका कुछ आभास उक्त अवतरणों से मिल जायगा, इससे भी अधिक भक्तिभाव की झलक

देखनी हो तो जीवनी का अन्तिम अध्याय "मेरी तीर्थयात्रा" ध्यान से पढ़ जाइये। जबतक किसी चरित्र-लेखक को चरित्र-नायक के साथ इतनी गहरी हार्दिक सहानुभूति न हो—उसपर ऐसी अशिथिल श्रद्धा न हो,—तबतक इस प्रकार का चरित्र लिखा ही नहीं जा सकता। उक्त अवतरणों के उद्धरण से यहाँ यही दिखाना इष्ट है।

परमात्मा दया करके 'भारतीय हृदय' का सा विशाल, सहानुभूति-पूर्ण और प्रेमी हृदय हम सबको भी प्रदान करें, जिससे हम लोग अपने साहित्य-सेवियों का सम्मान करना सीखें और अपने सन्मित्रों की स्मृति और कीर्तिरक्षा के लिये इनके समान प्रयत्नशील हो सकें।

चतुर्वेदीजी ने सत्यनारायण के अनेक मित्रों को कीर्तिशेष, स्वर्गीय मित्र के गुणगान-द्वारा वाणी और हृदय पवित्र करने का अवसर देकर उन पर एक बड़ा उपकार किया है। मैं चतुर्वेदीजी का कृतज्ञ हूँ कि मुझे भी उन्होंने इस बहाने सत्यनारायण की याद में 'चार आँसू' बहाने का मौक़ा देकर अनुगृहीत किया।

मैं प्रत्येक सहृदय साहित्यप्रेमी से इस जीवनी की राम-कहानी पढ़ने की सानुरोध प्रार्थना करूँगा।

काव्यकुटीर, नायक नगला,
पो० चाँदपुर, (बिजनौर)
कार्तिक सुदि ७, सं० १९८३ वि० } पद्मसिंह शर्म्मा



भारत-भक्त सी० एफ़० एण्ड्यूज़

कृष्ण प्रेस, प्रयाग।

भारत-भक्त सी० एफ़० एण्ड्रूज़

की सेवा में

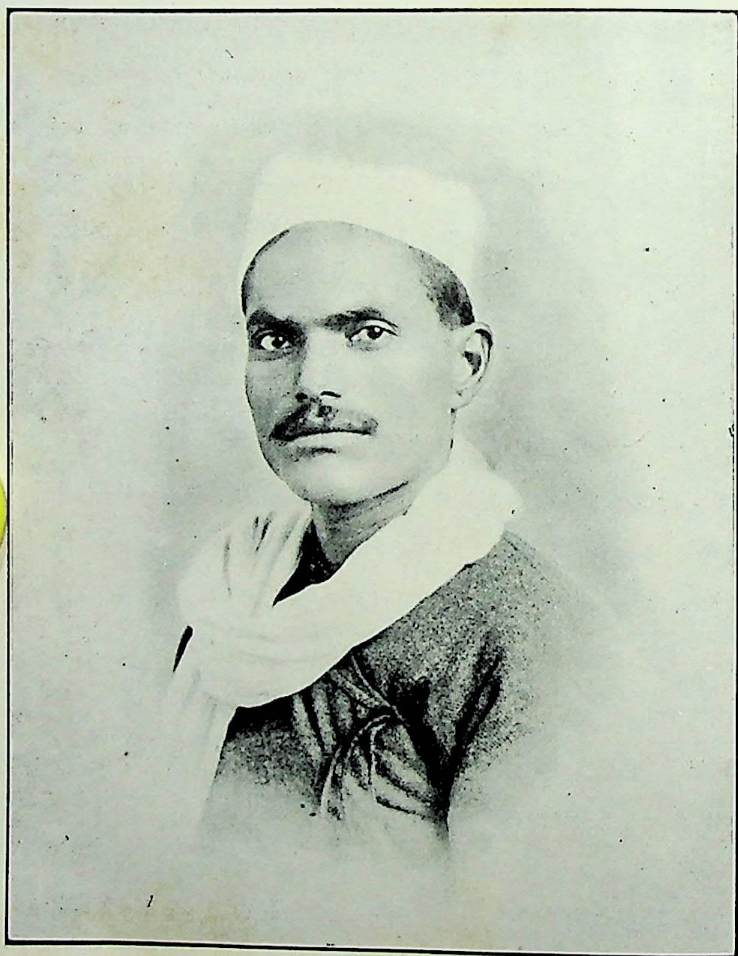
उनकी ५१ वीं वर्षगाँठ के अवसर पर

सप्रेम और सादर

समर्पित

शान्ति-निकेतन,
बोलपुर
सन् १६२१

बनारसीदास चतुर्वेदी



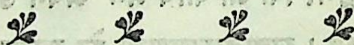
स्वर्गीय पं० सत्यनारायणजी कविरत्न

हिन्दी प्रेस, प्रयाग

चार शब्द

आज आठ वर्ष बाद सत्यनारायण हिन्दी-जनता तथा अपने मित्रों के सम्मुख फिर उपस्थित हैं। वही जीवनचरित सफलता-पूर्वक लिखा हुआ कहा जा सकता है जो चरितनायक को ज्यों का त्यों—उसकी सजीव मूर्ति—पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर दे। इस कसौटी पर यह पुस्तक ठीक उतरती है या नहीं, इसका निर्णय विज्ञ समालोचक ही कर सकते हैं। मैं अपनी ओर से केवल इतना ही कहूँगा कि जो कार्य मैंने अपने ऊपर लिया था वह आसान नहीं था। सत्यनारायणजी को स्वप्न में भी इस बात की आशंका नहीं हुई थी कि उनकी मृत्यु के पीछे उनका चरित लिखा जावेगा; और न उन्होंने अपने विषय की कोई वस्तु ही संग्रह की थी। इस कारण मेरी कठिनाई और भी बढ़ गई। उनकी चिट्ठियों और उनसे सम्बन्ध रखनेवाली छोटी-छोटी बातों के लिये मुझे घंटों परिश्रम करना पड़ा, बीसियों पत्र लिखने पड़े और महीनों ख़ुशामद करनी पड़ी। आज यह बात मैं नम्रता तथा अभिमानपूर्वक कह सकता हूँ कि जितना अच्छा संग्रह सत्यनारायण के जीवन के विषय में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कार्य्यालय में सुरक्षित है उतना अच्छा संग्रह शायद ही किसी हिन्दी-लेखक के विषय में सुरक्षित होगा। जीवनचरित जैसा कुछ है, आपके सामने है।

"तुमने सत्यनारायण को व्यर्थ ही इतना बढ़ा दिया है। वे इतने बड़े तो थे नहीं जितना तुमने उन्हें दिखलाया है।" यह बात उन महानुभावों के मुँह से, जो सत्यनारायण के मित्र होने का दावा करते हैं, सुनकर आश्चर्य की सीमा नहीं रहती। सत्य-नारायण इतनी उच्च कोटि के मनुष्य थे कि उन्हें बढ़ाना मेरे जैसे साधारण व्यक्ति के सामर्थ्य के बाहर था। वस्तुत: बात उल्टी ही हुई है। सत्यनारायण के इस सम्बन्ध से मुझे आवश्यकता से अधिक विज्ञापन मिल गया है।



सत्यनारायण की कविता कैसी होती थी और वे 'कविरत्न' थे या नहीं, इसका निर्णय मेरी बुद्धि के परे है। 'कविरत्न' शब्द का प्रयोग भी मैंने केवल इसी कारण से किया है कि यह शब्द बार-बार प्रयुक्त होने पर उनके नाम का एक आवश्यक भाग ही बन गया था। वैसे स्वयं सत्यनारायणजी इस प्रकार की उपाधि को व्याधि ही समझते थे। सत्यनारायण जितने अच्छे कवि थे उसके लिये नहीं, बल्कि जितने अच्छे कवि आगे चलकर होते उसके लिये वे कविता-मर्मज्ञों की श्रद्धा के पात्र है।



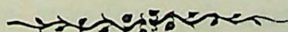
उनके अन्तिम दर्शन की बात अभी तक नहीं भूला। इन्दौर के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से लौटकर वे घर आ रहे थे। स्टेशन से जब गाड़ी चलने लगी, मैंने कहा—" पंडितजी, एक बात हमारी

हू मानियो। जब रेल चलन लगै तब चढ़ियो और जौनौं खड़ी न होन पावै, उतर परियो। " पंडितजी ने हँसकर कहा—"भैया तुम्हारी कही ज़रूर मानिङ्गे।

गाड़ी चल दी और पंडितजी आँखों से ओझल हो गये। तबसे उनकी तालाश में हूँ। उनका पता नहीं चला। सम्मेलन के अधिवेशनों मे उनका पता नहीं लगा, समाचार-पत्रों के आफ़िस में वे नहीं पाये गये और लेखक-मंडल में उनकी मूर्ति नहीं दीख पड़ी। वह स्वाभाविक सरलता, वह नि.स्वार्थ साहित्य-प्रेम वह मधुर हास्य और वह कोकिल स्वर हिन्दी-जगत् में कहीं एकत्र नहीं मिले। कहीं आदर्शवादिता के आडम्बर में व्यापारिकता दीख पड़ी, कहीं देश-भक्ति व स्वार्थ का विचित्र संगम देखा, कहीं क्रियामक कल्पना-शक्ति का बिलकुल अभाव पाया; और कहीं अधिकार-लोलुपता के दर्शन हुए; पर सत्यनारायण जी कहीं नहीं दृष्टिगोचर हुए। अब भी उनकी तलाश में हूँ यदि मैं नहीं तो कोई दूसरा ही उनका पता लगावेगा; क्योंकि—

कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।

फीरोज़ाबाद, ज़िला आगरा
१२। १२। २६ } बनारसीदास चतुर्वेदी



जन्म और बाल्यावस्था

——:o:——



लीगढ़ ज़िले की तहसील सिकन्दराराऊ में जरैरा नामक एक ग्राम है। वहाँ एक निर्धन सनाढ्य ब्राह्मण खुशालीराम रहा करते थे। खुशालीराम के चार पुत्र और दो पुत्रियाँ थीँ। इनकी पाँचवीं सन्तान का नाम तलफो था। तलफो को खुशालीराम ने भली भाँति पढ़ाया-लिखाया था। वह रामायण अच्छी तरह पढ़ और समझ सकती थी। उसकी चौपाई पढ़ने की शैली बड़ी आकर्षक थी। तलफो का विवाह कोयल (अलीगढ़) के श्रीयुत ····दुबे के साथ कर दिया गया। दुबेजी का घर बड़ा धन-धान्य-सम्पन्न था और खुशालीरामजी ने कुछ धन लेकर अपनी लड़की का विवाह दुबेजी के साथ कर दिया था। दुबेजी की अवस्था प्रौढ़ थी। उनकी यह दूसरी शादी थी। तलफो की उम्र १४ या १५ वर्ष की थी। निर्धन माता-पिता की सन्तान तलफो एक धनाढ्य वंश की वधू हुई और उसका नाम रानी सर्दारकुँवरि रख दिया गया। दुर्भाग्यवश दुबेजी थोड़े दिनों बाद ही स्वर्ग-

वासी हुए। सर्दारकुँवरि और उनकी सास में, जायदाद के बारे में, मुक़द्दमेबाज़ी हुई, जिसमें सर्दारकुँवरि की हार हुई। इस हार की वजह से उन्हें बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। दीन-हीन अवस्था में उन्हें घर से निकल जाना पड़ा। निकलकर वे सराय नामक ग्राम में रहीं और वहीं उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वे पढ़ी-लिखी थीं, इसलिये उन्होंने जारखी, कोटला इत्यादि स्थानों में पढ़ाने का काम किया। फ़ीरोज़ाबाद में भा वे कुछ दिन रहीं थीं। तदनन्तर वे ताजगंज के निकट के ग्रामों में लड़कियों को पढ़ाया करती थीं।

एक बार जरैरा ग्राम के एक वृद्धपुरुष, जिन्होंने यह सब वृत्तान्त बतलाया है, कार्य्यवश आगरे गये हुए थे। वहाँ, ताजगंज के निकट, उनके एक नौकर ने तलफो को देखा। यह सुनकर वे वृद्धपुरुष भी उसे देखने के लिये गये और वृद्ध महन्त बाबा रघुवरदास के यहाँ तलफो को देखा। वहाँ एक छोटा सा सुन्दर बालक खेल रहा था। वृद्धपुरुष ने कहा—"यह कौन है?" तलफो ने उत्तर दिया—"यह मेरा लड़का है और इसका नाम है सत्यनरायन"। यही सत्यनरायन हमारे चरित के नायक हैं।

सत्यनारायण का जन्म माघ शुक्ल १३ सोमवार संवत् १९३६ को, रात के दो बजे के लगभग, सराय नामक ग्राम में हुआ था। उस दिन सन् १८८० ई० की २४ फ़रवरी थी। दीन-हीन निस्सहाय इधर-उधर भटकनेवाली माता की करुणाजनक

स्थिति का प्रभाव पुत्र पर पड़े बिना नहीं रह सकता। इसीलिये सत्यनारायण के जीवन के जिस भाग पर हमं दृष्टि डालते हैं वही हमें करुणाजनक दीख पड़ता है।

सत्यनारायणजी का जन्म माता की करुणोत्पादक स्थिति में हुआ था। उनकी बाल्यावस्था उसी अवस्था में कटी। बड़े होने पर कई वर्षतक श्वास से पीड़ित होने के कारण उनकी दशा करुणोत्पादक बन गई थी। सम्भवतः इन्हीं कारणों से उनकी रुचि करुणारस की ओर प्रवृत्त हो गई थी। करुणा-रस-प्रधान उत्तर रामचरित का अनुवाद उन्होंने बड़ी सफलतापूर्वक किया था। उनका अशान्तिमय गृह-जीवन करुणोत्पादक था और अन्त में उनकी मृत्यु में तो करुणारस की पराकाष्ठा ही हो गई। अस्तु, इन बातों को पाठक आगे चलकर पढ़ेंगे ही, इस समय हमें यहाँ पर जाटों के छोटे-छोटे बालकों के साथ खेलनेवाले सत्यनारायण का वृत्तान्त लिखना है। सत्यनारायण के लिए यह बड़े सौभाग्य की बात थी कि उन्हें बाबा रघुबरदासजी का आश्रय मिल गया। महन्त होने पर भी बाबा रघुबरदास को लिखने-पढ़ने का बड़ा शौक़ था। उन्होंने सैकड़ों हस्तलिखित पुस्तकें संग्रह की थीं। दुर्भाग्यवश ये बहुमूल्य पुस्तकें अब मन्दिर की धूल में पड़ी हुई वर्षा, शीत, आतप और दीमक का आनन्द अनुभव कर रही हैं! ख़ैर, बाबा रघुबरदासजी हिन्दी-कविता के बड़े प्रेमी थे और उन्होंने प्राचीन हिन्दी-काव्यग्रन्थों की कुछ हस्तलिखित प्रतियाँ अपने यहाँ संग्रह भी की थीं। जिस मन्दिर में बाबा रघुबरदासजी रहा करते थे उससे कुछ भूमि लगी हुई

थी। बाबाजी को अपनी निजी जायदाद से ३०० रु० वार्षिक की आय हो जाती थी। ?।

सत्यनारायण इन्हीं बाबाजी के यहाँ मन्दिर में रहा करते थे और धांधूपुर की धूल में, जाटों के लड़कों के साथ, खेला करते थे। कहा जाता है कि वे बाल्यावस्था में कुरूप स्त्रियों की गोद में नहीं जाते थे। गाँव में जो होली या रंगति हुआ करती थीं उनको सत्यनारायण बड़े ध्यानपूर्वक सुनते थे और उसी ध्वनि से गाया करते थे। उन्हीं दिनों की एक रंगति सत्यनारायण को याद थी और वे उसे कभी-कभी ठीक गँवारूधुन में गाया करते थे। पाठकों के मनोरंजनार्थ उसे हम यहाँ दिये देते हैं।

रंगति

मोहिनी-चरित्र

एक दिना की बात।
कामिनि ने लीला करी, सो सुनियो जुरि मिलि भ्रात ।।
शची शारदा रमा भवानी ताकी समता ना करैं।
पैदा भई राजदुलारी।
सो कैसें परगट भई कामिनी।
जाके माता पितु नहीं, नहीं भ्रात और कन्थ।
कामिन काम बढ़ामिनी जाकूँ गामें ग्रन्थ ।।
जनम जब कामिन ने लीन्यौं, मातु को ढिंग नाएं चीन्यौं।
पिता तिरलोकी में नाएं, भई माँ पैदा कन्याएं ।।
ख़बर काऊ ने नाँय पाई।

लियौ नारि औतार कि जानें काँत कढ़िआई ।।
बेंदा दिपि रह्यो लिलार लाल भई जोती ।
और सिर सोने की खौर लागि रहे मोती ।।
चिन सीसफूल सिन्दूर बांधि लई चोटी ।
चितवन ते मार लेइ दृष्टि चल खोटी ।।
नाक नथ तोता की भारी ।
दुलरी-तिलरी परी गरे में
सुन्दर खँगवारी ।।

वचन कोइल के ते प्यारे, नैन के बान खैंचि मारे ।
उठे खसबोई तन में ते ।
छोड़ि-छोड़ि के ध्यान मुनीसुर भाजत वन में ते ।।
हार हमेल ररकि हियरा पै अँगिया जरद किनारी ।
पैदा भई राजदुलारी ।।

तहँ एक पुरुष चलि आयो, जे बिगिर बाप को जायो ।
बापुइ में ते कढ़ि आयो ।।
ता नर की महिमा कहैं सुनौ चित लाई ।
धर लायौ कैसो भेष नारि जनु पाई ।।
सो सुन्दर रूप देखि नारि को नर ने देह बिसारी ।
पैदा भई राजदुलारी ।।

इस रंगति में मोहिनी का स्वरूप जाटिनियों के रूप के अनुसार किया गया है। 'नाक नथ तोता की भारी' और 'गरे में सुन्दर खँगवारी' पहननेवाली जाटिनियों को देखकर मोहिनी के स्वरूप का भी रंगति-रचयिता ने वैसा ही वर्णन कर दिया है।

कभी-कभी सत्यनारायण एक 'देवी-स्तुति' भी गाया करते थे जिसका प्रारम्भ इस प्रकार था :—

सुमिरूँ आदि सुमिरिनी माता बैठ हृदय में आ मेरे।
अरे पर्वत में भवन कटैमां। कलस धरे ररकैमां॥

सत्यनारायण बिलकुल ग्रामीण लड़कों की तरह ही रहा करते थे ; खेत में, खलिहान में, हर जगह उन्हीं के साथ खेला करते थे। सत्यनारायण की ग्रामीणता जीवन भर बनी रही , और सच बात तो यह है कि सत्यनारायण के चरित्र में यदि कोई सब से अधिक मधुर और आकर्षक बात थी तो वह उनकी निष्कपट और अकृत्रिम ग्रामीणता ही थी।



विद्यार्थी-जीवन

[सन् १८९०—१९१० ई०]



त्यनारायण के विद्यार्थी-जीवन को हम दो भागों में बाँट सकते हैं। एक तो हिन्दी-अध्ययन सन् १८९० से १८९६ तक और दूसरा अँगरेज़ी-अध्ययन सन् १८९७ से १९१० तक। यद्यपि सन् १८९० के पहले सत्यनारायण ने लुहारगली आगरे में, वैद्यवर पं० रामदत्त के साथ, सारस्वत पढ़ना प्रारम्भ किया था, जब कि वे अपनी माता के साथ रामदत्तजी के पिता देवदत्तजी के यहाँ रहे थे; तथापि नियमानुसार पढ़ाई धाँधूपुर पहुँचने पर ही प्रारम्भ हुई। धाँधूपुर आगरे से लगभग तीन मील और ताजगंज से २ फर्लाङ्ग की दूरी पर है। गाँव की आबादी लगभग हज़ार-बारह सौ होगी। यह जाट लोगों की बस्ती है। फरास, आम, नीम और पीपल के वृक्ष यहाँ बहुत से हैं। इसी ग्राम के एक कोने पर खेतों से मिला हुआ बाबा रघुबरदासजी का मन्दिर है। मन्दिर में भगवान रामचन्द्रजी और हनुमानजी की मूर्तियाँ हैं और बाबा अयोध्यादास तथा बाबा रघुबरदासजी के चरण हैं। मन्दिर की छत पर से पश्चिम की ओर ताजबीबी का रौज़ा दीख पड़ता है और यमुना नदी की धार भी बिलकुल स्पष्ट दीखती है। मन्दिर से मिला हुआ एक कुवा तथा इमली का वृक्ष है और सामने बहुत से नीम के वृक्ष खड़े हैं। वर्षाऋतु में जब चारों

ओर हरियाली छाजाती है, धाँधूपुर बहुत सुन्दर लगता है। धाँधूपुर आगरे से निकट भी है और दूर भी। इसलिये वहाँ के निवासी शहर के हानिकारक प्रभावों से बचते हुए भी वहाँ के लाभों का उपयोग कर सकते हैं।

वास्तव में सत्यनारायण की शिक्षा का आरम्भ इसी गाँव से समझना चाहिए। पहले वे ताजगंज के मदर्से में पढ़ने के लिए बिठलाये गये थे। अछनेरे के **पं० नारायणप्रसादजी सारस्वत,** जो उन दिनों ताजगंज के स्कूल में अध्यापक थे, लिखते हैं:—

"मैं पहली मार्च सन् १८९३ ई० को स्कूल ताजगंज में पहुँचा। उस समय पं० सत्यनारायणजी स्कूल में नहीं थे। इतना स्मरण है कि वे दर्जा २ या ३ में भर्ती हुए थे। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा उनकी माता और बाबा रघुबरदासजी के द्वारा हुई थी। जहाँ तक मुझे याद है, ये पट्टी-बुद्दिका लेकर नहीं आये थे—क़ाग़ज़ पर ही लिखते थे। स्वभाव सरल तथा कुछ गम्भीरतायुक्त था। सदा प्रसन्न रहा करते थे। प्रायः बहुत चपल न थे; लेकिन गोबर-गणेश भी न थे। कभी किसी बालक से पिटकर भी शिकायत नहीं करते थे। एक दिन मैंने देखा कि एक लड़का इन्हें मार रहा है। मैंने मारनेवाले लड़के को बुला कर दण्ड देना चाहा, यह देखकर सत्यनारायण मेरे पास आये और उसे क्षमा कर देने के लिये मेरे पैरों पर गिर पड़े। इनकी माताजी प्रायः प्रतिदिन स्कूल में मिठाई लेकर आती थीं। ये पहले अपनी कक्षा के बालकों को थोड़ी-थोड़ी मिठाई देकर तब आप

खाते थे। इन्हें कहानी-क़िस्से बहुत पसन्द थे और बहुत सी छोटी-छोटी कहानियाँ याद भी थीं। स्कूल में आने के पहले ही इन्हें १०० श्लोक कण्ठाग्र थे। उन दिनों मेरे पास "हिन्दी-बङ्गवासी" और "सुधा-सागर" ये समाचार-पत्र आते थे। एक दिन मैंने अपना बस्ता खोला और उसमें से एक पुराना बङ्गवासी का अंक, जिसमें टेसू का एक विचित्र गीत था, निकालकर सत्यनारायण को पढ़ने के लिए दिया। उस समय दोपहर की छुट्टी थी। कुछ देर के बाद सत्यनारायण ने यह गीत पढ़कर मुझे सुनाया और मुझ से नम्रतापूर्वक प्रार्थना की कि थोड़ी देर के लिए यह अङ्क मुझे दे दीजिए, मैं इसकी नक़ल करना चाहता हूँ। मैंने प्रसन्नतापूर्वक वह अङ्क दे दिया। सत्यनारायण ने तीसरे दिन ही यह गीत याद करके मुझे सुना दिया।

श्रीमान् पं० अम्बिकादत्तजी व्यास द्वारा सम्पादित "पीयूष-प्रवाह" पत्र की दो फ़ाइलें भी मेरे पास थीं। उनमें "डूबि क्यों न मरें उल्लू चुल्लू भरि पानी में" की बहुत सी पूर्तियाँ थीं। एक दिन मैंने ये फ़ाइलें भी सत्यनारायण को दिखलाईं। उस दिन से वे प्रायः प्रतिदिन कुछ समय के लिए उन्हें देखते रहे और कितनी ही पूर्तियाँ कण्ठाग्र करके सुनाते रहे। इससे मुझे ज्ञात हो गया कि उनकी रुचि कविता की ओर है। मैं स्वयं भी जो कविता-सम्बन्धी पूर्तियाँ करता था उन्हें सत्यनारायण को अवश्य दिखलाता था। सत्यनारायण उन्हें कई-कई बार पढ़ते थे। एक बार मैंने "चातुरै न चाहिए कि पातुरा

सों अटकै"—इस समस्या की निम्नलिखित पूर्ति "सुधा-सागर" नामक समाचार-पत्र के लिए की थी :—

दामन ही हेत नित प्रीति ये बढ़ावति है,
दामन ही हेत रांँड़ बार-बार मटकै।
तीय से छुड़ावति सनेह गेह नासति है,
गुरु-जन-लाज काज याके सब सटकै।
याके फन्द फँसे सुख-भौन न सुहावत है,
मौन धरि बैठो तऊ हिये मांझ खटकै।
कायर कपूत कूर कुटिल कुचाली करें,
चातुरै न चाहिए कि पातुरा सों अटकै॥

यह पूर्ति मैंने सत्यनारायण को दिखलाई। उन्होंने इसे पढ़कर धरि के स्थान पर धारि मेरी सम्मति लेकर बना दिया। उसी दिन से मुझे सत्यनारायण पर विशेष प्रीति उत्पन्न होगई। उस समय ये प्रधान अध्यापक के पास थे; परन्तु मैं उनकी आज्ञा लेकर इन्हें स्वयं पढ़ाने लगा। वार्षिक परीक्षा निकट थी, इसलिये रात को भी मैं प्रधान अध्यापक महाशय के तीसरे और चौथे दर्जों को पढ़ाता था। उन दिनों सत्यनारायण संध्या समय कभी-कभी मेरे साथ रौज़े में टहलने चले जाते थे। रौज़े के विषय में बहुत से प्रश्न किया करते थे। यथा :—

इतने ऊँचे मीनार बनाने के लिये इतनी लम्बी लकड़ी सीढ़ी बनाने को कहाँ से आई होगी?

शाही ज़माने के अच्छे-अच्छे पेड़ कटवाकर इन घास-फूस आदि के लगाने से क्या लाभ है?

जिन्होंने यह रौज़ा बनाया था, क्या वे यह जानते होंगे कि किसी दिन इस पर अन्य मतावलम्बियों का अधिकार हो जावेगा ?

अँगरेज़ मुसलमान बादशाहों की तरह अच्छी-अच्छी इमारत क्यों नहीं बनाते हैं ?

क्या योरप में भी किसी ईसाई मतावलम्बी राजा ने अपनी बीबी या माता की यादगार में ऐसा मकान बनवाया है ?

उन दिनों ताजगंज में खत्री तन्नूसिंह नामक एक अच्छे कवि रहते थे। शहर आगरे के बहुत से कविता-प्रेमी उन्हें अपना गुरू मानते थे। सत्यनारायण भी उनके यहाँ जाया करते थे। सम्भवतः सत्यनारायण ने तन्नूसिंहजी से कविता करना सीखा हो। सत्यनारायण हिन्दी के साथ इंगलिश भी पढ़ते थे। उन दिनों स्कूल में ज़िला एटे के एक नायबमुदर्रिस थे जो अँगरेजी मिडिल फ़ेल थे। उन्हें २ या ३ रुपये मासिक सत्यनारायण की माँ देती थीं। सत्यनारायण बड़ी योग्यता के साथ हमारे ताजगंज स्कूल से पास हुए थे और उन्हें अन्य विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक इनाम मिला था।''

ताजगंज से सत्यनारायणजी मिढ़ाखुर के टाउन स्कूल में पढ़ने के लिये गये। सत्यनारायण के सहपाठी श्रीयुत दरबारी लालजी वर्मा अध्यापक अकोला लिखते हैं :—

''प्रारम्भ में मुंशी हरनारायणजी (वर्तमान अध्यापक फ़तहपुर) और मैं छात्रवृत्ति-परीक्षा में उत्तीर्ण होकर मदर्सा

कागारौल से, सत्यनारायणजी तथा पं० चिरंजीलाल (अध्यापक वज़ीरपुरा, आगरा) मदर्सा ताजगंज से, पं० मूलचन्द (पुजारी मन्दिर फरह, ज़िला मथुरा) अछनेरा से, और पं० लखपतराय (वर्तमान मुलाज़िम कानपुर) मदर्सा पँतीखेड़ा से आकर, हम छहौ, मिढ़ाखुर पाठशाला में, साथ-साथ पाँचवीं कक्षा में विद्योपार्जन करने लगे। कुछ समय बाद मेरे और सत्यनारायण के हृदय में श्रीमान् मुंशी कुन्दनलालजी के पद-पद्म-पराग के प्रबल प्रताप से कविताङ्कुर उत्पन्न होगया। तभी से हम दोनों उठने-बैठने लिखने-पढ़ने इत्यादि कार्य्यों में 'एक प्राण दो शरीर' सदृश रहने लगे। इनकी माता रानी सर्दारकुँवरि बड़ी पंडिता थीं। अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा उन्हें तुलसीकृत रामायण अधिक प्रिय थी और उस पर उनकी पूर्ण श्रद्धा थी। जब कभी उनके दिल में आजाती तो अनेक चौपाइयाँ कंठाग्र सुना डालतीं, और उनके ऐसे उत्तम-उत्तम आशय कहतीं कि मैंने ऐसे योग्यता-पूर्ण अर्थ बड़े-बड़े विद्वानों से ही सुने हैं।

बाल्यावस्था में इनका स्वभाव कुछ उग्र था, लेकिन वर्नाक्यूलर मिडिल पास करने के बाद यह उग्रता जाती रही थी। शान्ति-प्रियता, परोपकारिता और मिलनसारी इनमें बहुत थी। हिन्दी-मिडिल पास करने के बाद इन्होंने कुछ उर्दू का भी अभ्यास किया था; लेकिन थोड़े दिनों के ही लिए। सत्यनारायणजी अपने पुराने सहपाठियों के साथ किस तरह मिलते थे, इसका एक दृष्टान्त यहाँ पर देना अनुचित न होगा।

ता० २० जून सन् १९११ ई० को बमरौली-कटारे के मन्दिर

पर मेरी उनसे अकस्मात् भेंट हो गई। यह साक्षात् भेंट ११ वर्ष पीछे हुई थी, यद्यपि पत्र-व्यवहार हम लोगों में कभी-कभी हुआ था। हृदयालिङ्गन के पश्चात् वार्तालाप होते-होते जब बहुत देर हो गई तो रामचन्द्र नामक एक आदमी ने, जो पंडितजी से अपरिचित थे, मुझ जैसे क्षुद्र मनुष्य के साथ सत्यनारायणजी को बातचीत करते देख बड़ा आश्चर्य किया और मेरी ओर संकेत करके पूछा—"ये कहाँ रहते हैं ?" कविरत्नजी आँखों में आँसू भर के बोले—"ये मेरे हृदय में रहते हैं।" यह सुनकर मैंने मन-ही-मन उनके कोमल हृदय को अनेक धन्यवाद दिये। तदनन्तर मैंने अपनी 'श्रीमद्रामयश दिनकर' के, जो अभी अधूरी पड़ी है, और सत्यनारायण ने 'उत्तर-रामचरित' के पद्य परस्पर दिखाकर बड़ा आनन्द उठाया।

सत्यनारायणजी अपने पुराने सहपाठियों के साथ बड़ी सरलता और स्वाभाविकता के साथ मिलते थे, और उनके प्रेम की अकृत्रिमता ही उनके जीवन में सबसे अधिक मनोहर वस्तु थी।"

सत्यनारायणजी के एक अन्य सहपाठी श्रीयुत् मूलचन्दजी गोस्वामी (पाराशर कम्पनी आगरा) लिखते हैं :—

"सत्यनारायणजी मेरे साथ मिढ़ाखुर में दो वर्ष तक पढ़े थे। कविता करने का शौक़ उन्हें तभी से था। बड़े प्रेम के साथ वे अपने गाँव की बोली में

देखौ अंगरेजन कौ खेल, निकार्‌यो माटी में ते तेल,
जरै जैसे घिय कैसो दिवला।

गाया करते थे। उनकी आदत भी मिलनसार थी और वे बड़े

हँसोड़ थे। हम लोगों के पिता जब गाँव से आते थे, तो उनके चले जाने के बाद सबकी हूबहू नक़ल उतारकर सहपाठियों को ख़ूब प्रसन्न करते थे। इनकी माता जब आती थीं तो सहपाठियों को अपने लड़के की तरह प्यार करती थीं। सत्यनारायणजी अपनी माँ के लाड़ले होने के कारण ऐसे चलते थे कि हम लड़कों ने उनका नाम 'पङ्गा' रख दिया था। दरबारीलाल के पिता की सी पगड़ी बाँधकर उनकी बोली की नक़ल करते थे। दरबारीलाल टेंटा होने पर भी घूँसा मारने में पटु था। उसके शरीर में बल भी था। जब सत्यनारायण पर क्रोध करके कोई आता भी तो वे इस तरह बैठ जाते और हा-हा खाने लगते थे कि वह भी अच्छा मालूम होता था! मैं छोटा होने पर भी उनकी कलाई को मरोड़ देता था, क्योंकि उनके हाथ भी नाज़ुक थे और शरीर में बल भी कम था। लेकिन पढ़ने में ये बड़े तेज़ थे। व्याकरण, हिसाब और गुटका की कविता में तो अव्वल ही रहते थे। लिखने-पढ़ने में अच्छे रहने से रौब भी जमाते थे; पर गर्व से नहीं, हँसी में। सहपाठियों को सवाल बता दिया करते थे। बराबर हँसमुख रहते और सबसे प्रेम करते थे। उनके सरल तथा निष्कपट प्रेम का एक उदाहरण देना अप्रासङ्गिक न होगा।

जब मथुरा में मैं पहले पहल सत्यनारायणजी से मिला तो मैं बड़ी ख़ातिरी से पेश आया। यह बात सत्यनारायण को अच्छी नहीं लगी। गले से मिलकर आपने कहा—"भैया मैं तो तेरौ वही पङ्गा हूँ"।

कभी-कभी सत्यनारायणजी बड़े प्रेम के साथ कहा करते थे—"कवि कुन्दनलाल मिढ़ाखुरवारौ"। श्रीयुत् मुंशी कुन्दनलालजी (मुख्याध्यापक टाउन स्कूल मिढ़ाखुर) ने ही सत्यनारायण को हिन्दी-मिडिल की परीक्षा दिलवाई थी। मुंशीजी अपने २६।७।१८ के पत्र में लिखते हैं:—

"अनुमान से २३ वर्ष व्यतीत हुए होंगे कि सत्यनारायण यहाँ. मिढ़ाखुर, मुझसे विद्याध्ययन करने के लिए आये थे। उस समय उनकी अवस्था १३ वर्ष की थी। बाल्यावस्था से वे सुशील स्वभाव तथा तीव्र बुद्धि कहे जाते थे। परिश्रमी अधिक थे और सहपाठियों की भलाई में रहते थे। अध्यापकों के शुभचिन्तक थे। विद्यार्थी-धर्म में कोई त्रुटि नहीं करते थे। सदाचारी होने में कोई सन्देह नहीं था। अहंकार का लेश भी नहीं जान पड़ता था। बाल्यावस्था से ही सत्यनारायण सनातनधर्मावलम्बी कहे जाते थे। उनकी कवित्व-शक्ति अच्छी थी। मैंने कई विद्यानुरागी पुरुषों को उनकी प्रशंसा करते हुए सुना है। आरम्भकाल में कविता की ओर उनका ध्यान यहीं से आकर्षित हुआ। श्रीमान् जो लिखते हैं कि 'सत्यनारायण ने आपसे कविता करना सीखा' सो यह लिखते हुए मुझे सङ्कोच यों है कि प्रथम तो मैं कविता के अङ्गों से अनभिज्ञ हूँ, द्वितीय कोई बृहद् पिंगल ग्रन्थ देखने का अवसर मुझे प्राप्त नहीं हुआ। गणादि तक का ज्ञान भी मुझे पूर्ण रूप से नहीं है। छन्दों के लक्षण, काव्य के नव रस मात्र मैंने औरों से श्रवण किये हैं। काव्य का जानना, करना

कठिन है। जब काव्य-शास्त्र में मेरी यह अनभिज्ञता है तो पंडित सत्यनारायण की अन्तिम योग्यता के विषय में मैं क्या लिख सकता हूँ। सत्यनारायण वर्तमान समय के कवियों में कविरत्न कहे जाने के योग्य थे। उन्होंने मेरे यहाँ शिक्षा पाई थी, इस कारण उनकी विशेष प्रशंसा करना मुझे उचित नहीं जान पड़ता। कैसे दुर्भाग्य और खेद की बात है कि शिष्य की मृत्यु के अनन्तर शिक्षक को उसके विषय में लेख लिखना पड़े!

अपने एक स्वर्गीय शिष्य के विषय में अधिक क्या लिखूँ, कुछ समझ में नहीं आता:—

सत्यनरायण नाम कवि, सत्य नरायण काम।
सत्यनरायण ह्वै गये, सत्यनरायण धाम॥
सत्यनरायण यश लह्यो, लहि साहित्य विचार।
जिनकी कविता के पढ़ें, मिटिहैं मलिन विकार॥

जिस समय सत्यनारायण मिढ़ाखुर में पढ़ते थे उस समय की उनकी एक नोटबुक सौभाग्यवश हमें मिल गई है। इतिहास भूगोल इत्यादि विषयों को याद करने के लिए उन्होंने इस नोटबुक में कितनी ही तुकबन्दियाँ लिख रक्खी थीं। गवर्नर-जनरल तथा वाइसरायों के नाम याद करने के लिए यह पद्य लिखा गया था:—

कम्पनी सुविज्ञ ने प्रथम ही प्रबंध हेतु,
वार्न हेस्टिङ्ग गवर्नर जनरल बनाये हैं।
सर जान मेकफर्सन चन्द रोजा राखि,
मार्क्विस आफ़ कार्नवालिस हिन्द में पठाये हैं॥

सरजान शोर को बनायो लार्ड टेनमौथ,
एलूरेड क्लार्क चन्द राज ही टिकाये हैं।
लार्ड मार्निङ्गटन हिन्द को बढ़ायो राज,
याही काज मारक्विस विलिज़ली कहाये हैं ॥
इत्यादि।

भूगोल भी सुनिये।

इर्कटस्क रूस की अरु चीन की पेकिन जान,
तिब्बत की राजधानी लासा पहचानिये।
मनीला मंचूरिया की किंकिटाओ कोरिया की,
उरगा मंगोलिया की निहचै कर मानिये।
टोक्यो जापान की अरु मंडले है बर्मा की,
श्याम की बंकाक ह्यू अनाम की बखानिये।
लंका की कोलम्बो और मक्का अरब की जान,
यारकन्द तुर्किस्तान पूर्वी की जानिये।
इत्यादि।

ता० २२ सितम्बर सन् १८९६ ई० को सत्यनारायण ने वीर विक्रमाजीत के नवरत्न याद करने के लिए निम्नलिखित पद्य बनाया था:—

धनोत्तरी क्षपनक कहौ, अमरसिंह को मान।
शंकु बेताल वराह अरु, कालीदास बखान ॥
घट परखर और महरगुत, वररुचि जानो भाय।
वीर विक्रमाजीत के, यह नवरत्न कहाय ॥

जिस समय सत्यनारायणजी हिन्दी-मिडिल में पढ़ते थे उन्हीं दिनों में उनकी माता बीमार पड़ गईं। उस समय आपने यह पद्य बनाये थे:—

माता की आरोग्यता के हेतु विनय

सुनियो सामलिया साह मेरी गज की सी टेर।
मम माता मेरी प्राण सर्जावन वाके दिवस अब केर।
भक्तन के दुख-हरण सदा ते मेरी बेर अबेर।
ध्रुव प्रहलाद उबारि कष्ट ते विरम रहे किहि केर।
सत्यदेव आरत शरणागत मेरे दुःख निवेर।
करियो आनँद आनँद-कन्द।
तुम्हरी कृपा कटाक्ष के कारण विचरें जन स्वच्छन्द।
जब-जब भीर परी भक्तन पै काटे तुम तिन फन्द॥
कठिन कष्ट बस मम माता अति सुनहु सच्चिदानन्द।
कौन नसावे भला आप बिन सत्यनारायण के दुख द्वन्द॥

इन पंक्तियों में सत्यनारायण का प्रेम-पूर्ण स्वभाव प्रकट होता है। समालोचक महाशय कह सकते हैं कि "इन पंक्तियों में कुछ भी नवीनता नहीं है। वेही पुराने शब्द और वेही पुराने भाव हैं। कविता की दृष्टि से इनका महत्व नकुछ के बराबर है। ये तो पुराने ढर्रे की सूखी तुकबन्दियाँ हैं।" यद्यपि समालोचक के इस कथन में बहुत कुछ सत्यता होगी; तथापि इन पद्यों के यहाँ उद्धृत करने का उद्देश्य सत्यनारायण की कविता के महत्व को दिखलाना नहीं है। हम उनके स्वभाव पर प्रकाश डालना चाहते हैं, और साथ ही साथ उनकी कविता के क्रम-विकास को भी प्रकट करना चाहते हैं। सत्यनारायणजी की 'सरोजनी-षट्-पदी' एक उत्तम कविता है, और 'सुनियो सामलिया साह मेरी गज की सी टेर' 'भगवन अपनो विरद सँवारो' और 'करियो

आनँद आनँदकन्द ' ये तुकबन्दियाँ 'सरोजनी-षट्पदी' से बीस वर्ष पहले की हैं। यह आशा करना व्यर्थ है कि इन तुकबन्दियों में 'सरोजनी-षट्पदी' की सी सरसता और सौन्दर्य्य हो। लेकिन विकास की दृष्टि से इन तुकबन्दियों का महत्व 'सरोजनी-षट्पदी' से कदापि कम नहीं है। किसी नसेनी के नीचे के डंडे भी उतने ही अधिक आवश्यक हैं जितना कि सब से ऊँचा डंडा। एक साथ छलाँग मारकर कोई पहाड़ पर नहीं चढ़ जाता। उसे धीरे-धीरे चढ़ना होता है। पहाड़ की किसी ऊँची चोटी पर बैठे हुए आदमी को देखना उतना मनोरंजक कदापि नहीं होसकता जितना उसे धीरे-धीरे चढ़ते हुए देखकर होता है। जिन सत्यनारायणजी ने सन् १९१८ई० में इन्दौर के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के मंच पर 'श्रीगान्धी-स्तव' जैसी उच्च कोटि की कविता पढ़कर सहस्रों मनुष्यों को मंत्र-मुग्ध कर दिया उन्हीं ने बीस वर्ष पहले अपने एक बीमार मित्र के अच्छे हो जाने के लिए निम्नलिखित तुकबन्दी की थीः—

जंगबहादुर* के रोग के हेतु

प्रभू तुम कैसे रूठ रहे।
जब तुम नाथ उबार्‌यो करी कूँ नाना दुःख सहे।
गरुड़ त्यागि तुम आय बचायो नंगे पाँय बहे॥
जंगबहादुर दास तुम्हारो ताकूँ ताप गहे।
भवज रोग चहुँ ओर सों आकर निशिदिन तनहि दहे॥

---

* बाबू कल्याणसिंह भार्गव प्लीडर के कुटुम्ब के एक लड़के का नाम।

जब-जब वह दुख पावत तब-तब रामहिराम कहै।
सत्यनारायण बेगि बचावो क्यों यह ठाठ ठये॥
कहाँ कूँ सिधारे हो है करतार।
गनिका कीस गृद्ध गज तारे द्ये तिन संकट टार॥
जंगबहादुर तुम्हरो सेवक रोग गह्यो यहि बार।
ताप कष्टदा अतिहि चढ़ति है अब की लगाओ पार॥
ताके मन की सकल कामना पूरण करि सुखकार।
मौन भये कस बोलत नाहीं सब जग सिरजन हार॥
अधिक कृपा करिये तुम स्वामी! कहा कहूँ बारम्बार।
सत्यनारायण आस तुम्हारी अब की बेर उबार॥

जब सत्यनारायण चतुर्थ कक्षा में थे, उस समय उन्होंने यह "फोर्थ क्लास में पास होने की बिनती" लिखी थी:—

हे भगवती कृपा करो तुम भक्त आपनि जानि कें।
पर्चा करौ सब ठीक 'रानी-पुत्र' * निज को जानिकें॥
इम्तिहान रूपी काल ने अब मातु घेरयो आय कें।
मबचा उबारयो मातु तैंने बेग तेग चलायकें॥
+ + +
सब जनन को तुम काज करिवे मातु जग में अवतरी।
कहा खोट अब मैंने कियो मम बेर कूँ देरी करी॥
हे मातु रसना बैठिके तुम बुद्धि की शुद्धी करो।
सब काज करिकें ठीक माता मोर भव-बाधा हरौ॥

एक बार फिर इसी "भवबाधा" "इम्तिहान रूपी काल" से घेरे जाने पर सत्यनारायण ने अपने उद्धार की यह प्रार्थना की थी:—

* सत्यनारायणजी की माता का नाम 'रानी सरदारकुँवरि' था।

"पैशाचवत् इंगितज्ञान से हे जननि मोकों उद्धरो ।
आधि-व्याधिन मेटिकें अस बुद्धि की शुद्धी करो ॥
उत्तीर्ण करि मोकूँ सदा औ सफल मन-काजन करो ।
इतरिक्त जाके और माता दुःख सब मेरे हरो ॥
बरदान दे मोहि मातु करिकें कृपा तुव सेवक कहै ।
जो भक्ति तुम्हरे चरण की मम हृदय में व्यापी रहै ॥"

उन्हीं दिनों किसी पत्र में 'भारत-निवासी की' समस्या छपी थी । सत्यनारायण ने उसकी पूर्त्ति इस प्रकार की थीः—

दिन दिन देश-दशा होति जाति दूबरी है,
यांको दुख देखि सुधिहू न रहै साँसी की ॥
कृपन भये हो किधों मौन को गहे हो नाथ !
कृपाऊ न आवै यह बात नाहिं हाँसी की ॥
दयासिन्धु दया करो, चित्त उर मांझ धरो,
सामिग्री न जोरो स्वामि फेरि तुम फाँसी की ॥
टेर-टेर टेर-टेर जीभ हू सिथिल भई,
अब सुधि लीजिये जू भारत-निवासी की ॥

सत्यनारायणजी की उन दिनों की कविता के कुछ नमूने यहाँ दिये जाते हैं ।

एक हू बार अरी ब्रजनागरि धारि दया किन कंठ लगावै ।
चारु चरित्रन हू ते रिझाय जिवाय कें क्यों न बड़ो यश पावै ।
और न चाहत मैं कछुरी सतदेव जू एक यही चित भावै ।
प्यारी प्रवीन सनेह सों हेरि कें कंठ लगो तन ताप नसावै ।

दूसरों के दोहों पर सत्यनारायणजी ने अपनी कुछ टीकाएँ भी की थीं। यथा—

दोहा—हरी कंचुकी जरद कुच, अलसानी तिय भोर।
मनहु चन्द बदरी छिप्यो निकसत आवै कोर॥

टीका—कारी किनारी हरी कुच कंचुकी सावन कारी घटा सी सुहावै।
पीत उरोज लसैं विधुसी युग देख चकोर सदा मन भावै।
भामिनसोई भली विधि चाय सों प्रात समै कछु ज्यों अलसावै।
वारिद तैं दुवकी निकरी जनु चन्द्रकला त्रय ताप नसावै।

× × ×

दोहा—सहज सहेलिन सों जु तिय, बिहँस बिहस बतरात।
सरद चन्द की चांदनी, मन्द परत सी जात॥

टीका—सहज सहेलिन सों हँसि-हँसि प्यारी वह,
घूंघट सों मुँह निकारि बतराति जात है।
लंक लचकति अति, कुच मचकत मंजु,
बनी है सुढार अरु रंग बरसात है।
जंघन सुढाली अरु चाल मतवाली पुनि,
पैंजनी पगन झनकार सरसात है।
भाषत सो प्यारी ऐसी जानि परै सत्यदेव,
चन्द की ज्यों ज्योति मन्द परत सी जात है।

× × ×

दोहा—नवल बधू करिकें चली, वासर सुभग सिंगार।
मनहुँ लियो व्रजभूमि पर, काम कला अवतार॥

टीका—सुन्दर रूप की राशि बधू शुभ साजि सिंगार चली सो नवीना।
नैन चलावति भौंह मरोरति औ मुसक्याति है प्यारी प्रवीना।

लंक बड़ी लचकै पचकै अरु पाँय महावर हू शुभ दीना।
शोभित माने अहो ब्रजमंडल काम कला अवतार सो लीना।
ए सजनी वह नन्द को साँवरो देत रहै नित ही नित फेरी।
कानि करी कबहूँ नहिं तैने सुनैक नहीं चितको हँसि हेरी।
जोवन जोश के जोर में आयकै चीन्हें नहीं पर पीर को एरी।
लाल गुपाल को देख भटू छतियाँ कसकी न कसाइन तेरी।

इन उदाहरणों से प्रकट होता है कि सत्यनारायणजी को उन दिनों शृङ्गाररस से विशेष प्रेम था। उनके इस प्रेम से एक बार बड़ी मज़ेदार दुर्घटना होगई। श्रीयुत सत्यभक्तजी ने विद्यार्थी में लिखा था कि, एक दिन की बात है आपने कृष्ण और गोपियों के विषय में एक शृङ्गाररस-पूर्ण सवैया बनाया, और न मालूम क्या सोचकर उसे अपने गुरू महाराज बाबा रघुबरदासजी को सुना दिया। आपने तो सोचा होगा कि गुरूजी हमारी विद्या-बुद्धि पर प्रसन्न होकर शाबासी देंगे; पर वहाँ उलटे लेने के देने पड़ गये। महन्तजी उसे सुनकर बड़े नाराज़ हुए, और इनके पाँच-सात थप्पड़ जमा दिये। उन्होंने कहा कि "अभी ते ऐसी वाहियात कविता बनावै है, आगे चल कै न मालूम का करैगो। ख़बरदार जो अबते आगे ऐसे छन्द-बन्द बनाये"।

सुनते हैं कि प्रेम की इन धौलों ने सत्यनारायणजी की शृङ्गाररस की कविता को कम कर दिया; लेकिन सिर्फ़ थोड़े दिनों के लिये ही। बाबाजी की इन धौलों की याद भूलकर फिर भी सत्यनारायण वैसे ही 'वाहियात छन्द-बन्द' बनाने लगे!

आपकी समस्या-पूर्ति सुनिये :—

चाहैं चवाव चहूंघा करौ सतिदेव जू जोरि कहौ किन कासों।
काहू की ह्यां तो चलै न सखी नहिं जानत रीझत कौन अदा सों।
राधा बिसाखा रहीं इक ओर जू लेहु लगाय सबै* ललिता सों।
जोबन जोर मरोर में आयकें कूबरीहू नहिं ऊबरी जासों!
खड्‌क-खाई लखै न अगार जू नैंक जुबान सम्हारि कें बोलो।
सत्यजू खूब फिरो निमटै सँग बाँधि के ग्वालन को यह टोलो।
वाह! अबीर सों आँखिन फोरत! खेलनो हो रंग गांठि को बोलो।
जीजा की सौंह परें सरको तुम औरु ही मीजा टटोरत डोलो।

इस प्रकार के 'वाहियात छन्द-बन्दों' पर बृद्ध बाबाजी का नाराज़ होना स्वाभाविक ही था। इस दृष्टान्त को लिखते हुए हमें एक अंग्रेज़ी कवि 'पोप' की बात याद आती है। जब वे बाल्यावस्था में पद्य बनाया करते थे तो एक दिन उनके पिताजी ने इसी बात पर नाराज़ होकर उन्हें पीटा। बालक तो थे ही, आप बड़े भोलेपन के साथ बोले:—

"Papa Papa pity take
No more verses shall I make."

दिसम्बर सन् १८९६ई० में सत्यनारायण ने सेकेण्ड डिवीज़न में हिन्दी-मिडिल पास किया और तदनन्तर वे नियमपूर्वक अंग्रेज़ी पढ़ने लगे।

---

*अथवा "नेह लगायो अबै ललिता सों"।

अंग्रेज़ी-अध्ययन

[सन् १८९७—१९१० ई०]



म पहले लिख चुके हैं कि जब सत्यनारायण मिढ़ाकुर में पढ़ते थे तो उनको अंग्रेज़ी पढ़ाने के लिए उनकी माता ने एक मास्टर को, जो अंग्रेज़ी-मिडिल फ़ेल थे, नियुक्त कर दिया था। लेकिन उस समय पढ़ाई नियमानुकूल नहीं हो सकी थी। सन् १८९७ ई० में उन्होंने अंग्रेज़ी-अध्ययन फिर ठीक तरह से प्रारम्भ किया। दिसम्बर सन् १८९८ ई०में उन्होंने लोअर मिडिल-परीक्षा फ़र्स्ट डिवीज़न में पास की और दिसम्बर सन् १९०० ई० में लुफ़ोदआम स्कूल से अंग्रेज़ी-मिडिल सेकेण्ड डिवीज़न में पास किया। जनवरी सन् १९०३ ई० में वे सैण्ट-जान्स-कालेजियेट हाईस्कूल से एण्ट्रेंस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। दो वार एफ़०ए० परीक्षा में फ़ेल होने के बाद वे सेण्टजान्स-कालेज छोड़कर सेण्टपीटर्स-कालेज में भरती हो गये और अप्रैल सन् १९०८ ई० में उन्होंने सेकेण्ड डिवीज़न में एफ़० ए० परीक्षा पास की। परीक्षाओं में फ़ेल होने का कारण यही था कि अपने समय का अधिकांश भाग वे कविता करने में लगा दिया करते थे। इसके बाद वे फिर सेण्टजान्स-कालेज में दाख़िल होगये और सन् १९१० ई० में बी० ए० परीक्षा में शामिल हुए; लेकिन फ़ेल होगये। सन् १९०९ तथा १९१० ई० में उन्होंने वकालत परीक्षा देने के लिए क़ानून भी पढ़ा था। इस प्रकार उनका अंग्रेज़ी-अध्ययन-काल सन् १८९७से १९१०ई०तक समझना चाहिए। सन् १८९७ ई०से लेकर

१९१० ई० तक आगरे की जो धार्मिक और राजनैतिक परिस्थिति रही थी उसका प्रभाव सत्यनारायण के स्वभाव और उनकी कविताओं पर अच्छी तरह पड़ा था। सन् १९०४ ई० तक तो आगरेमें आर्य्यसमाज और सनातनधर्म-सभाओं के झगड़े चलते रहे थे और सन् १९०५ में स्वदेशी-आन्दोलन का युग प्रारम्भ होगया था। इसीलिए सत्यनारायणजी के १९०४ के पद्य या तो धार्मिक भावों से परिपूर्ण रहते थे अथवा शृङ्गाररस से सम्बन्ध रखते थे। सन् १९०५ से उनकी कविताओं में देश-भक्ति के भावों का संचार होने लगा था। किसी कवि की कविता पर चारों ओर की स्थिति का कैसा प्रभाव पड़ता है, सत्यनारायण की कविता इसका एक अच्छा उदाहरण है।

उन दिनों आर्य्यसमाजियों और सनातनधर्मियों में किस प्रकार शास्त्रार्थ हुआ करते थे, उसका विशेष वर्णन करने की यहाँ आवश्यकता नहीं है। ईश्वर साकार है, या निराकार—इस प्रश्न पर सिर फोड़ने की आवश्यकता को जनता अब अनुभव नहीं करती। लेकिन उन दिनों शास्त्रार्थों की ख़ूब धूम-धाम थी। इन शास्त्रार्थों से जनता का मनोरंजन होता था; लेकिन आर्थिक लाभ होता था दोनों ओर के उपदेशकों को, और साथ ही मज़ा उड़ाते थे "भज राम कृष्ण गोपाल को इस ओ३म् से क्या होता है!"—गानेवाले सनातनी भजनीक और "मुर्दों का बहाना करके क्यों लेटर-बक्स भरा है"—गानेवाले आर्य्य महाशय।

जब आगरे में शास्त्रार्थों की लहर ज़ोर पर थी तो बहुत से नवयुवक विद्यार्थी उसके बहाव में पड़ गये थे। सत्यनारायण भी

उन्हीं में से एक थे। कभी सागर-सन्यासी आलाराम, कभी व्याख्यान-वाचस्पति दीनदयालुजी, कभी अनहद-शब्द-ब्रह्मज्ञान का उपदेश देनेवाले हंसस्वरूप के व्याख्यान होते थे। कभी मुक़ाबले पर "आरिये महाशय" कट-कट जाते थे। सत्यनारायण जी को तुकबन्दी करने का अच्छा मौक़ा मिलता था। टूटी पेंसिल से रद्दी काग़ज़ पर लिखी हुई कविता, फूटी चिमनी के धुँधले उँजाले में, आँख फाड़-फाड़कर पढ़ते और वाहवाही लूटते थे। सनातनधर्म-सभाओं में आपकी ख़ूब पूछ होती थी। सन् १९०० ई० में आपने एक पुस्तक लिखी थी, जिसका नाम था 'दयानन्दि-मद-मर्दन'। पुस्तक के आवरण पृष्ठ पर छपा था:—

दयानन्दि-मद-मर्दन

अर्थात्

(श्रीमान् स्वामी ईश्वरानन्दगिरिजी द्वारा
दयानन्दियों की पराजय)

जिसको

पण्डित सत्यनारायणजी सभासद श्रीसनातन-
धर्म-सभा आगरा ने बड़े परिश्रम के
सहित सनातनधर्मावलम्बियों के
प्रसन्नतार्थ पद्य में संग्रह किया

पुस्तक के अन्त में लिखा था :—

निकट आगरे नगर के, धांधूपुर है ग्राम।
मुफीदाम विद्यार्थी, सत्यनरायण नाम॥
हरि जस रसिक सुजान हित, करी विनय चित धारि।
होय शब्द जो दोषयुत, लीजौ सुमति सुधारि॥

उन्हीं दिनों परिडत भीमसेनजी आर्य्यसमाज को छोड़कर सनातनधर्मी बन गये थे। आगरे में भी वे पधारे थे, और सनातनधर्म-सभा में उनके व्याख्यान हुए थे। सत्यनारायण जी ने उनके व्याख्यानों का वृत्तान्त पद्यों में लिखा था और पं० भीमसेनजी के अभिनन्दन के लिए निम्नलिखित पद्य बनाये थे :—

मण्डौ सराध सभी विधिते सु रही नहीं नेंकहू और कचाई।
केहरि सो दुंद कयो जु कर्यो सुसमाज सभ्यों नहि नेंक चलाई।
माया के सागर ते हमकों सुकृपा करि लीन्हेसि आप बचाई।
पंडित भीमजू आये भले सब भाँति हरी हमरी दुचिताई।

भीमसेन-अभिवादन में भी "आर्य्य" लोगों की ख़ूब ख़बर ली गई थी।

"आर्य्य-कहत न लाज अवति जिन्हें नेंक,
जीभ के चलैया वृथा मूड़के मरैया हैं"॥

इत्यादि

इन पद्यों से प्रकट होता है कि सत्यनारायण को 'आर्य्य' लोगों से बहुत चिढ़ थी। जिन लोगों ने सत्यनारायणजी को आगे चलकर देखा है वे इन तुकबन्दियों की असहनशीलता

पर आश्चर्य्य करेंगे ; लेकिन उन्हें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि जिस समय ये तुकबन्दियाँ रची गई थीं, उस समय आर्य्यसमाजियों और सनातनियों में इसी तरह की हवा बह रही थी।

श्रीमान् पंडित अम्बिकादत्तजी व्यास के स्वर्गवास पर सत्यनारायण ने कई पद्य बनाये थे। अन्तिम पद्य यह था :—

कामिनी काव्य किलोल भरी अति चाय सों डोलै महा मदमाती।
आप के बाह भरोसे बिना वह रोय रही जलधार चुचाती।
व्यास जू हाय चलै कितकों तुम छांड़ि चलै किहि पै यह थाती।
हाय रे हाय बिना तुमरे फटि जाति है भारतवर्ष की छाती।

महारानी विक्टोरिया के मरने पर भी सत्यनारायण ने तुकबन्दी की थी। अन्तिम शब्द उन तुकों के ये थे :—

'रूप की छटोरिया' 'दुख-नीति की वटोरिया' 'रस की कटोरिया' और "भारत को त्याग गई हाय विक्टोरिया !"

कभी-कभी मज़े में आकर आधी अंग्रेज़ी और आधी हिन्दी में भी कविता कर डालते थे। यथा—

Doing kindness to me
सुकृपानिधि आन इतै पग धारियै।
No one helps without you
इतिनी हू स्वामि हिये में बिचारियै।
Ah ! should , I go where Shyam !
सुशेष के शायी कलेश निवारियै।

That's prayer Satya to-day
दुखमोचन लोचन कोर निहारिये।

स्वामी रामतीर्थ के व्याख्यानों का प्रभाव

जब स्वामी रामतीर्थजी ने मथुरा में व्याख्यान दिये थे, सत्यनारायणजी आगरे के कई आदमियों के साथ उन्हें सुनने के लिए मथुरा गये थे। एक बार स्वामीजी ने सत्यनारायण को अपने कमण्डल से जल आचमन के लिये दिया। सत्यनारायणजी थे रामफटाका-मन्दिर के शिष्य, बड़े घबड़ाये और चिल्लू के बजाय अँगूठे के ऊपर के गड्ढे में जल लिया और मस्तक पर चढ़ा लिया। फिर तो ऐसे चेले हुए कि स्वामीजी की तरह ओ३म् ओ३म् पुकारते फिरते थे। इसलिए आपका नाम "ओ३म्" भी पड़ गया था ! स्वामीजी के एक व्याख्यान के बाद उन्होंने एक कविता पढ़ी थो, जिसके दो पद्य यहाँ दिये जाते हैं।

श्री नटनागर आगर औ वृषभान लली के अतीव पियारे।
वृन्दवने ललिताई युते अति कुंजगलीन के खेलनवारे।
रक्षक भक्तन के अति ही अरु दुष्ट दयैतन मारन हारे।
स्वामि हमारे सभी विधि ते कछु बन्दि कहै पद कंज तुम्हारे।

हे जनरंजन औ दुखभंजन गंजन संशय के तुम स्वामी।
शुद्ध सनातनधर्म के रक्षक याही के कारण ह्वै रहे नामी।
वाणी पियूष-प्रवाह ते आज कियो हमको कृतकृत्य अकामी।
बूड़त पार कर्यो हमकों जय तीरथराम नमामि नमामी।

स्वामी रामतीर्थजी सत्यनारायण पर बड़े प्रसन्न होगये थे। कहा जाता है कि वे सत्यनारायण को अमरीका ले जाना चाहते थे; लेकिन उन्होंने वृद्ध बाबा रघुवरदास की सेवा छोड़कर जाना उचित नहीं समझा। स्वामी रामतीर्थ जी जहाँ-जहाँ जाते उनके साथ सत्यनारायण भी जाते थे और उनके उपदेशों में मस्त रहते थे। पढ़ना-लिखना सब भूल गये थे। सत्यनारायण के मित्रों ने उन्हें बहुत कुछ समझाया; लेकिन आपने किसी की बात पर ध्यान नहीं दिया। लोग उन्हें पागल कहने लगे और तरह-तरह से हँसी-मज़ाक उड़ाने लगे। उस समय सत्य-नारायण ने यह ग़ज़ल बनाई थी :—

यह पागल होना तो हमको मुबारिक हो, मुबारिक हो।
सभी जगधंध से छुटना मुबारिक हो, मुबारिक हो॥
जो कोई जानना चाहे कि दुनियाँ का रहस क्या है।
इक पागलपन समाजाना मुबारिक हो, मुबारिक हो॥
सभी मिथ्या सभी मिथ्या, यह जीवनमरण भी मिथ्या।
अब प्रेमपूरण हो चुके मुबारिक हो, मुबारिक हो॥
पागल होने को ऋषि-मुनि भटकते फिरते जंगल में।
पागलपन समझ जाना मुबारिक हो, मुबारिक हो॥
असल को पा लिया जिसने उसी का नाम पागल है।
पागलपन गले पड़ना मुबारिक हो, मुबारिक हो॥
सतदेव होना चाहता पागलों का बादशाह।
हमको हमारी यह दुआ मुबारिक हो, मुबारिक हो॥

इसके बहुत दिन पीछे सत्यनारायण ने स्वामीजी के विषय में एक अष्टक भी बनाया था, जिसका नाम था श्रीरामतीर्थाष्टक यह 'सरस्वती' में छपा था। पाठकों के मनोरंजनार्थ उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं।

श्रीरामतीर्थाष्टक

जय जय ब्रह्मानन्द-मगन जन-मन-हरसावन।
जय अमन्द सुन्दर सनेह रस सुठि सरसावन।
जय विशुद्ध वेदान्त 'व्यास' नय मग दरसावन।
जय सिद्धान्त उजास 'राम-वरसा' बरसावन।
जय पुलकित तन पावन परम, प्रफुलित प्रिय प्रेमायतन।
जय जग दुरलभ आचार्य वर, आर्य्य रतन-गर्भा-रतन॥ १॥

जय तपचर्या-उदाहरण मनहरन जु अनुपम।
जय नित नवल उमङ्ग भरन युवकन हिय उत्तम।
जय उदार पर हित-सुधार-रत भारत प्रियतम।
जय जिय जाननहार राउ अरु रंक एक सम।
जय वर विराग अनुराग प्रद, गदगद हिय सत सुहृदवर।
जय पद पद पर स्वातंत्र्य प्रिय, विसद प्रेम-पंकज-भ्रमर॥ २॥

जय पंजाब-मराल बाल गुन मंजु माल धर।
जयति स्वप्रन-प्रतिपाल सुमति-गति-रुचि रसाल वर।
जय विनोद-व्रत-विमल सुधाकर-कर उज्जल तर।
जय स्वजन्म वसुधा सेवा-रत निरत निरन्तर।

जय भव-भय दारुन दुख हरन भेद हरन तारन तरन।
जय पूरन मृदु स्वर सों "प्रणव" उच्चारन धारन करन॥ ३॥
जय कुभाव-कुल-कदन सरलता-सदन सुहावन।
चारुबदन मन मदन मदन मोहन मन भावन।
जय अगाध रस रङ्गी गङ्गी[1] सङ्गी पावन।
ब्रज-ब्रजभाषा भक्त भक्ति रस रुचिर रसावन।
जय जग कलोल कर लोल अति गोल चन्द प्रियतम परम।
धृति धरम प्रभाकर नरम हिय हारन भव भय भरम तम॥ ४॥
जय प्रन-प्रनय दृढ़ावन दृढ़ तर छोह छुड़ावन।
आरज-सुयस बढ़ावन वैदिक ध्वजा उड़ावन।
जय विदेश विद्वान चकित चंचल चित चोरन।
नित अशेष उपदेश प्रचुर पीयूष निचोरन।
भुवि विश्रुत विविध प्रमान जुत दै दै श्रुति परिचय प्रबल।
जय जयकुमार[2] जय पान जिय भारत रति राची नवल॥ ५॥
विशद उपनिषद पदम 'अलिफ'[3] षटपद गुंजारन।
सुघर स्वच्छ स्वच्छन्द साधु उद्देश सँवारन।
सुलभ सुजान अमान मनोविज्ञान उधारन।
भारत-दशा सुधारन सब तन मन धन वारन।
जय मन्द-मन्द आनन्द-रस-पारायण पपिया अमद।
जय निरत आत्मरत सतत सत, सतनारायण हिय सुखद॥ ६॥
यह आतम अज अगम अमर अनुपम और अक्षय।
तजि यासों सम्बन्ध प्रकृति में प्रकृति होति लय।

---

१. अमेरिका २. शालिग्राम-स्वरूप कृष्ण का प्यारा नाम।
३. उर्दू मासिक-पत्र।

यों विचारि उर मरम प्रबल प्रगटत इमि निश्चय।
रामतीर्थ भारतमय भारत रामतीर्थमय।
कहा मिलन-बिछुरन जबै तुम हममें हम तुममें बसत।
बस बिमल ब्रह्म वैभव विपुल विश्व-व्याप्त केवल लसत ॥ ७ ॥

जब लौं देश हितैषिन को भारत में आदर।
जबलौं भुवि अखण्ड शङ्कर वेदान्त उजागर।
जबलौं सुभग स्वदेश भक्ति निश्शेष बसति मन।
जबलौं जगमग जगत जगत जगमगत प्रेमपन।
तबलौं निस्संशय रहहि, रामतीर्थ कीरति अमल।
नित अङ्कित प्रति उर पटल पर, अजर अमर अविचल अटल ॥ ८ ॥

माता की मृत्यु

जब सत्यनारायण लगभग १७ वर्ष के थे, उनकी माता का देहान्त हो गया। उस समय उन्हें जो दुःख हुआ उन्होंने "माता-विलाप" नामक कविता में इस भाँति प्रकट किया था—

तेरे बिना मातु को मेरी काजर आँख लगैहै।
हाथ पाँव करि ऊजर माता को मुख मोर धुवैहै ॥
भाँति भाँति के वस्त्र हाथ गहि को मोकौं पहरैहै।
बड़ी फिकर करिके को माता भोजन मोहिं करैहै ॥
दत्तचित्त ह्वै मो कहँ माता, तो बिनु कौन पढ़ैहै।
मार-पीट के जननि कौन मोहिं बारम्बार खिजै है ॥
पढ़े-लिखे की मातु आजतें कौन परीक्षा लैहै।
भीतर ते प्रसन्न ह्वै माता ऊपर ते जु बिरैहै ॥

रामचरित मानस की माता कौन छटा छहरैहै।
टेक मेटि औरन की को निज टेक केतु फहरैहै॥
खुशी होय कर माता मो पै को इनाम अब देगी।
समझि उठनि अपने लालन की कौन हीय भरि लेगी॥
हाय मात! निज वत्सहि तजिकैं कितको जाय सिधारी!
बिना लखैं तुमरे जल बरसे नयनन ते अति भारी॥
जो मैं जानतु ऐसी माता सेवा करत बनाई।
हाय! हाय!! कहा करूँ मात तुव टहल नहीं कर पाई॥

माता के मरने पर सत्यनारायण ने अपने गुरूजी के नाम एक चिट्ठी लिखी थी। उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं।

श्रीभगवत्यै नमः श्री गुरुचरण कमलेभ्यो नमः

श्री ६ युत पं० जी महाराज—साष्टांग दंडवत के पश्चात् सेवक का नीचे लिखा सविनय निवेदन है:—

हमारे पापों के उदय से और पुण्यों के क्षीण होने से हमारी प्यारी सुखकारी दीनन हितकारी मा गत मंगलवार ७ को स्वर्गनारी की गोद में सो गई, यह तो सोच चित्त को डाह करही रहा था कि और दूसरी आपत्ति आकर सेवक पर उपस्थित हुई है। अब यहाँ के पंडितगण उनकी त्रयोदशी के विषय में झगड़ा कर रहे हैं। कोई पन्द्रह दिन की कहता है और कोई ठीक तेरह दिन ही की मानते हैं। और महर्षि-प्रणीत गरुड़ पुराण में भी यही दिया है यथा—

त्रयोदशेन्हि सम्प्रेतो नीयते यम किंकरै।
पिंडजं देहमाश्रित्य दिवारात्रौ क्षुधान्वित॥

श्लोक १३८, अध्याय २

अपिच

त्रयोदशेन्हि सम्प्रेतो नीयते यम किंकरै।
तस्मिन मार्गे ब्रजतयो ग्रहीत इव मर्कट॥

श्लोक ४४, अध्याय २ गरुड़

इसका और अधिक विवरण उक्त अध्याय के ३२ वें श्लोक से अंत के श्लोक तक दिया है। इस ग्रन्थ से मालूम होता है कि पश्चात् १३ दिन के हमारी मा को कुछ नहीं मिल सकता। इससे तेरह ही दिन का कार्य होना योग्य है। मेरे मतानुसार मासिक श्राद्ध वार्षिक श्राद्ध वा अकाल-मृत्यु का विषय इससे जुदा है। महाराज! सेवक की प्रार्थना यह है कि पंचकों में यदि तेरही करते हैं तो यहाँ के पंडितों के मत-विरुद्ध है; और यदि उनके पश्चात् करते हैं तो गरुड़-पुराण के मत-विरुद्ध है; और मा को कुछ नहीं मिलता—अथवा उक्त ग्रन्थ झूठा है वा यह श्लोक मिलाये हुए हैं। हाँ, पंचकों में दाह-कर्म करना मना हैं सो यहाँ पर यह कांड उपस्थित नहीं। कृपा कर जैसी सेवक को आज्ञा हो वह करें, क्योंकि यह प्रथा बहुत प्रचलित भी नहीं है। शेष मिलने पर।

अभागा सत्यनारायण

धाँधूपुर, आगरा

मित्र को पद्य में पत्र

उन दिनों सत्यनारायणजी सनातनधर्म का प्रचार करने के लिये भी आस-पास के ग्रामों में कभी-कभी जाया करते थे, यह बात

निम्नलिखित पत्र से, जो उन्होंने अपने किसी मित्र को भेजा था, प्रकट होती है।

पत्र

सिद्धि श्री सद्गुण ते भूषित पावन परम पियारे।
राम राम बहु बार हमारी लेहु प्रथम सुखकारे॥
ता पाछे चित दै सुन लीजे कछुक हाल अब मेरो।
यहँ प्रिय कुशल सबहि बिधि चाहत तेरो कुशल घनेरो॥
वहु दिन तें नहिँ भेजी पाती छाती दरकति मेरी।
करक करेजा नित ही करकत निठुर बुद्धि कहा तेरी॥
अब हू सोचि समझ कर चेतौ कछुक दया उर लावौ।
मन तुव पीर तीर सी खरकत ताकों तुरत मिटावौ॥
कारण बिना हाय क्यों प्यारे इतक क्रोध तुम कीन्हो।
दुष्टराज के बस में ह्वै के क्यों अपयस सिर लीन्हो॥
जातें लखी परै अब मोकों क्रोध तुम्हार पियारो।
राखि लियो ताही ते निज उर मोकों हाय बिसारो॥
कलुषित कर तेरो मन दीपक तेल सनेह जरावै।
हहरि हहरि कर नेरे हिय को ये ही मित्र हरावै॥
सबही काज नसावैं याते दूर करौ तुम याकों।
मन दृढ़ करि कटि कसैं पियारे पकरहु शान्ति ? ताकों॥
माता त्यागि स्वर्ग को ध्याई तुम क्यों अब मुख मोरयो।
सहपाठी पन भूलि मित्रका रह्यो प्रेम अब थोरयो॥
हा हा करि कर जोरि कहौं नैंक पत्री बेग पठावौ।
बिरह बन्हि अभ्यन्तर लागी ताकों बेग नसावौ॥

पाव लगन निज पितु माता सन कहियो अति ही मेरो ।
राखें कृपा जानि जन अपनो हैां उनको हैां चेरो ॥
शुद्ध सनातनधर्म के रक्षक डालचन्द जो प्यारे ।
छत्रसाल तिनके सुत आदिक अरु जो मित्र हमारे ॥
आशिर्वाद कहो तुम मेरो ख़ूबहि खुशी मनावैं ।
दम्भी और पाखण्डी मत को जरते खोद नसावैं ॥
पढ़े आगरे बीच विप्रवर जो वेनीपरसाद ।
कह तिन सो पालागन मेरो मित्र सहित अल्हाद ॥
श्री पंडित ईश्वरप्रसादजू झगनलाल के भ्राता ।
जाय मदरसा तिनते कहु तुम पालागन मम ताता ॥
विनय सहित विनती करि दीजो पत्रिहु नाँहि पठाई ।
किहि कारण इतने दिनान सों अदया-दृष्टि लखाई ॥
कछुक दिनन के माँहि आप के ग्राम बीच मैं आवौं ।
विनय सनातनधर्म सभा की तुमकों ख़ूब सुनावौं ॥
अब कछु और लिखत नहिँ आवै करहुँ इत्यलम ताते ।
सुधिकर शीघ्र पत्र तुम भेजो सुखी होय मन जाते ॥

श्रीबालमुकुन्दजी गुप्त की भविष्य-वाणी

२२ अगस्त सन् १९०३ के "भारतमित्र" में सत्यनारायण की निम्नलिखित कविता छपी थी—

विरथा जन्म गमायो अरे मन ।

रच्यो प्रपंच उदर-पोषण कों राम कैा नाम न गायो ।
तरुणिन तरल त्रवलि कों लखि कें हाय फिरयो भरमायो ॥

रह्यो अचेत चेत नहिँ कीन्हों सगरो समय बितायो।
माया जाल फँस्यो हा अपुतें उरझि भलो बौरायो॥
पर तिय को हिय देत न हिचकत नैंक नहीं सरमायो।
भगवा भेष धरचो ऊपर ते नाहक मूड़ मुड़ायो॥
जन-मन-रंजन भव-भय-भंजन अस प्रभु को बिसरायो।
नित प्रति रहत पाप में रत तू कबहुं न पुण्य कमायो॥
मंगलमय को नाम तज्यो विषयन सों लिपटायो।
सत्यनारायण हरिपद पंकज भजो होय मन भायो॥

२५।५।१९०३

इस पर टिप्पणी करते हुए श्रीबालमुकुन्दजी गुप्त ने लिखा था—

"यह एक बालक की कविता श्रीयुत पं० श्रीधरजी पाठक की मार्फ़त हमारे पास पहुँचो है। बालक तबियतदार है। यदि अभ्यास करेगा तो भविष्य में अच्छी कविता कर सकेगा। अपनी तरफ़ से हम इतना ही कहते हैं कि भाषा जरा वह और साफ़ करे और कुछ नये ढङ्ग की कविता में अभ्यास बढ़ावै; क्योंकि जिस ढङ्ग की वह कविता है वैसी हिन्दी में बहुत अधिक और उत्तम से उत्तम हो चुकी है।"

यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि इस "तबियतदार बालक" के विषय में गुप्तजी की भविष्यबाणी कितनी सच हुई। यह बात ध्यान देने योग्य है कि सत्यनारायण की कविता को पं० श्रीधर पाठक ने "भारतमित्र" सम्पादक के पास भेजा था। सत्यनारायण पाठकजी की कविता के बड़े प्रेमी और पाठकजी के कृपा-पात्र थे।

द्विवेदीजी से परिचय

सन् १६०३ के अन्त में सत्यनारायण का परिचय पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी से हुआ। द्विवेदीजी की एक चिट्ठी, जो उन्होंने सत्यनारायण को ३२।१०।०३ को भेजी थी, यहाँ उद्धृत की जाती है।

JHANSI 30-10-03.

DEAR BABOO SATYANARAYAN,

The frankness with which you have written your letter has immensely pleased me. If I have occasion to come to Agra I shall ask you to kindly come to see me at G. I. P. Ry, Agra city Booking office in Rawatpara. Your description of Hemant will appear in Saraswati either in December or January

Yours Sincerely,

MAHAVIRPRASAD.

इसके बाद ३० दिसम्बर सन् १६०३ को द्विवेदीजी ने एक कार्ड फिर अँगरेज़ी में भेजा था, जिसका तात्पर्य्य यह था कि पहली जनवरी को ११ बजे सवेरे रावतपाड़े में मुझसे आकर मिलो। हम समझते हैं कि सत्यनारायण को द्विवेदीजी के दर्शन करने का सौभाग्य पहली जनवरी सन् १६०४ को ही प्राप्त हुआ था। निस्सन्देह द्विवेदीजी जैसे साहित्य-प्रेमी का प्रभाव सत्यनारायण के हृदय पर अवश्य पड़ा होगा। सत्यनारायणजी की मृत्यु के अनन्तर द्विवेदीजी ने सरस्वती में लिखा था—

"सत्यनारायणजी से हमारा प्रथम परिचय उस समय हुआ था, जब वे ऐण्ट्रेंस क्लास में पढ़ते थे। पेट की प्रेरणा से जब जब हमें आगरा जाना पड़ता था, तब-तब वे मिलते थे। ख़बर पाते ही हमारे ठहरने के स्थान पर आ जाते थे। दिन दिन भर साथ रहते थे। ताउ गञ्ज के पास अपने गाँव भी एक बार वे हमें ले गये थे। इनका असामयिक निधन बड़ी दुःखदायिनी घटना है।"

सत्यनारायण की कविता कभी-कभी सरस्वती में छपा करती थी। इनकी वन्देमातरम् कविता के विषय में द्विवेदीजी ने इन्हें अपने २०।२।०५ के पत्र में लिखा था:—

"नमस्कार

वन्देमातरम् पहुँचा। कविता बड़ी ही मनोहर है। थैंक्स—ऐसे ही कभी-कभी लिखा कीजिये। और सब कुशल है।

भवदीय—

महावीरप्रसाद"

स्वदेश-बांधव से सम्बन्ध

जितने नवयुवक 'स्वदेश-बांधव" के द्वारा हिन्दी लिखने की ओर आकर्षित हुए, उतने बहुत कम पत्रों द्वारा हुए होंगे। यह पत्र स्वदेशी-आन्दोलन के युग में आगरे से निकाला गया था और इसके लेख तथा कविताएँ देशभक्ति से पूर्ण होती थी। "स्वदेश-बांधव"का मोटो भी सत्यनारायण का बनाया हुआ था।

"देश सेवा चारु उन्नति चातुरी सुविचार!
व्यापार प्रेम पसार अरु नय नागरी परचार॥
सत्काव्य औ कल कला कौशल करनको विस्तार।
कर्तव्य जानि "स्वदेश-बांधव" को भयो अवतार॥"

सन् १९०५ में "स्वदेश-बान्धव" के मुख-पृष्ठ पर यह पद्य छपता भी था। इसके कुछ दिनों बाद से सत्यनारायणजी "स्वदेश-बांधव" के पद्य-विभाग का सम्पादन भी करने लगे थे।

श्रीयुत चतुर्वेदी पं० रामनारायण मिश्र से परिचय

सन् १९०४-०५ में चतुर्वेदी श्री रामनारायण मिश्र आगरे में थे। उनको हिन्दी-कविता करने का शौक था। मिश्रजी के प्रभाव से सत्यनारायणजी ने अंग्रेज़ी ढङ्ग के अनुप्रास अपनी कविता में लाना प्रारम्भ किया था। काश्मीर सुखमा उन दिनों नयी निकली थी। उसी वज़न पर बसंत व पावस की कविताएँ बनी थीं। "राघवेन्द्र" भी प्रयाग से चतुर्वेदी पं० द्वारकाप्रसादजी शर्म्मा ने उसी ज़माने में निकाला था। उसमें सत्यनारायणजी की कविता कभी-कभी छपा करती थी।

रैवरैण्ड एल० वी० जोन्स को हिन्दी पढ़ाना

जिन दिनों सत्यनारायणजी सेण्ट जोन्स कालेज में पढ़ते थे। वे एक एंग्लोइण्डियन सज्जन को हिन्दी भी पढ़ाते थे। ये महाशय आजकल ढाका के बैप्टिस्ट मिशन में काम करते हैं। जब इन्होंने रैवरैण्ड डेविस (प्रिंसपल सेण्ट जान्स कालेज, आगरा) के पत्र में सत्यनारायण की मृत्यु का समाचार पढ़ा तो इन्होंने डेविस साहब को अपने ५ फ़रवरी सन् १९१९ के पत्र में लिखा था:—

"First let me say how grieved I am over the news you send. I discovered for myself, ten years ago, some of the worth of the Late Pandit and we became very friendly. He was then in the Government College. He made me, through his close knowledge of it, a keen student of the Ramayan. I have still a very good photo of him which I took in those days. I do not know if you would care to have a copy. Once at my request he wrote a kind of Indian 'Nursery Rhyme' for me in Hindi. I have often repeated it when travelling in North India and it never fails to catch on. It might be of interest to know how these lines came to be written. My elder sister Miss Edith M. Jones of Woodsfock Mussoorie, felt the need of some Indian equivalent to some of our English rhymes. I asked my Pandit to make the venture, and in Hindi gave him e. g. some idea of our Pat-a-cake baker's man in a crude jingle. He seemed very pleased when he produced the enclosed lines. Personally I think he succeeded admirably. Before I came away to Dacca he brought me, much to my surprise aud delight, about 20 lines of affectionate farewell at parting."

अर्थात्—"सब से प्रथम मैं आपको यह बतला देना चाहता हूँ कि आप के भेजे हुए (पं० सत्यनारायण की मृत्यु के) समाचार को पढ़कर मुझे बहुत खेद हुआ है। आज से दस वर्ष पहले मुझे स्वर्गीय पंडितजी की योग्यता का कुछ परिचय मिला था। तभी से हम लोगों में बड़ी मित्रता हो गई थी। वे उस समय गवर्नमेन्ट कालेज में पढ़ते थे। रामायण का उन्हें बहुत अच्छा ज्ञान था और उसी के

द्वारा उन्होंने मुझे भी रामायण का एक प्रेमी विद्यार्थी बना दिया। उन दिनों में मैंने उनका एक बहुत अच्छा फोटो लिया था। वह अब भी मेरे पास है। मैं नहीं जानता कि आप उस फोटो की एक प्रति अपने पास रखना पसंद करेंगे या नहीं। एक बार उन्होंने मेरी प्रार्थना पर हिन्दी में बच्चों का एक गीत बनाया था। उत्तरी भारत में यात्रा करते समय मैंने इसको अनेक बार दुहराया है और जब कभी मैंने इसे कहा है, लोगों को हँसी आये बिना नहीं रही। ये पंक्तियाँ लिखी किस प्रकार गईं, यह भी सुन लीजिये। मेरी बड़ी बहन मिस ऐडिथ० ऐम० जोन्स ने मुझ से कहा कि अंग्रेज़ी में जैसे बच्चों के गीत हैं उनके समान हिन्दी में भी कुछ गीतों की ज़रूरत है। मैंने अपने पडित (सत्यनारायण जी) से कहा कि आप कोशिश करके बनाइये और मैंने उन्हें कई अंग्रेज़ी गीतों का भावार्थ हिन्दी में बतला भी दिया। तभी उन्होंने साथ की ये हिन्दी पंक्तियाँ बनाईं, और जब बनगईं तो बड़े ख़ुश हुए। मेरी सम्मति में उन्हें इन पंक्तियों के बनाने में अच्छी सफलता मिली। मेरे ढाका चले आने के पूर्व वे मेरे पास बीस पंक्तियों का एक अभिनन्दन-पत्र लाये जिसे देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य्य और प्रसन्नता हुई।"

बच्चों के जिस गीत का ज़िक्र मिस्टर जोन्स ने किया है, वह निम्नलिखित है —

सुन सुन रे ए रे हलवाई, भूख लगो है मुझको भाई।
पूरी बेलो जल्दी जल्दी, पीसो अभी मसाला हल्दी।
होवे ज्योंही गरम कढ़ाई, उसमें दो पूरी छुड़वाई।
घी देखो छुन छुन करता है, आँच लगो उबला पड़ता है।

पूरी मती जलाये डालो। कलछी से अब इसे निकालो ॥
यह मेरा है भुग्गा भाई। तूने अच्छी देर लगाई!

उन्हीं दिनों सत्यनारायणजी ने इसी प्रकार के और भी कई पद्य बनाये थे। परिशिष्ट में हमने उन्हें दे दिया है। जो अभिनन्दन-पत्र सत्यनारायणजी ने रैवरैण्ड जोन्स को दिया था, उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं।

* श्रीहरि: *

श्रीयुत सद्गुन सदन सुभग सबभाँति सुहावन।
मित्र एल० बी० जैान्स मृदुल मञ्जुल मन भावन॥
तव उदार गम्भीर प्रेम—पावन—रुचिराई।
मुख सों बरनि न जाई प्रिय मन ही मन भाई॥
तव सुचि सोहनि सरल प्रकृति की सुधि आवेगी।
मनमोहनि जो अवै वुही पुनि तरसावेगो॥
कछुक दिनन के हिलन मिलन सुन्दर बोलनसों।
लोल नेहमय लता लहलही लिपटति मनसों॥
बिरह-बीजुरी गिरै अचानक जो कहुँ आई।
जात नवेली अलबेली बेली मुरझाई॥
अरु हिय तरु संतप्त होत अति जा अघात सों।
सूखिजात चित-चिन्ता टपकति पात-पात सों॥
अटल प्रकृति नियमानुसार जो दशा भई है।
सो सब जिय जानत प्रियवर! नहिं जाति कही है॥
लहि तव सुमिरन मधुर सघन घन की बरसाए।
पिय तरु फूलहि फरहि अङ्कभरि नेहलता ए॥

बिसरैयो जनि, जैान्ह निरन्तर रस बरसैयो ।
सरसैयो नवनेह, कुशलमय पत्र पठैयो ॥
निरत नागरी उन्नति में अपनी चित दीजो ।
या अबलहिं उद्धारि मुदित निरमल यश लीजैा ॥
ईश देहि तोहि शक्ति भक्ति नित निज चरनन की ।
तिनसों तव मन कसै शृङ्खला—रति सुवरन की ॥
आरत भारत शुभचिन्तक कर्त्तव्य-परायण ।
होहु, सदां आशीस देतयह सत्यनारायण ॥

सत्यनारायण

धांधूपुर—आगरा

पाठकों के मनोरंजनार्थ रैवरैण्ड जान्स की एक हिन्दी-चिट्ठी की ज्यों-की-त्यों नक़ल यहाँ दी जाती है ।

Regent's Park Hostel,

Dacca. आगस्ट ३ । १९१०

श्रीयुत प्रिय वन्धु सत्यनारायण

आशीर्वाद

अनेक दिन से मैं आपकी ओर से एक पत्र की बाट देखता रहता हूं क्योंकि अब तक आप बी० ए० पास हो गये कि ना, यह बात मैं ठीक जानता नहीं । क्यों भाई हम दो जन भ्राता लोग हैं न, सो मुझको भूलियो ना—किन्तु पत्र लिखने की पारी मेरे है—आपका पत्रोतर पाया और इससे मैं अति आनन्दित हुआ ।

आजकल न हो कि हिन्दी पढ़ना लिखना भूल जाऊँ, मैं प्रत्येक दिन कुछ ना कुछ पढ़ा करता हूँ । उचित है जो कि आप चेले की यह समाचार सुनके सुख रहें !

बहुत दिन से मैं जान लिया हूँ कि बङ्गला और हिन्दी में बहुत मेल हैं - किन्तु बङ्गला का उच्चारण में इतना अन्तर है कि कान फटने को है और आगे यहाँ पर कथा-प्रसंग में अनेक शब्द व्यवहार करते हैं जो हिन्दी में केवल पुस्तक में उपस्थित हैं। वास्तविक दोनों भाषा संस्कृत से निकली हैं—परन्तु भाई मेरी इच्छा हिन्दी पर सर्वदा चलती रहती है और क्या यह तो है न, मेरे जन्म-स्थान की बोली। क्या हम जन्म देश भूल सकते हैं, कभी नहीं।

दयामय परमात्मा आपको सुख दे यह मेरा प्रार्थना।

आपका चेला

एल० बी० जोन्स

अपने "चेले" के इस "आशीर्बाद" को पाकर सत्यनारायण को अवश्य ही हँसी आ गई होगी!

सम्भवत: इन्हीं पादरी साहब की पढ़ाई के विषय में श्रीसत्य भक्तजी ने एक घटना "विद्यार्थी" में लिखी थी, वह यह है। एक अंग्रेज़ी पादरी आपसे हिन्दी पढ़ता था। उसकी पढ़ाई में तुलसीकृत रामायण का राम-स्वयंबरवाला अंग भी था। जब पढ़ते-पढ़ते वह धनुष-भंग का वर्णन समाप्त कर चुका, और उसके पश्चात् उसने "त्रिभुवन घोर कठोर" वाला छन्द पढ़ा तब उसने जिज्ञासा की कि अब तक तो इसमें बराबर दोहा और चौपाई आते रहे, अब क्या कारण है कि यह नवीन ढङ्ग का छन्द लिखा गया। इन अनोखे प्रश्न को सुनकर एक बार तो आप चकरा गये और चकराने की

बात भी थी। पर धन्य है सत्यनारायण की बुद्धि के, जिसने तुरन्त ही एक विचित्र उत्तर सोच निकाला। आपने कहा—"धनुष टूटने के पहले सब लोगों के विचार भिन्न-भिन्न थे। जनक धनुष न टूटने से सीता के अविवाहित रहने की बात सोच कर घबरा रहे थे। सीता जी की मा रामचन्द्रजी के कोमल शरीर को देखकर उनसे धनुष का टूटना असम्भव समझ रही थी। स्वयं सीताजी का चित्त दुविधा में पड़ा हुआ था और वे ईश्वर से रामचन्द्रजी द्वारा धनुष टूटने की प्रार्थना कर रही थीं। राजा लोगों को खयाल था कि अब धनुष को कोई नहीं तोड़ सकेगा। इसी प्रकार जनता के चित्त में नाना प्रकार के विचार उत्पन्न हो रहे थे। पर ज्यों ही रामचन्द्रजी ने धनुष तोड़ा कि सबके विचार बदल गये। इसीलिये सबके बिचारों को बदला हुआ देखकर कवि ने भी अपनी छन्द-प्रणाली बदल दी और अपने विचारों को एक नूतन छन्द में प्रकट कर दिया! पादरी साहब यह सुनकर बड़े खुश हुए।

सेण्टजान्स कालेज में अध्ययन

सत्यनारायणजी कई वर्ष तक सेण्टजान्स कालेज में पढ़े थे। जब कभी कोई अध्यापक कालेज छोड़कर जाता था उसके लिए अभिनन्दन-पत्र तैयार करना सत्यनारायण का एक कर्तव्य सा हो गया था। सच तो यह है कि कालेज छोड़ने के बाद भी जबतक वे जीवित रहे इस कर्तव्य से उनका पीछा नहीं छूटा। कहीं किसी स्कूल या कालेज से कोई शिक्षक या अध्यापक जानेवाला हुआ कि

वहाँ के विद्यार्थियों ने सत्यनारायण को आ घेरा और अभिनन्दन-पत्र दो-चार घंटे के अन्दर तैयार करने की आज्ञा दे दी। सत्यनारायण जी का उस अध्यापक से कुछ भी परिचय है या नहीं, इस बात का अभिनन्दन-पत्र से कोई सम्बन्ध नहीं समझा जाता था। और सत्यनारायणजी भी एक ऐसे सीधे-सादे आदमी थे कि अपरिचित अध्यापक की बिदाई में उनसे कविता बनवाना कोई कठिन काम नहीं था। विद्यार्थी इस बात को जानते थे कि पंडितजी गुड़ की मंडी में, चतुर्वेदी अयोध्याप्रसादजी पाठक के यहाँ मिलते हैं। बस, सीधे वहीं पहुँचते थे, और अभिनन्दन-पत्र तैयार करा के ही लौटते थे। इस प्रकार विद्यार्थी-जीवन में और उसके बाद भी आगरे भर में स्वागत-कविता और अभिनन्दन-पत्र तैयार करना सत्यनारायण जी के लिये एक निश्चित कार्य्य हो गया था। इस प्रकार से अभिनन्दन-पत्रों को हम स्थानाभाव से यहाँ उद्धृत नहीं कर सकते। इसके सिवाय इन सब में एक से ही भाव हैं, इसलिये उदाहरण के लिये एक-दो का दे देना काफ़ी होगा। प्रिन्सिपल हेथोर्न्थवेट को निम्नलिखित अभिनन्दन-पत्र दिया गया था।

॥ श्री हरिः ॥

अभिनन्दन-पत्र

श्रीयुत प्रियतम परम सरल हिय सद्गुन आगर।
सदय निरन्तर धीर धर्ममय नितनय-नागर॥

कर्मनिष्ठ अति शिष्ट विमल जस चहुँ सरसावन।
सुठि रचना-चातुर्य्य सुभग उर मोद जगावन॥
दीन हीन छात्रनु के साँचे सुखद सहायक।
श्री जे० पी० हेथोर्न्थवेट सुन्दर सब लायक॥
उज्जल उच्च उदारनीति सब मृदुल सुहाई।
मुखसों कहत बनै न मुदित मन हो मन भाई॥
कौन कौन से तुम्हरे गुन यहँ कोउ गिनावै।
'तुमसे हो बस तुमहिं' अन्य कोउ शब्द न भावै॥
जबलों इङ्गलिस भाषा को अर्गलपुर आदर।
जवलों सुठि सन्जोन्स पुण्य कोलेज उजागर॥
जबलों सत्य कृतिज्ञ-भाव उर बास लहैगो।
तब लों तुम्हरो नाम यहाँ पै अटल रहैगो॥
सुधि आवेगी सरल प्रकृति प्रिय परम तिहारी।
होगी कैसी दशा देखिये हृदय बिचारी!!
आप चले निज देश हमैं सोंप्यो किहि हाथा।
जो सब भाँति हमेस देइगो हमरो साथा॥
सब प्रकार सो हर्ष, करक बस करकत यही हमारे।
मिलि तुमसों नित हाय! बिलग अब तुमकों करहिं पियारे॥
तुमहिं बताओ कौन भाँति हम धीरज हिय में धारैं।
करिके कठिन हृदय निज कैसे तुम्हरी सुधहि बिसारैं॥
होत करैं सन्ताप कहा विधि यह विधि प्रबल रचाई।
जाउ आप सन्तोष करैं हम याही में सुघराई॥
यद्यपि प्रेमीजन प्रेमी को परबस ह्वै के त्यागें।
परि उमङ्ग बस निज उर ताकी उन्नति में अनुरागें॥

यही सोचि हम तुमकों प्यारे करत विदा सुच पाई।
समाचार निज तुमहिं पठावन चहियतु नित सुखदाई॥
तव कर सों पल्लवित सुखद अति जो अनुपम अलबेली।
छई कलित कोलेज कीर्ति की कोमल बेलि नवेली।
जापै अचल नैम सों पूरण प्रेम रसहिं बरसैयो।
सुधि-बुधि जाकी त्यागि पियारे जनि जाको तरसैयो॥
अधिक निवेदन करहिं कहा तुम स्वयं चतुर गुणवाना।
सुमिरि पुरातन प्रीति-नीति नित सब को धरियो ध्याना।
श्री मिसेज़ हेयोन्र्थवेट अरु तुम को सुख सम्माना।
सत्य सनेह सुजस आयुस सुत देहिं ईश भगवाना॥

सत्यनारायण

सेण्ट जान्स कालेज के Old boys association (पूर्व विद्यार्थि-सम्मेलन) के दिन एक बार सत्यनारायण ने जो पद्य-रचना की थी उसका कुछ अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है।

क्यों ये प्रसन्न मुख आज प्रकाशमान।
क्यों ये सुरम्यमन कंज विकाशमान॥
उत्साह क्यों जु लघु दीर्घन में समान।
प्राचीन-शिष्य-शुभ-उत्सव विद्यमान॥
ऐसो दुचन्द सुखकारक दृश्य देख।
आनन्द-मग्न मन होत जु मो बिशेष॥
देख्यो अतीव अब प्रेम जु औ निवाह।
प्रत्येक वर्ष तव एेस मिलाप चाह॥
यासों हि क्योंकि मिलिबो जग बीच नीको।
याके विना सकल हास्य प्रियत्व फीको॥

कालेज प्रेम कछुहूँ हिय में जगाओ।
तो सेलिब्रेशन हि वर्ष प्रत्येक आओ॥
... ...

बो नो प्रवीण नय हास्य रसाधिकारी
साहित्य-मग्न उर जास सुप्रेम भारी॥
सर्दारसिंह वर्नी अरु स्वर्णकार।
दत्त प्रयत्न तव धन्य रच्यो अपार॥
श्रीमत् डरैंट प्रिंसोपल धम्मंधोर
हेयोनवेट गुणशोल समान बीर॥
न्यायोपकार रत विज्ञ उदार होय।
हो छात्रप्रेम परिपूर्ण उर त्वदीय॥
श्री हंटले अति प्रफुल्लित चित्त घोष।
घंश्यामदास शर्मा... ... ...
श्रीटोम्स प्रिय प्रभृति सु देविदास।
औरो अनेक जिनको सुयश प्रकास॥
शार्दीय काल बहु दुःख उठाय भारे।
प्राचीन्नवीन सब मित्र इते पधारे॥
कीन्हों प्रफुल्ल हम चित्त तव कृपा सों॥
थैंकस्तु थैंक्स तुमकों सब भाँति यासों॥
इङ्गलैण्ड भाषा उद्धार वारे। धरै सदा ये सु पूर्व के तेज॥
हिल्लोर के संग कहो पियारे। "चिरायु होये संजैान्स कोलेज॥"

जिस समय प्रोफेसर सरकार सेण्ट जान्स कालेज छोड़कर आगरा कालेज के गये थे, उस अवसर पर भी सत्यनारायण ने

कविता बनाई थी। प्रिन्सिपल डरैएट, श्रीयुत राजू, श्रीयुत त्रिवेदी इत्यादि के लिये अभिनन्दन-पत्र सत्यनारायण ने ही तैयार किये थे।

विशप डरैएट की सम्मति

सन् १७ में सत्यनारायणजी ने बी० ए० की परीक्षा दी, लेकिन फेल हो गये। एक दिन प्रिन्सिपल डरैएट साहब ने कहा—

"Passing B.A. is not the goal of a man's life"

"कि केवल परीक्षा पास कर लेना ही मनुष्य जीवन का उद्देश नहीं है। इस बात को बहुतों ने एक कान से सुनकर दूसरे कान से बाहिर निकाल दिया, पर सत्यनारायण पर उसका पूरा-पूरा असर हुआ और उन्होंने उसी वर्ष से कालेज जाना छोड़ दिया।

विशप डरैएट (Right Reverant H. B. Durrant, M. A., D. D., Lord Bishop Lahore) ने अपने २० मार्च सन् १९१९ के पत्र में लिखा था—

"Satyanarain was a pupil of mine for some years at St. John's College, Agra. I remember him well. I had a strong personal regard for him as an earnest high minded student with a delightful enthusiasm for his own subjet, Sanskrit." अर्थात् "सत्यनारायण आगरे के सेण्ट जान्स कालेज में कई वर्ष तक मेरे शिष्य रहे थे। मुझे उनका अच्छी तरह स्मरण है। मेरे हृदय में उनके लिये बड़ा प्रेम था; क्योंकि वे एक उद्योगी और उदार चरित्र विद्यार्थी थे और अपने विषय संस्कृत के लिये उनके हृदय में आनन्द-दायक उत्साह था।"

सत्यनारायण का ज़िक्र करते हुए सैण्टजान्स कालेज के वर्तमान प्रिन्सिपल रैवरैण्ड केनन डेविस साहब ने अपने २७ फ़र्वरी १९१९ के पत्र में लिखा था—

"One whose literary gift it was not in my power to appreciate, but whose sweetness of character no one could fail to admire."

अर्थात् "यद्यपि उनकी साहित्य-सम्बन्धी योग्यता के मर्म या महत्व को समझना मेरी सामर्थ्य के बाहर था; लेकिन कोई भी उनके स्वभाव की मधुरता की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता था।"

सत्यनारायणजी के एक अन्य अध्यापक पं० गणेशीलाल जी सारस्वत, लिखते हैं:—

"आपने "सरस्वती" में श्रीयुत बदरीनाथ जी भट्ट के लिखे हुए लेख में पढ़ा होगा कि उसने सैण्ट पीटर्स कालेज आगरा से एफ़० ए० पास किया था। वहाँ उसको संस्कृत पढ़ाने के लिये प्रिंसिपल साहब ने मुझे नियत कर लिया था। वहाँ वर्ष भर मैंने उसे एफ़० ए० कोर्स की संस्कृत पढ़ाई थी। उसी वर्ष वह उत्तीर्ण होगया! उस समय प्रसन्न होकर उसने मुझसे कहा था—" पण्डितजी और लोग तो विद्यार्थियों को केवल पढ़ाते ही हैं; परन्तु आप पढ़ाने के साथ ही साथ उनके उत्तीर्ण होने के लिये परमेश्वर से प्रार्थना भी किया करते हैं! कई वर्ष से मैं इस कक्षा में सेण्ट जान्स कालेज से अनुत्तीर्ण होरहा था! आपसे पढ़कर यहाँ उत्तीर्ण होगया!"

विद्यार्थी-जीवन की विशेष बातें

प्रकृति-प्रेम।

बाल्यावस्था से ही सत्यनारायण बड़े प्रकृति-प्रेमी थे सौन्दर्य्य उनके मनको मुग्ध करता था। बचपन में यदि कोई बदशकल स्त्री या पुरुष उनको गोद में लेता तो वे बड़े खिन्न होते थे और सुरूप स्त्री-पुरुषों के पास जाने में बड़े प्रसन्न रहते थे।

उनके प्रकृति-प्रेम के कारण विद्यार्थी-जीवन में एक दुर्घटना होगई। वर्षा-ऋतु में पानी बरसनेके पीछे वृक्षों के निर्मल पत्तों का सौन्दर्य आप के चित्त को बहुत आकर्षित करता था। अपने कई पद्यों में आपने इसका वर्णन भी किया है।

पावस-प्रमोद में आपने लिखा है :—

"धोये धोये पात तरुन के हरसावत मन।
नेंक झकोरत डार झरत अनगिनत अम्बुकन॥"

भ्रमर-दूत में आप लिखते हैं—

"अलबेली कहुं बेलि द्रुमन सों लिपटि सुहाई।
धोये-धोये पातन की अनुपम कमनाई"॥

एफ़० ए० की परीक्षा थी। Poetry (पद्य) का पर्चा था। वर्षा हो गई थी। तड़के उठकर अपनी अटरिया की खिड़की खोलकर पढ़ने बैठे तो नीम, इमली इत्यादि के स्वच्छ पत्ते दिखलाई पड़े। बस फिर क्या था! पढ़ना छोड़कर निम्नलिखित कविता बनाने लगे—

"पौन की सनक घन सघन ठनक चारु,
चंचला चिलकि सतदेव चहुँ चाली है।

बादर की कड़ी झड़ी लगी चहुँ घा सों वर,
बोलत पपैया "पिय पिय" प्रन पाली है। ।
आतुर सो दादुर उछरि दुर दुर देत
दीरघ अवाज बाज गाज मतवाली है ।
सीतल प्रभात-बात खात हरखात गात
धोये-धोये पातनु की बात ही निराली है ॥"

इस कविता को बनाने और बार-बार पढ़ने में इतने प्रेम से लगे रहे कि आप को परीक्षा का ख्याल तक नहीं रहा ! परीक्षा जाकर दी तो लेकिन कवित्त की धुनमें इतने मस्त थे कि पर्चा गड़बड़ हो गया और इम्तिहान में उत्तीर्ण न होने पाये ।

जब सत्यनारायणजी नवीं कक्षा में पढ़ते थे तो बाइबिल के इम्तिहान में एक सवाल आया था, जिसमें कई पदों की व्याख्या कराई गई थी । एक पद उनमें था—"Render unto Caesar what belongs to caesar and render unto God what belong's to god" सत्यनारायणजी ने कुल परचा छोड़ इसी पद की व्याख्या हिन्दू-शास्त्रानुकूल करते हुए कापी भर डाली । Mr. B. W. Thomas, जो परीक्षक थे, कापी वापिस करते समय बोले—

"सत्यनारायण तुम एक नई बाइबिल बना डालो !" मन के मौजी ही तो ठहरे !

श्रीयुत सत्यभक्तजी ने "विद्यार्थी" में एक घटना लिखी थी । उसे हम यहाँ देते हैं ।

हास्यप्रियता

"हास्य-प्रिय आप बड़े भारी थे। सदा प्रफुल्लित रहते थे। शायद ही कभी क्रुद्ध होते हों। छोटे-बडे, बराबरवाले सब के साथ आप हास्यपूर्ण मधुर वार्तालाप करते थे। और तो क्या, गुरुजनों से भी आप अनेक समय हँसी कर बैठते थे। आपकी सुनाई हुई एक घटना हमें याद है। धाँधूपुर गाँव तीन साढ़े तीन मील दूर होने के कारण आप को कालेज पहुँचने में प्रायः विलम्ब हो जाया करता था। एक दिन प्रोफेसर ने नाराज़ होकर पूँछा—"तुम हमेशा लेट करके क्यों आते हो ?" आप ने उत्तर दिया—"ये सभी लड़के लेट करके (सोकर) आते हैं, मैं क्या न्यारा ही लेट करके आता हूँ ?" प्रोफेसर साहब ने और भी अधिक नाराज़ होकर पूछा कि ये लेट करके कैसे आते हैं। तब आपने कहा कि मुझे तीन-चार मील से आना सो जब शहर के आनेवाले ही लड़के देर करके आते हैं तब मेरा क्या विशेष अपराध है। प्रोफेसर साहब चुप रह गये।

पढ़ने का ढङ्ग

जब कभी आप कोई अच्छी किताब पढ़ते तो बस उसी के कोने पर कविता करके उसके अच्छे-अच्छे भावों को प्रकट कर देते थे।

एक बार आप (Pleasures of life) नामक पुस्तक पढ़ रहे थे। उसमें टेनीसन का यह पद्य आया—

And here the singer for his art,
Not all in vain may plead ;
The song that nerves a nation's heart,
Is in itself a deed.

आपने पुस्तक के कोने पर लिख दिया:—

"लहरि उठे जातीय हृदय जा गीतहिं को सुनि ।
सो अति अनुपम कार्य सरस है तासु प्रतिध्वनि ॥

इसके बाद एक वाक्य था—''Poetry is a speaking picture and painting is mute Poetry''

आपने लिखा :—

"काव्य मनोरम चित्र विसद बतरात सुहावत ।
चित्र अनूपम काव्य न बोलत तउ मनभावत ॥"

उक्त पुस्तक के वाक्य आपको ऐसे पसंद आये कि एक के बाद दूसरे का अनुवाद उसी पुस्तक के कोने पर इस प्रकार करते चले गये—

''Poetry is the centre in which all arts unite''

रुचिर रसात्मक काव्य केन्द्र अस अनुपम अभिनव ।
आइ आप सों आप मिलहिं जहँ ललित कला सब ॥

"Poetry is the fruit of genius".

प्रतिभा प्रभा प्रकासत ता को काव्य सुभग फल ।

''Poetry is the light of life, the very image of life expressed in its eternal truth.''

कविता जीवन-ज्योति सत्य की साँची मूरति।



एक बार आप 'रत्नाकर' जी की "समालोचनादर्श" नामक पुस्तक पढ़ रहे थे। झट आपने उसी के एक पृष्ठ पर यह पद्य-रचना कर डाली—

काउ देश को उन्नति अवनति कहति जहाँ हैं।
कविता को सम्बन्ध अवसि ही होत तहाँ है॥
कवि गन निज कर्तव्य प्रकासे भाव यथारथ;
जासों सब बिधि सधे देश स्वारथ-परमारथ॥
कठिन परीक्षा समय उपस्थित सामीं तासों।
कविता सविता को विकाश अब चहियतु जासों॥
अविचल ईश्वर भक्ति भ्रातृ अनुराग पसारो।
अरु भविष्य में होइ अटल विश्वास हमारो॥



स्वतंत्रता समता सहयोगिता पियारी।
सकल हृदय में करैं आइ निज निज उजियारी॥
काव्य कला मर्मज्ञ परम हिन्दी हित आकर।
'समालोचनादर्श" माँहि भासत रतनाकर॥

इस प्रकार सत्यनारायण के विद्यार्थी-जीवन पर दृष्टि डालते हुए हमें उनके कवित्व-प्रेम और कवित्व-शक्ति की उत्तरोत्तर वृद्धि हाती हुई दीख पड़ती है। सच बात तो यह है कि उनका जीवन ही कवितामय था। अपनी कविता द्वारा समाज और साहित्य की उन्होंने क्या-क्या सेवायें कीं, इसका वर्णन अगले अध्याय में किया जायगा।

समाज-सेवा और साहित्य-सेवा

[सन् १९१०—१९१६ फ़रवरी]



त्यनारायणजी ने कालेज मार्च सन् १९१० में छोड़ दिया। इसके बाद वे केवल आठ वर्ष और जीवित रहे। उनका विवाह फ़रवरी सन् १९१६ में हुआ था। विवाह के बाद के समय को वे अपनी Literary death "साहित्यिक मृत्यु" कहा करते थे। इस प्रकार सत्यनारायण को प्रतिभा को विकसित होने के लिये केवल ६ वर्ष का समय मिला, अर्थात् मार्च १९१० से लेकर फ़रवरी १९१६ तक। इन ६ वर्षों के बीच में सत्यनारायणजी ने किस निस्वार्थ भाव से और प्रेम-पूर्वक समाज तथा साहित्य की सेवा की, उसी का हम यहाँ संक्षेप में वर्णन करेंगे।

हम पहले ही कह चुके हैं कि सन् १९०५ के स्वदेशी-आन्दोलन के समय से उन्होंने अपनी कविता में देशभक्ति के भाव लाने का प्रयत्न किया था। उस समय के बाद की प्राय: अधिकांश कविताओं से यह बात स्पष्टतया दीख पड़ती है। जिस समय सन् १९०७ में लाला लाजपतरायजी आगरे आये थे, सत्यनारायण ने उनके स्वागत के लिए निम्नलिखित पद्य बनाये थे—

जय जय जग विख्यात बिमल भारत भुवि भूषण।
जय स्वदेश-अनुरक्त भक्त नित अरि कुल दूषण॥

जय निशङ्क निकलङ्क-पूर्ण भारत शशाङ्क वर।
जय नीतिज्ञ सुजान वीर गम्भीर धीर वर॥
जयति परीक्षित सुबरण सुन्दर सुलभ सुहावन।
सकल गुप्त मन सुमन प्रेम गुन गहन गुहावन॥
अग्रवाल-प्रिय अग्रवाल सौरभ सरसावन।
कार्य शक्तिमयि देशभक्ति रस चहुँ बरसावन॥
परम पुण्य मति पूर्ण आप यश सो अनुरागत।
प्रियतम लजपतिराय सुखद सब बिधि तव स्वागत॥

हिन्दू-विश्वविद्यालय के लिये अपील

जब माननीय पं० मदनमोहन मालवीय जी, श्रीमान्-दरभंगा महाराज के साथ हिन्दू-यूनीवर्सिटी के लिये चन्दा करने के लिये आगरे आये थे, उस समय राजा कुशलपाल सिंह के सभापतित्व में उनके स्वागत के लिए सभा हुई थी। उस सभा में उपस्थित होनेका सौभाग्य मुझे भी प्राप्त हुआ था। जब सभा समाप्त हो गई तो माननीय मालवीयजी की मोटरकार के पास मिर्जई पहने हुए कोई नवयुवक खड़ा था, और मालवीयजी उससे कुछ बातचीत कर रहे थे। इसी नवयुवक ने मधुर स्वर में उस सभा में एक कविता सुनाई थी।

उस समय मेरे साथी किसी विद्यार्थी ने—मैं भी उन दिनों नवीं कक्षा में पढ़ता था—मुझसे कहा था—"ये ही सत्यनारायण हैं।" इस प्रकार आज से १३-१४ वर्ष पहले मैंने दूर से सत्यनारायणजी के प्रथम वार दर्शन किये थे। उस समय मुझे क्या मालूम था कि आगे

चलकर मुझे इस सरल सौम्यमूर्ति की जीवनी लिखनी पड़ेगी। अस्तु सत्यनारायणजी की वह कविता यहाँ उद्धृत की जाती है।

स्वागत यह सुख समय पुण्यमय, जो उछाह अति पागे।
आरज विविध कला कौशल कल भल विद्या अनुरागे॥
पर-उपकार सुव्रत सुचि दीक्षित परम प्रेम रँग राचे।
जननी जन्मभूमि के नित नव सब बिधि सेवक साँचे॥
तजि सुख दुख को ध्यान मान बिन हिन्दुन को सिरताजा।
परमोदार पुण्य मूरति श्रीदरभंगा-महाराजा॥
सरल हृदय सहृदय सुख पोहन अखिल दुरित दल दूषन।
औ सद्गुन गन सदन मदन मोहन मालवि कुल-भूषन॥
तन सों धन सों मन वच क्रम सों जो आरज हितकारी।
स्वर्गादपि गरीयसी जिनको भारत मातु पियारी॥
रचन भारती भवन बनावन अथवा जन मन भावन।
विश्वविदित हिन्दू-विद्यालय हिन्दू-गुन प्रकटावन॥
प्रान्त प्रान्त अरु नगर-नगर सों धनी गुनी जन भेंटत।
वित अनुसार प्रजा का राजा सब सों दान समेंटत॥
पालन निज कर्तव्य, आश करि, अति उमंग सों छाये।
सब प्रकार प्रिय पूज्य अतिथि ये नगर आपके आये॥
उपजे या कुल शिव दधीच हरिचन्द आदि से दानी।
भुवि विश्रुत मोरध्वज नृप से जग जिन कहति कहानी॥
ता आरज हिन्दू-कुल के तुम पूत सपूत कहाओ।
उचित समय यह उचित भाँति सों निज कर्तव्य निभाओ॥
ध्यान-पूर्वक यदि सोचो तो जो तुम याहि यथारथ।

याही में तुव सब बिधि स्वारथ याही में परमारथ ॥
ऋषि-मुनि को सन्तान उठो अब देखौ भयो सबेरो।
अपनी दशा मिलाय और जातिन सों जग में हेरो ॥
सभ्य समाज सिरोमनि पहिले रहयो आपको भारत।
विद्या बिन जल-हीन मीन सम वही हाय अति आरत ॥
प्रकृति-प्रसाद सुलभ सब याकों पै बिद्या-बल नाहीं।
चितवत जासों औरन को सुख, दुख भोगत जगमाँही ॥
जा कारन निज वृद्ध भारती माकी सेवा कीजै।
तन मन धन सों याहि पुष्टि करि जग दुर्लभ यश लीजै ॥
ये सुन्दर आदरश विराजत प्रियतम इनहिं निहारो।
सब को जो प्रिय काज ताहि सब पूरन भाँति सँवारो ॥
कृपा कटाच्छ-कोरहु सों जो सारि सकत सब काजा।
अहो भाग्य प्रिय बन्धु तिहारे द्वार पधारे राजा ॥
हिन्दू जाति भलाई के हित भूपति घर-घर जावें।
उज्जल कर्मयोग को ऐसो उदाहरण कहँ पावें ॥
भारत को सौभाग्य-सूर्य्य वह निरखहु चिलकत आवत।
नसि अज्ञान सघन तम रासहिं ज्ञान उजास जगावत ॥
जहाँ स्वयं सम्राट जार्जपंचम विद्या के प्रेमी।
का तुम कियो प्रजा बनि उनकी जो न होहु अस नेमी ॥
वही सकल यह देस सुहावन पावन गुन-गन आलय।
वही गगन-चुम्बित भारत को उज्ज्वल उच्च हिमालय ॥
गंगा यमुना वही वही पूर्वज ऋषि मुनि के नामा।
धर्म-धीरता दान-वीरता वही अटल अभिरामा ॥
पै कछु को तुम कछु देखियत निज-निज धुनि में फूले।

रैनि अविद्या अँधियारी में प्रियपूर्वज पथ भूले ॥
चेत-हेत तुम्हरे ही यह सब रच्यो अमित आयोजन ।
जानहु निज कर्तव्य सकल तुम याको यही प्रयोजन ॥
कठिन परीक्षा समय आज है हिन्दू जाति तिहारो ।
कहँ लों या में चहिय सफलता उर निज तनिक विचारो ॥
शत्रु-मित्र सब ठाढ़े देखत चलत तिहारी स्वासा ।
किंतु जबैलों स्वासा तब लों तुव जीवन को आसा ॥
वरणाश्रम अरु जाति-पाँति को भेद सकल विसराई ।
हिन्दु-विश्व-विद्यालय की तुम सब मिलि करहु सहाई ॥
निज भविष्य की भाग्य-डोरि अपने हो करमें धारहु ।
चाहे तुमहिं सँवारहु याको चाहे तुमहिं बिगारहु ॥
अर्थ धर्म अरु काम मोक्ष की शिक्षा अनुपम द्वारा ।
जाही सों जग आत्मशक्ति की जगमग ज्योति अपारा ॥
जामें सब संजोग देहु मिल यहि सों त्यागि विवादा ।
हिन्दू-हिन्दी-हिन्द देश की जो चाहो मर्यादा ॥
प्रति पद पावन हिय-हरसावन भावन परम पियारे ।
मंजु मनोहर मधुर मालवी भारत मुख उजियारे ॥
धर्म धैर्य अवतार नृपतिवर दरभंगा भुवपाला ।
ब्रिटिश मान्य अरु नित स्वदेश हित अनुपम दीनदयाला ॥
जासों ये पाहुने हमारे निज श्रम को फल चाखैं ।
पूरन होंय सकल विधि सों तिन उत्तम हिय अभिलाषैं ॥
सकल ओर 'अभ्युदय' सूर्य की किरन माल परकासैं ।
हृदय सरस सर ओज भरे नित मोद सरोज निकासैं ॥
जिमि बसन्त के राज मुदित मन वृच्छावलि चहुं फूलैं ।

नेह निरन्तर मगन रहैं सब निज पतझड़ दुख भूलैं ॥
तिमि सुठि सुजन रसाल फरैं मृदु मंजु मंजरी छावैं।
उपकृत मधुप रसिक गुंजारत तिनको सुयश सुनावैं ॥
सद्विद्या रुचि लता लहलही तिनहिय सों लिपटावैं।
दान सुफल भारनि सों लचि लचि भाव विनय जनावैं ॥
लहि आश्रय डहडही डार जो देश-भक्त पिक बोलैं।
धर्म कर्म उपदेश ध्वनी करि प्यारी करहिं कलोलैं ॥
निरमल पर उपकार तरंगनि तरल तरंग सुहावैं।
विद्या विनय विवेक प्रकृति छबि निज वैभव अधिकावैं ॥
सुन्दर ज्ञान प्रभाव बहुरि जिय में आनंद जगावैं।
दुख को हो बस अन्त सबै बिधि शोभा मनहिं लुभावैं ॥
परमपिता जगदीश बनावौ हमहिं स्वधर्म-परायण।
यही सदा माँगत बिनवत प्रभु तुम सों सत्यनरायण ॥

बाबा रघुवरदास की मृत्यु

कहा जाता है कि जब सत्यनारायण बाल्यावस्था में बहुत बीमार हो गये थे और उनकी निस्सहाया अनाथ माँ उनके जीवन से निराश हो गई थी, उस समय बाबा रघुबरदास ने औषधि देकर सत्यनारायण के जीवन की रक्षा की थी। इसके बाद ही सत्यनारायण की माँ वृद्ध बाबाजी की शरण में रहने के लिये धाँधूपुर चली गई थीं। बाबाजी ने ही सत्यनारायण को पढ़ाया लिखाया था और सत्यनारायण उनके बहुत ऋणी थे।

"मर्यादा" कार्य्यालय प्रयाग से, २३—१—१६११ के अपने पत्र में, सत्यनारायण ने बाबाजी को लिखा था—"मैं भाग नहीं आया हूँ, न मैं आपकी आज्ञा का उल्लंघन करके आया हूँ। मैं भला किस बात पर आपकी सेवा से विरत होता! हाय! इस शरीर ने आपको जन्म से दुःख-ही-दुःख दिये हैं; और अब भी इसी के कारण आप सुख से सो भी नहीं सकते! आपके अपराध और मैं क्षमा करूँ! हरे-हरे!! आपने जो उपकार इस शरीर के साथ किया है, उसको क्षण-मात्र को भी भूल जाने से "नहिं निस्तार कल्प सतकोटी"। जब तक शरीर में प्राण है, यह सत्यनारायण आपही का सेवक है—आपके ऋण से कभी कल्पान्त में भी उऋण नहीं हो सकता।

इसके बाद इसी पत्र सत्यनारायण ने सुखदास, द्वारिका, जानकी, चिरंजी, घूरेराम, रामजीत, जौहरी, भवानी और गोबिन्दा इत्यादि ग्रामीण मित्रों से प्रार्थना की थी कि आप लोग ऐसा यत्न करें जिससे बाबाजी कोई सोच न करें।

इस पत्र से प्रकट है कि बाबाजी के लिये सत्यनारायण के हृदय में कितनी श्रद्धा थी। जुलाई सन् १६१२ में बाबा रघुवरदास का देहान्त हो गया। उस समय सत्यनारायण को अत्यन्त दुःख हुआ था।

बाबाजी की मृत्यु के समय आस-पास के ग्रामों के ब्राह्मणों में फूट फैली हुई थी। उस समय सत्यनारायण ने पंचों के नाम जो चिट्ठी लिखी थी उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं।

श्री

श्रीमान्

मेरे दुर्भाग्य से मेरे आराध्यचरण परमपूज्य गुरूदेव श्री ६ युक्त रघुवरदास जी का देवलोक होगया है। उनके त्रयोदश की तिथि असाढ़सुदी द्वादशी निश्चित हुई है। उस अवसर पर उनके सभी सज्जन प्रेमियों का कृपया यहाँ पधारना परमावश्यक है। यद्यपि उनकी स्थिति सब के साथ ही थी किन्तु फिर भी किसी जातीय रागद्वेष से उन्हें सर्वथा मुक्त समझना उचित है। इसी उद्देश को सामने रखते हुए सब भेदभाव को भूलकर यथासम्भव सब सज्जनों की सेवा में निमन्त्रण भेजने का प्रयोजन है। आजकल ब्राह्मण जाति की शोचनीय दशा सब पर विदित है। उस पर भी परस्पर विरोध के कारण विप्र-वंश की शक्ति का ह्रास प्रतिदिन होता जाता है। ऐसे ही विरोध के लक्षण, निमंत्रण देते हुए, दुर्भाग्य से तेरे ग्राम में मुझे लक्षित हुए हैं।

सर्व-सम्मति से निश्चय हुआ है कि जिन सदाशय पंचों की उपस्थिति में इस विद्रोह-बीज का आरोपण हुआ था, उन्हीं के फिर सम्मेलन होने पर उन्हीं की आज्ञानुसार यह विद्रोह-विष-वृक्ष समूल नष्ट किया जा सकता है। ऐसी हो आशा के प्यारे प्रकाश से उत्साहित होकर आप सब सज्जनों के चरण कमलों में सादर निवेदन है कि आप यथा समय स्वयं अथवा अपना कोई विश्वास-पात्र प्रतिनिधि भेजकर इन उपस्थित विघ्नबाधाओं को दूर करते हुए मेरे भाव और परिश्रम का यथोचित फल देकर कृतार्थ कीजिये। आशा है कि आप आज ४ बजे सायंकाल के समय मेरी ही कुटी को पवित्र करने का कष्ट अंगीकार करेंगे।

सबका दास

विनीत

सत्यनारायण

अफ्रिका-प्रवासी भारतीयों के प्रति सहानुभूति

जिस समय दक्षिण अफ्रिका में सत्याग्रह का आन्दोलन चल रहा था सत्यनारायणजी ने 'एक भक्त' के नाम से निम्नलिखित कविता 'प्रताप' में छपवाई थी—

तुव जस विमल कहाँ लौं गावैं।
जब जब आवति सुरति तिहारी नयन नीर भरि आवैं ॥
बहु बरसनु सों कठिन जतन करि—यदि किंचित नहिं भूलौं—
यह भारत-जातीय-समिति जो कर न सकी अजहू लौं ॥
सो निज भेद-भाव तजि, आरज जन जीवन धन प्यारी।
देश धरम मर्यादा थापी तुम सब जन हितकारी ॥
हिन्दू और अहिन्दू अन्तर, यदि वे भारतवासी।
मेटि मुदित तजि स्वार्थ सकलबिधि तुम निज सुमति प्रकासी ॥
सहन-शक्ति अरु स्वावलम्ब को उदाहरन दरसायो।
लखि तुव आतम-त्याग मनोहर सब संसार लजायो ॥
अन्य कठोर जाति इक ऊपर दूजें देस बिरानौ।
सकल भांति असहाय तऊ तुव धीरज नाहिं हिरानौ ॥
तन मन धन सरबस सुत दारा सबको मोह बिहायो।
केवल भारत जन नैसर्गिक सत्व सुभग अपनायो ॥
तप्तस्वर्ण सम जगमगात नित राखत दृढ़ विश्वासा।
श्रीनारायण पूर्ण करैं तुव प्रेम-भरी प्रिय आसा ॥

उसी समय 'एक सभासद भारतीभवन फीरोज़ाबाद' के नाम से 'पति-पत्नी-संवाद' नामक कविता आपने 'प्रताप' में ही छपाई थी। वह यह है—

पति-पत्नी-संवाद

१

नाथ ! अब चलिये अपने देश ।
देख यहाँ की क्रूर नीति को होता हृदय कलेश ॥
निभ सकता नहिं यहाँ हमारा पति-पत्नी सम्बन्ध ।
बच्चों के भी वारिस बनने में पड़ता प्रतिबन्ध ॥
प्यारे ! बस हो चुका तुम्हारा काम, न करिये देर ।
कौन सुनेगा, किससे कहिये, छाया अति अन्धेर ॥

२

प्रिये ! यह कापुरुषों का काम ।
अभी चलें, पर स्वबान्धवों का होगा क्या परिणाम ?
कहाँ जाँयगे करेंगे कैसे वे निष्क्रिय प्रतिरोध ?
राजनीति का जिन्हें न प्यारो, हाय ! जरा भी बोध ॥
यहीं रहेंगे निज स्वत्वों के लिये करेंगे युद्ध ।
चाहे प्राण रहो या जाओ, सोचेंगे न विरुद्ध ॥
जननी जन्मभूमि का भारी चलने में अपमान ।
ऐसे अत्याचारों से क्या खो दें अपनी आन ?
कठिन परीक्षा समय हमारा उचित न करना भूल ।
इसमें जय होते ही होगा हमें दैव अनुकूल ॥
सदा सत्य की जय होती है यह निश्चय विश्वास ।
पूरा होगा निर्भय रहिये, मत हूजिये निराश ॥
भूल व्यक्ति-गत बिथा, जानि के इसे देश का काज ।
जगदीश्वर सब भला करेंगे, वही रखेंगे लाज ॥

यहाँ पर यह भी बतला देना आवश्यक है कि यह कविता उस वार्तालाप के आधार पर की गई थी जो महात्मा गांधीजी तथा श्रीमती कस्तूरबाई गांधी के बीच में हुआ था। उन्हीं दिनों सत्यनारायणजी ने 'गांधी-स्तव' नामक कविता 'प्रताप' में छपवाई थी। कुछ परिवर्तन के बाद यही कविता उन्होंने, इन्दौर में अष्टम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर पढ़ी थी। उस कविता को हम उक्त सम्मेलन में सत्यनारायणजी के जाने का वृत्तान्त लिखते समय उद्धृत करेंगे।

कामागाटामारू की दुर्घटना

जब बाबा गुरुदत्तसिंह और उनके साथी, जो कामागाटामारू जहाज़ से कनाडा गये थे, वहाँ से लौटा दिये गये, उस समय देश में इस विषय पर आन्दोलन हुआ था। सत्यनारायणजी ने उस वक्त "श्री गुरु-नानक के यात्री" के नाम से निम्नलिखित कविता 'प्रताप' में छपवाई थी।

करुणा-क्रदन

रे हतभागी भारत देश।
कितना और अधिक बाक़ी है सहना तुझे कलेश॥
सोचा था जब यहां नृपतिमणि पञ्चम जार्ज पधारे।
धन्य आज से हुए परम हम जागे भाग हमारे॥
स्वीकृत किया हमें श्रीमुख से अपनी प्रजा पियारी।
शिक्षा का उत्साह दिलाया दी आशायें सारी॥
बृटिश-सुराज मात्र की जैसे और प्रजा सुख पावै।

वैसा ही अधिकार कदाचित हमको भी मिल जावै ॥
वर्ण-भेद का नहीं लगेगा अबसे कोई रोग।
विमल नागरिक स्वत्व प्राप्त कर भोगेंगे सुख-भोग ॥
बृटिश-पाणि-पल्लव-छाया में जी चाहै जहँ जावैं ।
बहु दिन नत निज सिर ऊंचा कर फिर इक बार उठावैं ॥
निरपराध हमको यदि कोई अबसे कहीँ सतावै ।
तो उसके निरदय पञ्जों से 'ग्रेट ब्रिटेन' बचावै ॥
इन आशाओं के सपनों ने जैसे जी बहलाया ।
कान पकड़ 'कैनेडा' के लोगों ने हमें जगाया ॥
जग को जो आश्रय देते ये सहकर भी दुख सारे ।
फिरैं निराश्रय उन ऋषियों के सुत यों मारे-मारे ॥
होता अगर हमारे सिर पर कोई हितू हमारा ।
रक्खा रह जाता बस घर में यह क़ानून तुम्हारा ॥
जहाँ जाँय तहँ बड़ी घृणा से बल से जाँय निकाले ।
प्रजा भूप निर्बल ऐसे की कहलाते हम काले ॥
काले हैं सन्देह नहीं हम किन्तु हृदय के गोरे ।
उच्च उदार सभ्य भावों से हैं नहिं बिलकुल कोरे ॥
जब जब जन्म देंइ जगदीश्वर तब तब हम हों काले ।
उन गोरों सें सदा बचावैं जो स्वारथ मतवाले ॥
ऐरे गैरे पचकल्यानी चले हिन्द में आते ।
हम आरत भारतवासी कहीं पैर न रखने पाते ॥
इस जहाज़ के लौटाने में हमें न कुछ संकोच ।
पर इङ्गलैण्ड कलंकित होगा यही हृदय में सोच ॥

जो इस तरह तरह दे देगा सम्मुख नहीं अड़ेगा।
तो प्रचण्ड सब रोष सिंहका जग में सिथिल पड़ेगा ।।
होते हुए नाथ के सिर पर हिन्दी जाति अनाथ।
करै सहानुभूति नहिं कोई भुविपर इसके साथ ।।
रहना या मरना है इसको कठिन प्रश्न ये भारी।
एक इसी के सुलझाने से सुलझें उलझन सारी।
ऐसा क्यों कमज़ोर बनाया हमको निरदय दैव!
जो इस भाँति भोगना पड़ता हमको दुःख सदैव ।।
कठिन परीक्षा समय हमारा आगे नहीं टलेगा।
बिना जाँच में पूरा उतरे अब नहिं काम चलेगा ।।
"दैव सहाय उसे देता है जो निज करै सहाय" ।।
इसमें रख विश्वास हमैं भी करना उचित उपाय ।।
तकते हुए पराये मुख को अब तक बहु दुख भोगा।
अब से मारग सुगम आप ही अपना करना होगा ।।
कुछ चिन्ता नहिं जो विपदा ने इतना हमैं सताया।
जगमगाय उतना ही सुबरन जितना जाय तपाया ।।
एक प्राण ही उच्चस्वर से यदि हम रुदन सुनावैं।
सोते हुए शेष-शायी भी जगकर दौड़े आवैं।।
उनसे ही कहना यथार्थ है वे सच्चे महाराज।
अपनो जन्मभूमि का हमको जान रखेंगे लाज ।।

"श्रीगुरु नानक के यात्री"

रवीन्द्र-वन्दना

जब कवि-सम्राट श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर आगरे पधारे थे, उस समय सत्यनारायणजी ने उनकी सेवा में निम्नलिखित कविता भेंट की थी।

रवीन्द्र-वन्दना

जय-जय कवि-कुल-तिलक भारती देवि उपासक।
रुचिर रम्य सद्भाव सुभग कर निकर प्रकासक।।
जय-जय भारत-कीर्ति धवल धुज जग फहरावन।
विद्युत इव जातीय प्रेम नस-नस लहरावन।।
जय विश्वविदित विजयी प्रमुख सौम्य मूर्ति तव लसत नित।
जिहि लखि-लखि प्रचुर विदेश जन होत नेह नत चक्रित चित ॥ १ ॥

जय जय सहृदय सदय सुहृद नय नागर नीके।
बिमल बोल अनमोल चखावन हार अमी के॥
सुखद 'ब्रह्मविद्यालय' 'शान्तिनिकेतन' थापक।
पुण्य प्रभा प्रतिभा के पूरन प्रियतम ज्ञापक॥
जय जयति वंग-साहित्य के उन्नतकर अनुपम अमल।
निज कविताकर विस्तारि वर विकसावन जन हिय कमल ॥२॥

सदशिक्षा आराधन 'साधन' गुन गन आगर।
योगी उपयोगी कारज कृत सुफल उजागर॥
विशद विवेक विकास प्रकाश करत अति सुन्दर।
महा महिम भुवि कोविद उर अधिवसत पुरन्दर॥
यासों मंजु 'रवीन्द्र' तव नाम सुभग सार्थक मधुर।
जग अबके अखिल कबीन में लसत आप परबीन धुर ।। ३ ।।

जैसी करी कृतारथ तुम अँगरेजी भाषा।
तिमि हिन्दी उपकार करहुगे ऐसी आशा॥
एक भाव सों रवि ज्यों वस्तुनि वृद्धि प्रदायक।
बरसत सरसत इन्द्र सकल थल त्यों सुरनायक॥
'रवि' 'इन्द्र' मिले दोउ एक जहँ तउ अचरज कैसो अहै।
यह प्यासी हिन्दी चातकी तव रस को तरसत रहै॥४॥

धन्य धन्य वह पुण्य भूमि जिन तुम उपजाये।
धन्य धन्य वह निरमल कुल तुमसे सुत जाये॥
धन्य आगरा नगर जहाँ शुभ चरन पधारे।
धन्य धन्य हमहूं सब दरसन पाइ तिहारे॥
अस देहिँ दिव्य 'देवेन्द्र' वर करहु देश-सेवा भली।
यह अर्पित तव कर-कमल में सत्य सुमन गीताञ्जली॥५॥

सन् १९२१ में जब मैंने शान्तिनिकेतन में श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर की सेवा में उपस्थित होकर उन्हें सत्यनारायण का वह चित्र दिखलाया, जो हृदय तरंग में छपा है और कहा—"क्या आपको सत्यनारायण का कुछ स्मरण है?" कविवर ने उत्तर दिया—"हाँ, वही हिन्दी-कवि-जिन्होंने मेरे नाम के दोनों शब्दों को बड़ी खूबी के साथ अपनी कविता में लिखा था।" कविवर का अभिप्राय "रवि' 'इन्द्र' मिले दोऊ एक जहँ तउ अचरज कैसो अहै" इत्यादि पंक्तियों से था। मुझे यह सुनकर आश्चर्य हुआ कि कविवर को ६ सात बरस पहले की बात किस तरह याद रही। सत्यनारायण का मधुर कोकिल स्वर ही

इसका मुख्य कारण था। जिसने उनकी कविता एक बार उनके मुख से सुनी वह उन्हें भूला नहीं।

सत्यनारायणजी की बीमारी

सन् १९१२ के अन्त में सत्यनारायणजी को श्वास की बीमारी हो गई। इस बीमारी के कारण उनको बहुत कष्ट उठाना पड़ा। सन् १९१३ में उन्होंने अपने मित्रों को जो चिट्ठियाँ लिखी थीं उनमें प्रायः अपनी इस बीमारी का ज़िक्र किया। भारतीभवन, फीरोज़ाबाद के प्रबन्ध-कर्ता लाला चिरंजीलालजी को उन्होंने १३ जून के पत्र में लिखा था—"मेरी तबियत वैसी ही है। खाँसी कुछ ज़ोर और पकड़ गई। सोतेसोते साँस—नहीं ऊँची ऊँची साँस वेग से चलती है उससे सो भी नहीं सकता!"

२० जुलाई सन् १९१३ के पत्र में आपने फीरोज़ाबाद के डाक्टर लक्ष्मीदत्तजी को लिखा था—

भैया लक्ष्मीदत्त,

ग्रसि लयो पुनि मोहि बुखार ने,
नहिं गयो यहि कारन आगरे।
अधिक दोसनि सों कछु ना परी,
खबरि उत्तर-रामचरित्र की।

किन्तु बुखार-प्रताप सों, कांस-स्वांस संताप।
बहुत अंश में अब भयो, न्यून आपसों आप॥

फिर १०सितम्बर के पत्र में आपने लाला चिरंजीलालजी को लिखा था–"खाँसी चली जाती है। थाइसिस रोग मिटाने में निपुण तथा इस कार्य में परीक्षोत्तीर्ण यहाँ पर परम प्रसिद्ध दो डाकृरों के पाले पड़ा हूँ—Assistant civil surgeon,मुहम्मद इस्माइल तथा स्वतंत्र जीविका-भोगी डाकृर मुरारीलाल"। १४ मई १९१४ को आपने उक्त सज्जन को लिखा था—"मेरी खाँसी और साँस का हाल पूर्ववत् ही समझना चाहिये। ऐसी दशा में भी भवभूति के नाटक मालती-माधव का अनुवाद कर रहा हूँ। पूर्ण होना भगवान के हाथ है।"

८ जून १९१४ के पत्र में सत्यनारायणजी ने मुझे लिखा था—"आजकल ग्रीष्मकाल में साँस का प्रकोप है।"

सत्यनारायणजी की गुरुबहन श्रीजानकी देवी ने मुझसे कहा था कि श्वास की बीमारी के दिनों में रात-रात भर उन्हें नींद नहीं आती थी। माथा ज़मीन पर रखकर घंटों बैठे रहते थे! उसी समय उन्होंने यह कविता की थी—

बस, अब नहिं जाति सही।
बिपुल बेदना बिबिध भांति जो तन मन ब्यापि रही॥
कबलों सहें,अवधि सहिबे को कछु तो निश्चित कीजे।
दीनबन्धु, यह दीनदसा लखि क्यों नहिँ हृदय पसीजे॥
बारन दुखटारन तारन में प्रभु तुम बार न लाये।
फिर क्यों करुणा करत स्वजन पै करुणा-निधि अलसाये॥
यदि जो कर्म-यातना भोगत तुम्हरे हूं अनुगामी।
तो करि कृपा बतायो चहियतु तुम काहे के स्वामी॥

अथवा विरद बानि अपनो कछु कै तुमने तजि दीनी।
या कारण हम सम अनाथ की नाथ न जो सुधि लीनी॥
बेद बदत गावत पुरान सब तुम त्रय ताप नसावत।
शरणागत की पीर तनक हूँ तुम्हें तीर सम लागत॥
हमसे शरणापन्न दुखी को जाने क्यों बिसरायो।
शरणागत-वत्सल सत यों ही कोरो नाम धरायो॥

आराम कैसे हुआ ?

पंडित सत्यनारायणजी ने अपने स्वास्थ्य-लाभ करने का वृत्तान्त एक चतुर्वेदी सज्जन को इस प्रकार सुनाया था—"मैं अपनी बीमारी की दशा में एक दिन अपने गाँव से कार्य्यवश किसी दूसरे गाँव को जा रहा था। मार्ग में रात्रि हो जाने के कारण,बीच के एक गाँव में ठहर जाना पड़ा। मुझे खाँसी का प्रबल रोग था और उसने मेरे फेंफड़ों को इतना बिगाड़ डाला था कि मुझे रात दिन चैन नहीं पड़ता था। मार्ग की थकान से उस दिन खाँसी का वेग और भी बढ़ गया—यहां तक कि मैं सीधा नहीं लेट सकता था! जब छाती के सहारे उलटा लेटता था तब पल भर के लिये कल मिल जाती थी और फिर वही हाल हो जाता था! इस प्रकार मैं एक गाँववाले की चौपाल में पड़ा दुःख की साँसें ले रहा था। ईश्वर की माया, उसी दिन मेरे दुःख का अन्त होनेवाला था। एक वृद्ध ग्रामीण कृषक ने मेरे पास आकर मेरा सब हाल पूँछा

और मुझे धीरज देकर कहा—"घबड़ाने की बात नहीं, जल्दी अच्छे हो जाओगे। सबेरे मैं दवा बता दूँगा सो बना लेना और अभी के लिये मैं दवा लाये देता हूँ।" ऐसा कहकर वह बूढ़ा वहाँ से उठा और कोई ५ मिनट में ही दवा लेकर वापिस आया। मैंने थोड़ी सी दवा खाली और कुछ दूसरी बार के लिये रख ली। खाने में मुझे कुछ नमक कैसा स्वाद ज़रूर जान पड़ा। पर न जाने वह बूढ़ा मेरे लिये साक्षात् धन्वन्तरि ही था। जो खाँसी अनेक डाक्टरों और वैद्य के हज़ार प्रयत्न करने पर भी नहीं रुकी थी वह केवल आध घंटे में ही रुक गई। मैं थका तो था ही खाँसी बन्द होते ही गहरी नींद में सो गया। मुझे सबेरे तक बीच में दवा खाने की ज़रूरत नहीं पड़ी। सबेरा होते ही उस बूढ़े ने आकर मेरा हाल पूछा। मैंने उसकी दवा की ख़ूब सराहना की और दवा बतला देने की प्रार्थना की। उस बूढ़े ने बड़ी खुशी से मुझे दवा लिखा दी और अन्त में बबूल के पेड़ की ओर इशारा करके कहा—"देखो यह तुम्हारे रोग के लिये रामबाण है। जैसे बने वैसे इसका सेवन करो। इसकी छाल को खाना, उसी को औटा कर पानी पीना और इसी की दतौन रोज़ करना। जब मरे हुए जानवर का निर्जीव चमड़ा बबूल की छाल से मज़बूत और पक्का हो जाता है तब क्या तुम्हारे फेफड़ों का जीवित चमड़ा मज़बूत नहीं होगा?" मैंने उस बूढ़े के आज्ञानुसार दवाई बनाली और उसका सेवन करने लग गया। आज कुछ, कल कुछ—थोड़े ही दिनों में बिल्कुल भला-चङ्गा हो गया!"

इसी कारण पंडितजी को बबूल-वृक्ष बहुत प्यारा था। वे उसे 'सजीवनमूरि' कहा करते थे। प्रेम-मग्न होकर कभी-कभी बबूल वृक्ष की परिक्रमा भी करते थे और उसके गुण-वर्णन करते करते मुग्ध हो जाते थे !

"विज्ञान" में आपने बबूल की उपयोगिता पर एक लेख भी लिखा था और उसमें आपने उस दवा को भी लिख दिया था जिसने आप को आराम किया था।

श्रीमान् गोखले के स्वर्गवास पर कविता

निम्नलिखित पद्य सत्यनारायणजी ने श्रीमान् गोखले को स्वर्ग-वास होने पर लिखे थे—

श्रीगोखले

परम पूज्य सतकर्म-निष्ट नय-नीति सुनागर।
अति उदार चित नित नव-ज्ञान प्रकास उजागर॥
जासु बचन बरषा सों नवल हृदय लहराये।
आक जवास क्रूर जन पजरे मनहिं लजाये॥
शिक्षा अनिवार्य प्रचार-हित कृत प्रयत्न पुरुषार्थ पर
निस्पृह निःस्वारथ द्विजकमल हंस-बंस-अवतंस वर॥१॥
श्रीरानाडे शिक्षा की प्रिय प्रतिमा निरमल।
भारतीय-जातीय-समिति-कर प्रभा समुज्ज्वल॥
सदा रह्यो दुरभेद्य प्रबल जाको यह निश्चय।
भारत नित ईश्वरमय ईश्वर नित भारतमय॥

यों देशभक्ति हरिभक्ति में रचि अभिन्नता चारु तर।
गोपालकृष्ण सत्कथन सों नाम रुचिर चरितार्थ कर ॥ २ ॥

कुलो-प्रथा उच्छिन्न करन जिन शक्ति प्रकासी।
जाके अमित कृतज्ञ प्रवासी भारतवासी ॥
नित प्यारे स्वदेश हित कृत तन मन धन अरपन।
आत्मत्याग आदर्श दूरदर्शो अविचल प्रन ॥
जिह प्रतिभा गुन शासक सजग शासित समयोचित फले।
जग विदित कर्मयोगो सदय सहृदय श्रीयुत गोखले ॥ ३ ॥

अब सो अन्तरध्यान भये पौरुष विकास में।
जिमि प्रभात की प्रभा मिले पूरन प्रकाश में ॥
जननि जन्म भुवि गोद यदपि तिन देह सिरानी।
गूँजति उर नभ अजहुं दिव्य वह विद्युतबानी ॥
सम्भव इन धन असुआन सन नेह-लता विस्तीर्ण हो।
अभिनव प्रसून सन्ताप हर महाप्राण अवतीर्ण हो ॥ ४ ॥

नहीं गोखले जगत जगत आदर्श पियारौ।
भारत जग जीवन जहाज हित ध्रुव को तारौ ॥
स्वत्व और अस्तित्व काज जब करत समर हम।
उत्साहित सो करत देत आदेश अनूपम ॥
निज स्वार्थ भेद विसराय सब मिलिये करि स्वविरोध-इति।
विधि बद्ध समुन्नत कीजिये भारतीय-सेवक-समिति ॥ ५ ॥

अब तो हिन्दू सकल भेद बन्धन निरवारौ।
विपति जनित निज विषम बेदना बिपुल बिचारौ ॥

यदि तुम थापन चहत गोखले कीर्तिस्मारक।
सांचे मन सों तो शिक्षा के बनो प्रचारक॥
जिहि लहि चहुँ भारत युवक नवजीवन जागृति संचरैं।
उर अविकल धीरज धारि दृढ़ सत्य देश-सेवा करैं॥६॥

श्रीसरोजनी-षटपदी

जब श्रीमती सरोजनी देवी आगरे पधारी थीं उस समय आगरा कालेज में उनके स्वागत के लिये सत्यनारायणजी ने निम्न-लिखित कविता पढ़ी थी —

श्रीसरोजनी-षट्पदी

जय जय सहृदय सदय सुहृद कवि गुन गन आगरि।
नय नागरि प्रिय परम गोखले कीर्ति उजागरि॥
कोमल कवित कलाप अलापिनि नित नव नीकी।
लोल बोल अनमोल चखावन हारि अमी की॥
जय भेद भाव के हरन कों सुकृत सुदृढ़ संकल्प वर।
चित चकित करनि मुद भरनि नित्त निज दिखाइ प्रतिभा प्रखर॥१॥

आरज सुजस सुगंध सुहावन विपुल विकासिनि।
विहँसत अधर सुदल सों अनुपम छटा प्रकासिनि॥
नव जातीय सरोवर की सुखमा सरसावनि।
प्रेम प्रस्फुटित पुण्य प्रभा प्यारी दरसावनि॥
नित मन बच क्रम सों रुचिर तर नूतन भाव प्रयोजनी।
प्रिय यथार्थ चरितार्थ तव यासों नाम "सरोजनी"॥२॥

लखि तव प्रफुलित दर्स हमारो होत सुनिश्चय ।
दुख की बीती रैनि उदित अब सूर्य अभ्युदय ॥
कर्म भीरु उल्लूक लुकत अब लगे अभागे ।
देश भक्त वर भ्रमर भ्रमत गुंजारन लागे ॥
श्रुति मधुर मुदित द्विज गान को छाइ रह्यो उत्कर्ष है ।
अभिनव आभा सों पूर्ण यह देखहु भारतवर्ष है ॥ ३ ॥

निरुत्साह हेमन्त और पतझर के मारे ।
सकैं न कछु करि बिबस यहां के लोग बिचारे ॥
असन बसन बिन कम्पत तन अरु अस्फुट भाषा ।
किन्तु ज़ियावति तिन्हैं एक बस प्यारी आशा ॥
ऐसे जीवन-संग्राम में होवहि वांछित काज है ।
क्योंकि सुखद आवन चहत श्री ऋतुराज स्वराज है ॥ ४ ॥

भारतीय कोकिल प्रियतम निज कूक सुनावौ ।
या स्वदेश में नवजीवन संचार करावौ ॥
बहु दिन के सुसुप्त कों करुणामयी जगावौ ।
कल कोमल रसाल बाणी सों याहि उठावौ ॥
जासों यहि आर्यावर्त को नष्ट होइ सन्ताप है ।
जग जगमगाय नव जोति सों अनुपम प्रबल प्रताप है ॥ ५ ॥

धन्य धन्य वह पुण्यभूमि जिन तुम उपजाई ।
धन्य धन्य वह कुल जिन तुम सी महिला पाई ॥
धन्य आगरा नगर जहाँ शुभ चरन पधारे ।
धन्य धन्य हमहू सब दरसन पाइ तिहारे ॥
सत् विनय प्रवाहित कीजिये देश-प्रेम-रस की नदी ।
बस अर्पित यह तव क्रोड़ में श्रीसरोजनी-षटपदी ॥ ६ ॥

सत्यनारायणजी ने इस षटपदी की एक प्रति पं० पद्मसिंहजी शर्मा के पास भेजी थी। शर्माजी ने इसके विषय में उन्हें अपने एक पत्र में लिखा था —

"कल पं०मुकुन्दरामजी की भेजी हुई "श्रीसरोजनी-षटपदी" पहुँची। उसे पाकर मेरा मन-सरोज विकसित हो गया। ख़ैर, कुछ हो, काव्यदृष्टि से तो यह "षट्पदी" आपकी बढ़िया रही। "श्रीसरोजनी-षटपदी" यह शीर्षक बड़ा ही औचित्य पूर्ण है। पढ़कर तबियत फड़क गई! जी चाहता है, धांधूपुर पहुँचकर धूमधाम से इसकी बधाई दूँ। भई वाह! क्या शीर्षक ढूँढ़ा है "श्रीसरोजनी-षटपदी"! सचमुच "शीर्षकौचित्य" के उदारहणों की चोटी पर बैठाने लायक है। मैं ख़्याल करता हूँ, इस शीर्षक के सूझते ही आप भी उछल पड़े होंगे और हर्षातिरेक से झूमने लगे होंगे! ऐसा अनुरूप पद कभी भाग्य ही से हाथ आता है। क्या कहूँ पास नहीं, नहीं तो जी खोल कर 'दाद' के अतिरिक्त कुछ और भी देता! 'सरोजनी' नाम की निरुक्ति "ऋतुराज-स्वराज" का रूपक और अन्त में समर्पण, सब ही अच्छे हुए हैं। शाबाश! "ईं कार अजतो आयदो मर्दां चुनीं कुनन्द।"

इस पत्र के उत्तर में सत्यनारायणजी ने जो पत्र लिखा था, उसमें आपने लिखा था —"आपका कृपा-पत्र मैंने अपने सार्टिफ़िकेट के लिफ़ाफे में रख दिया है। सच जानिये, जितना उत्साह प्रदान आपके इस पत्र ने मुझे किया है वैसा जागीर नहीं दे सकती थी!"

श्रीतिलक-बन्दना

जब लोकमान्य तिलक आगरे पधारे थे उस समय सत्यनारायण जी ने यह कविता पढ़ी थी —

जय जय जय द्विजराज देश के सांचे नायक।
यदपि प्रभासत वक्र, सुधा नवजीवन दायक॥
दृग चकोर आराध्य राष्ट्र-नभ-प्रतिभा भाषा।
बन्दनीय विस्तार विशारद ज्योत्स्ना आशा॥
जय चित पावन सद्भाव सों जग शुभचिन्तक प्रति पलक।
शिव-भारत-भाल-बिशाल के लोकमान्य अनुपम तिलक॥
देश-भक्ति-स्वर्गीय-गङ्ग-आघात-तीव्र तर।
गङ्गाधर सम सह्यो अटल मन तुम गङ्गाधर॥
नित स्वदेश हित निर्भय निर्भ्रम नीति प्रकाशक।
जय स्वराज्य संयुक्त-शक्ति के पुण्य उपासक॥
जय आत्म-त्याग अनुराग के उज्वल उच्च उदाहरन।
जय शिव-संकल्प स्वरूप शुभ एक मात्र तारन-तरन॥
कर्मयोग आचार्य्य आर्य आदर्श उजागर।
निर्मल न्याय निकुञ्ज पुञ्ज करुणा के सागर॥
सुदृढ़ सिंहगढ़ के सजीव-ध्वज-धर्म धुरंधर।
अद्भुत अनुकरणीय प्रेम के प्रकृत पुरन्दर॥
प्राणोपम राष्ट्र प्रतापवर, अघ त्रिताप हर सुरसरी।
जय जन-सत्ता के छत्रपति महाराष्ट्र कुल-केसरी॥
मर्यादा-पूरण स्वतंत्रता-प्रियता प्यारी।
प्रकृति मधुर मृदु मंजु सरलता देखि तिहारी॥
रोम रोम कृत-कृत्य भयो यह जन्म कृतारथ।
तव दर्शन करि लोचन पायो लाहु यथारथ॥
चित होत परम गदगद मुदित जबै बिचारत कृत्य तुव।
जय जीवन-जङ्ग-जहाज के जगमगात जातीय ध्रुव॥

धन्य धन्य यह देश जहाँ तुम देशभक्त अस ।
जननी जन्मभूमि तन मन धन जीवन सर्वस ॥
धन्य आगरा नगर धन्य यहँ के बासी जन ।
चरण कमल तव दरसि परसि भये जो पुनीति मन ॥
सत विनय यही जगदीश सों होंय मनोरथ तव सफल ।
हम हिन्दी पावें विश्व में स्वत्व मानवोचित सकल ॥

कुली-प्रथा के विरोध में पद्य-रचना

३ मार्च सन् १९१७ को कुली-प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन करने के लिये एक सभा सेण्टजौन्स कालेज में प्रिंसिपल डेविस साहब के सभापतित्व में हुई थी। उस अवसर पर सत्यनारायणजी ने निम्नलिखित कविता पढ़ी थी।

दुखियों की पुकार

जगत में किसे हमारी पीर ।
लज्जा शोक घृणा से निशिदिन बहैं नयन से नीर ॥
जो स्वारथ के कारण अन्धे उनकी कुछ न कहानी ।
हाँ ! सो गये भारतवासी भी जो स्वदेश-अभिमानी ॥
शत्रु मित्र सब खड़े देखते अतिशय हमैं दुखारी ।
हुआ बड़ा अपमान यहाँ पर मनुष्यता का भारी ॥
मिटी गुलामी प्रथा जगत से जिसकी सुदया पाई ।
उसी ब्रिटिन की प्रजा मुल्क में ऐसी जाइ सताई ॥

जहाँ हुई दमयन्ती सीता सावित्री सी नारी।
पुण्य-सद्मिनी प्रेम-पद्मिनी। आर्य्य मुखोज्ज्वल कारी॥
अबला निपट द्रोपदी ने भी रक्खा मान जहाँ का।
दृढ़ता के वश कोई कर सका उसका बाल न बाँका॥
तहँ की पावन ललनाओं को दुष्ट बनावें दारा।
कहाँ सदय गोपाल कृष्ण प्रिय अनुपम मित्र हमारा॥
जो इस दुश्शासन के निरदय कर मे हमैं बचावै।
जाती हुई लाजपति को जो सकरुण हृदय रखावै॥
किसे सुनावें ? कौन सुनेगा ? फूट फूट हम रोये !
सद्गुण सदन मदन मोहन मोह न तुमको कह सोये॥
आत्म-मान का महल जगत में दृग पसार कर देखा।
नाथवान हम हा ! अनाथ सम जी में यही परेखा॥
यह भारत मानापमान का प्रश्न उपस्थित भारी।
इसके सुलझाने में चहिये शक्ति लगाना सारी॥

पता नहीं सरकार करै क्यों जान बूझ आना-कानी।
प्यारे हिन्दू और मुसलमां ईसाई हिन्दुस्तानी॥
क्या बूढ़े क्या बड़े मर्द क्या औरत क्या प्यारे बच्चे।
जिनको अपना देश पियारा दयावान हैं जो सच्चे॥
जिनके उर मनुष्यता देवी की पावन मूरति प्यारी।
प्रथा, सोचिये, कैसी है यह क्रूर लोम हर्षणकारी॥
जो अपने निष्टुर कामों से निष्टुरता के कतरै कान।
बोल गई "च़ी", हृदय-हीनता लख के हृदय-हीन सामान॥

इज्जत जो सर्वस्व हमारी वह भी लुटती जाती है।
होतो शर्म देख शर्मिन्दा तुम्हें शर्म नहिं आती है॥
कहते छाती फटती है तुम बने हुए ऐसे अनजान।
तुम्हें न करुणा आती सुनकर भ्राताओं का कष्ट महान॥
बहिन तुम्हारी वेवश होकर निज मर्यादा खोती हैं।
हाय परम असहाय बिचारी विलख बिलख कर रोती हैं॥
जो भविष्य को उज्ज्वलकारी छोटी छोटी है सन्तान।
"नहीं कहीं की रही" कीजिये इससे विपति का अनुमान॥
तन मन धन सर्वस्व निछावर इनके दुःख पर कर दीजे।
एक प्राण हो एक कण्ठ से इसका आन्दोलन कीजे॥
जिससे मिट जावै यह जड़ से घृणित प्रथा सत्यानासी।
तभी कहाओगे इस जग में तुम सच्चे भारतवासी॥
चिरंजीव एण्ड्रूज हमारे सरोजनी पोलक मतिवान।
जिनकी करुणामयी दशा सुन द्रवता है कठोर पाषान॥

इज्जत से भी रुपया पैसा अगर बड़ा सरकार।
निडर कहैं हम इस विचार को तो शतशः धिक्कार॥
ऋषियों के कुलीन पूतों को कुली बनाया जाता है।
रण में उन्हें भेजते आगा-पीछा सोचा जाता है॥
विमल हमारी राजभक्ति जो चली सदा से आई है।
कैसी अच्छी कदर हुई बस इसके लिये बधाई है॥
खोकर मान प्रान का रखना पल भर को भी जहँ दुशवार।
कौन सहेगा पाँच साल तक ऐसा अनुपम अत्याचार!!
हमसे तो गुलाम ही अच्छा जिसका होता एक हुजूर।
ऐरे-गैरे-पचकल्यानी के चंगुल से रहता दूर॥

भरा हुआ है अनन्त सागर उसमें हमें डुबा दीजे।
तोपों के मुहरों से हमको बिना उज़्र उड़वा दीजे॥
चाहे जैसी नृशंसता भी अपने हाथों से कीजे।
कुली-प्रथा का किन्तु अन्त कर उभय लोक में यश लीजे॥
नहिँ उलाहना अगर किया नहिं जो कोई पूरा वादा।
जाती हुई बचा लीजे इस आर्य्य जाति की मर्यादा॥
तीस कोटि के दंड मुंड का जो तुमने पाया अधिकार।
होंगे प्रभु के अवसि सामने बुरे भले के ज़िम्मेदार॥
अनुचित दया न हमको चहिये, चहिये केवल न्याय उदार;
उसकी हो हम भीख माँगते सविनय तुमसे बारम्बार॥
क़बर किसी की में नहिं सोना राजा को, जानैं संसार।
पक्षपात को छोड़ न्याय का करना चहिये पुण्य प्रचार॥
ब्रिटेन! तुम्हारी न्याय-नीति में है हमको अतिशय विश्वास।
गौरव निज प्राचीन सोचकर कीजे अब तो पूरी आस॥
न हो आपका नाम कलंकित, रक्षा भी हो सकल प्रकार।
सत्य दीन दुखियों को बस है हाथ जोड़कर यही पुकार॥

इन कविताओं के अतिरिक्त सत्यनारायणजी ने अन्य अवसरों पर भी कविता बनाई थीं। वैष्णव-महासभा के चतुर्थ सनाढ्य महा-मण्डल के २२ वें, वैद्यक सम्मेलन के तृतीय, चतुर्वेदी-सम्मेलन के प्रथम और हिन्दू-सम्मेलन के प्रथम अधिवेशनों पर भी पद्य रचना की थी। महायुद्ध के दिनों में उन्होंने एक विजय वन्दना बनाई थी और गढ़वाली सेना के स्वागत में भी 'रे गढ़वाली ज्वान*' नामक एक बढ़िया कविता बनाई थी।

* यह कविता कहीं नहीं मिल सकी! —लेखक।

इस प्रकार की कविताएँ जिस प्रकार बनाई जाती थीं उसके उदाहरण के लिये सैण्ट जौन्स कालेज के प्रिंसिपल डेविस साहब की चिट्ठी से एक अंश उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा। अपने २७ फ़र्वरी १६१६ के पत्र में उन्होंने लिखा था:—

Particularly I remember the occasion of a Recruiting meeting for the Indian Defence Force which was held in St. John's College in the autumn of 1917. I was very anxious that Satyanarayan should read a poem as I knew how much influence his writings exerted upon students, and I therefore motored out to his home with one of our students. Unfortunately Satyanarain was not to be found, but soon after my return he came up to the Bungalow and asked me whether I was looking for him. I told him that I was anxious that he should write a poem for the occasion. There then remained about half an hour, and I still have before my mind the picture of Satyanarain walking up and down his lips moving and writing one line after another on a scrap of paper. His poem was probably the most effective feature of the meeting."

अर्थात् "ख़ास तौर से मुझे उस अवसर का स्मरण है जब सन् १६१७ की शिशिर ऋतु में सेण्ट जौन्स कालेज में इण्डियन डिफेन्स फ़ोर्स के लिये रँगरूट भर्ती करने के वास्ते एक मीटिंग हुई थी। मुझे

इस बात की बड़ी उत्कंठा थी कि सत्यनारायण इस अवसर पर अपनी कविता पढ़े; क्योंकि मैं जानता था कि उनकी कविता कितना अधिक प्रभाव डालती थी। इसलिये अपने एक विद्यार्थी के साथ मैं उनके घर गया। दुर्भाग्यवश सत्यनारायण मुझे घर पर नहीं मिले। लेकिन वहाँ से लौटने के बाद ही वे मेरे बँगले पर आये और मुझसे कहा—"क्या आप मुझे तलाश करते थे?" मैंने कहा—मुझे इस बात की अत्यन्त उत्कंठा है कि तुम इस अवसर पर एक कविता पढ़ो? उस वक्त मीटिंग के समय को सिर्फ़ आध घंटा बाक़ी था और सत्यनारायण की वह मूर्ति अब तक मेरी आँखों के सामने है जब कि वे इधर-उधर टहलते जाते थे। उनके होठ चल रहे थे और वे एक लाइन के बाद दूसरी लाइन काग़ज़ के एक टुकड़े पर लिखते जाते थे। सभा में सब से अधिक प्रभावशाली बात कोई रही तो वह सत्यनारायण की कविता ही थी।"

यहाँ पर यह कह देना उचित और आवश्यक है कि सत्यनारायण जी का सब से बड़ा गुण उनकी असीम सरलता थी और यही उनकी सब से बड़ी कमज़ोरी थी। इसी कमज़ोरी से लोग मनमाना लाभ उठा कर कभी किसी वैद्य-सम्मेलन में घसीट कर हर्र-बहेरे तथा आँवले की प्रशंसा कराते थे तो कभी किसी रायबहादुर से की तारीफ़ में—

"जयति जयति भारती जुगल-पद-अलि मनभावन।
जय उदारता रतनाकर के रतन सुहावन॥"

इत्यादि पद्य लिखवाते थे। किसी को नाराज़ करना तो आप जानते ही न थे, इसलिये कोई भी याचक उनके यहां से निराश होकर नहीं जाता था।

अपनी प्रतिभा के पुष्पों को इस प्रकार अंट-संट आदमियों के सिर पर बखेरना सरस्वती देवी का एक प्रकार से निरादर करना था, किन्तु सत्यनारायण के हृदय में मनुष्यता देवी का आसन सरस्वती से भी ऊँचा था। इसी कारण इस प्रकार की पद्य-रचन उनके लिये एक स्वाभाविक बात थी। *

यह बात ध्यान देने योग्य है कि देश के आन्दोलनों के साथ सत्यनारायण बराबर चल रहे थे। हिन्दी के अन्य किसी आधुनिक कवि ने उनके समय में देश आन्दोलनों के विषय में इस प्रकार कविता की हो,इस विषय में हमें सन्देह है। सत्यनारायणजी अपनी कविता द्वारा जन-समाज को प्रोत्साहित करने और उसका मनोरंजन करने में वर्तमान कवियों में सब से अधिक सफल हुए, इस विषय में तो किसी को मतभेद न होगा। अपनी रचनाओं से उन्होंने साहित्य का क्या उपकार किया, वह हम दूसरे अध्याय में वर्णन करेंगे।

---

* श्रीयुत शालग्रामजी वर्मा ने अपने एक पत्र में लिखा था—"मैंने पंडित जी से एक बार इस विषय में कहा भी था कि आपकी ये विदाई-पत्र-सम्बन्धी रचनायें प्रायः एक सी हो जाती हैं और इनसे आपकी कविता पर परोक्षरीति से भद्दा प्रभाव पड़ता है। इसके उत्तर में हँसकर पंडितजी ने यही कहा था कि बहुत से लोगों के कहने का ख़्याल करके मुझे ये विदाई-पत्र लिखने पड़ते हैं और विषय के एकाङ्गी होने से कविता भी एक सी हो जाती है"।—लेखक।

साहित्य-सेवा



त्यनारायणजी की साहित्य-सेवा का ज़िक्र करते हुए मैं प्रारम्भ में ही यह कह देना चाहता हूँ कि उनकी कविता को आलोचना करना इस अध्याय का उद्देश्य नहीं है और न मुझ में इतनी योग्यता है कि मैं ऐसा कर सकूँ। ऐसा करना तो किसी साहित्यमर्मज्ञ का ही काम है। यहाँ पर मैं उनकी पुस्तकों का संक्षेप विवरण देकर साथ ही कुछ आलोचनाएँ उद्धृत कर दूंगा। जिनसे पाठकों को सत्यनारायणजी की रचनाओं का कुछ अनुमान हो जायगा।

सत्यनारायणजी ने चार पुस्तकें लिखी थीं - (१) उत्तर रामचरित्र (२) होरेशस (३) मालती-माधव और (४) हृदय-तरंग।

पहली तीनों पुस्तकें अनुवादित हैं; और चतुर्थ पुस्तक उनकी फुटकर कविताओं का संग्रह है। अपने विद्यार्थी-जीवन समाप्त करने के बाद सत्यनारायणजी केवल ८ वर्ष जीवित रहे। और इन आठ वर्षों में उन्होंने जो परिश्रम किया उसका फल हमारे सम्मुख उपस्थित है*।

---

* सत्यनारायणजी की इच्छा एक महाकाव्य लिखने को भी थी। चित्तौड़, हल्दी-घाटी इत्यादि जिन-जिन स्थानों में भारतीय वीरों ने अपनी वीरता प्रदर्शित की थी उन सब स्थानों की वे यात्रा करना चाहते थे और प्रत्येक

उत्तर राम-चरित्र

यह महाकवि भवभूति के संस्कृत नाटक उत्तर राम-चरित का हिन्दी-अनुवाद है। इसे फीरोज़ाबाद के भारती-भवन ने प्रकाशित किया था।

सत्यनारायण जी की इस पुस्तक के विषय में हिन्दी-सम्पादकों और समालोचकों की सम्मति यहाँ उद्धृत की जाती हैं।

साहित्याचार्य पं० चन्द्रशेखरजी शास्त्री ने सम्मेलन-पत्रिका में इस पुस्तक की आलोचना करते हुए लिखा था—

"हिन्दी में इस ग्रन्थ के और भी अनुवाद हो चुके हैं, जिनमें दो तीन मैंने भी देखे हैं। उन सब में कविरत्नजी का अनुवाद कई कारणों से उत्कृष्ट कहा जा सकता है। एक तो इस अनुवाद की कविता सरस और मनोहर है; और दूसरे इसके साथ ग्रन्थकार की लिखी एक वृहत् भूमिका जोड़ दी गई है।

भूमिका में बहुत सी बातें केवल हिन्दी जानने वालों के लिये नयी हैं। इस सुप्रयत्न के लिए हम कविरत्नजी को और साथ ही

स्थान पर बैठकर वहाँ किये हुए वीरता-पूर्ण कार्य्यों का वर्णन वे अपनी कविता में करना चाहते थे। अपने मित्र श्रीयुत सूर्य्यनारायणजी अग्रवाल से उन्होंने इस विषय में कई बार कहा भी था। यह हिन्दी-साहित्य का दुर्भाग्य था कि सत्यनारायणजी अपने इस विचार को कार्य्यरूप में परिणत नहीं कर सके। —लेखक।

इस ग्रन्थ के प्रकाशक फीरोज़ाबाद के भारती-भवन को धन्यवाद देते हैं।"

आलोचना के अंत में साहित्याचार्य्य जी ने लिखा था—

"मेरी समझ में अनुवादक मूल ग्रन्थकार के सर्वथा अधीन रहते हैं, क्योंकि वे अनुवादक हैं। उन्हें केवल भाषा परिवर्तन करने का अधिकार है। मूल ग्रन्थकार के भाव में इधर-उधर करना अनुवादकों के अधिकार के बाहर की बात है। इस अनुवाद में ऐसी स्वाधीनता देखी जाती है।" इसके दो एक उदाहरण देकर समालोचक ने लिखा था—'परन्तु इन उदाहरणों से यदि कोई यह समझे कि पुस्तक की सरसता में किसी प्रकार की त्रुटि आई है, सो बात नहीं है। कहीं-कहीं अनुवादक ने भवभूति के भाव को रूपान्तर में ग्रहण किया है अवश्य, तथापि पुस्तक पढ़ने लायक और उपादेय है।

श्रीमान् पं० श्रीधर पाठक ने मेनेजर भारती-भवन फीरोज़ाबादको लिखा था—"आपने जो पं० सत्यनारायण जी कृत उत्तर राम-चरित्र का भाषा-अनुवाद मुझको समालोचनार्थ दिया था उसको अवलोकन कर चित्त अति सन्तुष्ट हुआ। यह एक नवीन कवि की उत्कृष्ट प्रतिभा और सहृदयता का सौभाग्य संदर्भ आशा पूर्ण परिचय है। आशा है कि हिन्दी-रसिकगण इसका रसास्वादन कर सुखित होंगे।

श्रीमान् पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी ने लिखा था —"आज तक इस नाटक के जितने अनुवाद हमारे देखने में आये हैं उन सब से यह अच्छा है।"

बावू श्यामसुन्दरदासजी ने लिखा था—"यह अनुवाद बहुत ही उत्तम हुआ है। अब तक जितने अनुवाद इस नाटक के हुए हैं उन सब से यह कहीं बढ़कर है। भवभूति की कविता का बहुत कुछ आनन्द इसमें आता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन विद्यार्थियों के लिये, जो संस्कृत नाटक अध्ययन किया चाहते हैं, यह अनुवाद बड़ा उपकारी होगा।"

'सुधानिधि' पत्र ने लिखा था—"यह निस्सङ्कोच कहा जा सकता है कि यह अनुवाद जैसा सजीव है उससे पढ़ने वाले इसे अनुवाद नहीं, बल्कि स्वतन्त्र रचना के समान समझेंगे। उत्तर राम-चरित करुणा रस प्रधान नाटक है और कविरत्नजी की व्रजभाषा की कविता ऐसी उत्तम होती है कि वह करुणा रस को मानों साक्षात् कर देती है।

यद्यपि मूल ग्रन्थ की उत्तमता और सरसता किसी भी अनुवाद में आना कठिन है; तथापि यह रचना ऐसी उत्तम हुई है कि शायद ही कोई पाषाण हृदय हो जो इसे पढ़, करुणा परिप्लुत हो, रो न दे।"

इनके अतिरिक्त 'प्रताप' 'ब्राह्मण-सर्वस्व' इत्यादि पत्रों ने भी इस पुस्तक की बहुत प्रशंसा की थी।

देशभक्त होरेशस

यह लार्ड मैकोले की पुस्तक का अनुवाद है। इस अनुवाद को समर्पित करते हुए सत्यनारायण ने लिखा था—

"देशभक्ति जिनके जीवन को लक्ष्य सुहावन।
जिनपर निरभर मानव-कुल को भविष्य पावन॥

भेद-भाव तजि जो स्वदेश-रक्षा-रँग राँचे।
प्रिय आर्योचित धर्म कर्म के प्रेमी साँचे॥
गहि सत्य न्याय को पक्ष जो निज जीवन अरपन करत।
तिन वीर नरन के चरन में भेट अकिंचन यह धरत॥"

अनुवाद की कुछ बानगी देखिये—

"जबै झुकति हेमन्त-राति कारी कजरारी।
अरु उत्तर की सीरी सीरी चलति वियारी॥
बरफीले ठौरनु सों करकस कठोर आई।
उठि लिरियन को रुदन देर लों परत सुनाई॥
जबै इकोसी परी झोंपरी के चहुं ओरी।
सनसनाति आंधी आंजर पांजर झकझोरी॥

जबै महोच्छव औसर पर पै करबे मिहमानो।
काढ़त पीपहिं खोलि नसीली सुरा पुरानी॥
धरत उजेरे काज बड़ों सो लम्प उजारी।
करत भूँजि अखरोट विविध भोजन तैयारी॥
जबै घेर अगिहाने कों मिलि सबरे बैठत।
बूढ़ेनु सों बतरात ज्वान निज मोंछ उमेठत॥
बुनत बोइया और टकनियां जबै कुमारीं।
युवक बनावत धनुहीं जोय चुरावनहारीं॥

प्रमुदित अरु प्रेमाश्रु बहावत अति रुचि मानी।
सुनत सुनावत सकल अजहुं यहि वीर कहानीं॥

सत्यधीर होरेशस जिहि बिधि बल दरसाई।
लियो विमल प्राचीन समय में सेतु रखाई॥"

मालती-माधव

यह भी भवभूति की इसी नाम की पुस्तक का अनुवाद है। इस अनुवाद के प्रारम्भ के विषय में स्वयं सत्यनारायण जी ने लिखा था— "सन् १९१३ के जाड़े के दिनों में रुग्ण होकर चिकित्सा के लिए कुछ दिन मुझे भरतपुर रहने का अवसर प्राप्त हुआ था। मनोरंजन के लिये प्रार्थना करने पर परम पूजनीय सहृदय श्री पण्डित मयाशङ्करजी बी० ए० ने, जो आजकल दीग में नाज़िम हैं, प्राचीन हस्तलिखित संस्कृत-हिन्दी-पुस्तकों की खोज का कार्य आरम्भ कर दिया। उसी समय एक जीर्ण-शीर्ण पुस्तक के दर्शन हुए, जिसमें इधर-उधर के पत्र नहीं थे। खोलकर उसे बीच में देखा तो सामने श्मशान का वर्णन! तुरन्त हृदय में विचार उठा कि कहीं भवभूति प्रणीत संस्कृत मालती-माधव नाटक के आधार पर तो नहीं लिखा गया है? अच्छी तरह जहाँ-तहाँ पढ़ने से विचार ठीक निकला। इस पुस्तक का नाम 'माधव-विनोद' है। इसके रचयिता व्रजभाषा के आचार्य कविवर श्रीसोमनाथजी चतुर्वेदी हैं। ××× 'माधवविनोद' मालती-माधव नाटक का सुन्दर आद्योपान्त पद्यात्मक किन्तु स्वच्छन्द अनुवाद है। उसे अनुवाद न कहकर अपने

ढंग का स्वतंत्र ग्रन्थ कहना अनुचित न होगा। इस लेखक द्वारा किया हुआ उत्तरराम-चरित नाटक का हिन्दी-अनुवाद उस समय छप चुका था। मित्रों के अनुरोध से सन् १६१४ को वसन्त ऋतु में मालती-माधव नाटक का अनुवाद भी प्रारम्भ कर दिया गया"।

दुःख की बात है कि यह अनुवाद सत्यनारायणजी की मृत्यु के बाद प्रकाशित हो सका; यद्यपि इसके कई फ़ार्म उनके सामने छप चुके थे।

इस पुस्तक के विषय में सैयद अमीरअली 'मीर' ने लिखा था:—

"भारत मानसजा व्रजभाष को, माधुरी जामें रही सरसाई।
भाव ते भाव भरे भवभूति के, भारत नीति की नीकी निकाई।
ओज प्रसाद मयो कविता की बही सरिता सी सदा सुखदाई।
भाइ है 'मीर' मनै मन मोहिनी मालती-माधव मंजुलताई॥

"माडर्न-रिव्यू" के समालोचक ने इस पुस्तक की आलोचना करते हुए सत्यनारायणजी के विषय में लिखा था:—

"The talented author who was a well known figure in the Hindi world and who had command over both a facile and attractive style."

अर्थात् "सत्यनारायणजी हिन्दी-संसार के एक प्रतिभाशाली ग्रन्थकार थे और उनकी लेखनशैली बड़ी धाराप्रवाह और आकर्षक थी"।

श्रीमान पं० श्रीधर पाठक ने लिखा था—"यत्र-तत्र अवलोकन से प्रतीत हुआ कि इसमें अनुवादक ने विशेष परिश्रम किया है और कृति उत्कृष्ट कोटि की है।"

'सरस्वती' ने लिखा था—"इस नाटक के जो दो-एक अनुवाद हमारे देखने में आये हैं उन सब से यह अनुवाद अच्छा है। सत्य-नारायणजी ने अपनी विज्ञप्ति के अन्त में "नयी रोशनीवालों" पर जो कठोर आक्षेप किये हैं उनका उत्तर अब हम नहीं देना चाहते क्योंकि उसके सुननेवाले ही नहीं रहे !"

'सरस्वती' के समालोचक को जो बात बुरी लगी थी वह यहाँ उद्धृत की जाती है। सत्यनारायणजी ने लिखा था:—

"आजकल नयी रोशनीवालों की व्रजभाषा से कुछ चिढ़ सी हो गई है। शृंगार का नाम सुनकर उनकी आँखों में ख़ून उतर आता है। इसलिये इस अभागी भाषा तथा उक्त विषय पर पहले तो लोग लिखते ही बहुत कम हैं—जो लिखता भी है उसका ग्रंथ आर्थिक दुर्दशा के कारण इस क्रय विक्रयमय संसार में अपनी सूरत ही नहीं दिखा सकता। इस भाँति उत्साह-भंग होते हुए भी यदि किसी के हृदय में कुछ लिखने की तरंग उठे तो उसे फक्कड़ ही समझना चाहिये। कुछ भी समझा जाय किन्तु प्रसन्नता की बात यह है कि जो काम सौंपा गया था वह किसी प्रकार पूर्ण होकर सेवा में उप-स्थित है......इत्यादि।"

हमें तो सत्यनारायणजी के उपर्युक्त शब्दों में कोई अनुचित "कठोर आक्षेप" दीख नहीं पड़ते ; पर इस बात का खेद हमें भी है कि "सरस्वती" की समालोचना निकलने के समय तक सत्यनारायणजी ही न रहे !

हृदय-तरङ्ग

'हृदय तरंग' का नामकरण संस्करण सत्यनारायणजी कई वर्ष पहले कर चुके थे ; बल्कि उसका सम्पादन करके वे उसे भरतपुर के अधिकारी जगन्नाथदासजी विशारद के यहाँ रख आये थे । उसके दो फ़ार्म प्रकाशित भी हो गये थे । पुस्तक पूरी नहीं छपने पायी थी कि किसी महाशय ने उसे उड़ा दिया और आज तक उसका पता नहीं लगा । सत्यनारायणजी ने इन्दौर में मुझसे कहा था—"मेरी अनेक कोमल रचनाएँ 'हृदय-तरंग' के साथ ही बिलीन हो गयीं !" सत्यनारायणजी को इस बात का दुःख था । एक पत्र में उन्होंने मुझे लिखा था—"यदि आप उचित समझें तो अधिकारी जगन्नाथदासजी विशारद विरक्त-मन्दिर, भरतपुर से अथवा "चित्रमय-जगत"के भूतपूर्व सम्पादक से लिखा-पढ़ी करें । मुझे तो वे ठीक-ठीक उत्तर ही नहीं देते !" तदनुसार मैंने दोनों सज्जनों से लिखा-पढ़ी की ।

श्रीयुत भालेरावजी का तो उत्तर आ गया कि 'हृदय-तरंग' मेरे पास नहीं ; लेकिन अधिकारीजी ने मेरे तीस-पैंतीस पत्रों में केवल एक का उत्तर देने की कृपा की ! अधिकारीजी को इस बात की

आशङ्का थी कि 'हृदय-तरङ्ग' को भालेरावजी ले गये और भालेराव जी 'पितृ-हत्या' और 'गो-हत्या' जैसी घोर शपथ लेकर कहते हैं कि मैं 'हृदय तरङ्ग' लाया ही नहीं। भालेरावजी की आशङ्का है कि "हृदय-तरङ्ग" श्रीयुत शालग्रामजी वर्मा के पास रही और वर्माजी का विश्वास है कि वह अधिकारीजी या भालेरावजी के पास से खो गई होगी। सत्यनारायणजी द्वारा सम्पादित 'हृदय-तरङ्ग' कहाँ गयी और किसके पास है, यह तो परमात्मा ही जाने; लेकिन इतना हम भी अनुमान कर सकते हैं कि वह किसी "निर्दय हृदय" के पास है!

सत्यनारायणजी के स्वर्गवास के कई महीने पहले मैंने अपने मनोरंजन के लिये उनकी कविताओं का संग्रह करना प्रारम्भ कर दिया था। जब सत्यनारायणजी इन्दौर पधारे थे उस समय मैंने यह संग्रह उनको संशोधनार्थ दे दिया था। मेरे इस संग्रह में सत्यनारायणजी ने पीछे से अपनी कितनी ही रचनाएँ लिख दी थीं। इस प्रकार कुछ रचनाएँ तो काल-कवलित होने से बच रहीं। तत्पश्चात् मैंने जीर्ण-शीर्ण काग़ज़ों से कुछ की नक़ल करके संग्रह किया। सत्यनारायणजी के अनन्य मित्र चतुर्वेदी अयोध्याप्रसादजी पाठक की कृपा से 'हृदय-तरंग' प्रकाशित हो गया। अपनी मृत्यु के दो मास पूर्व १२ फ़र्वरी सन् १६१८ के पत्र में सत्यनारायणजी ने मुझे लिखा था—"आपके पत्र से ज्ञात—विश्वास—हुआ कि 'हृदय-तरङ्ग' इस संसार में उठ सकेगा—यह इस

ग्रामीण हृदय का सच्चा नैसर्गिक उद्गार है। इसी से ऊपर कहा है कि जो आपके द्वारा संग्रहीत हुआ है, जिसे आपका अवलम्ब मिला है वह अविलम्ब ही अवश्य-अवश्य प्रकाशित हो। यद्यपि आपको नहीं चाहिये, तथापि वह आपकी कीर्ति-कौमुदी से दिशाओं को मुग्ध करेगा, इसमें एक अक्षर भी मिथ्या नहीं।"

"हृदय-तरंग" का हिन्दी-संसार ने अच्छा आदर किया और संग्रह-कर्ता की भी .खूब तारीफ़ की गयी, जिसमें तीन चौथाई के हक़दार संग्रह के असली सम्पादक चतुर्वेदी पं० अयोध्याप्रसादजी पाठक थे।

"हृदय-तरङ्ग" में सत्यनारायणजी की लगभग वे सभी कविताएँ प्रकाशित होगयी हैं जो समाचार-पत्रों और मासिकपत्रों में निकलीं थीं, और उनके साथ ही 'प्रेमकली' और 'भ्रमरदूत' नामक पद्य-प्रबन्ध भी छाप दिये गये हैं।

"भ्रमर-दूत" के विषय में कविवर लोचनप्रसादजी पाण्डेयने लिखा था—"यह हृदयोल्लासिनी और अनूठी रचना है। २५वाँ पद्य मेरे हृदय-ज्योति चि०माधवप्रसाद के वियोग में तो कविरत्नजी ने नहीं लिखा? नहीं, नहीं, वैसा नहीं है—न होते हुए भी वह पद्य नहीं, कवितांश—अनुपम कवित्वपूर्ण रचना—मेरे शोक में, वियोग में, सहानुभूति के लिये है।"

२५ वाँ पद्य, जिसने पाण्डेयजी के व्यथित हृदय में अपने स्वर्गीय पुत्र माधवप्रसाद की स्मृति उत्पन्न कर दी, निम्नलिखित है:—

"लगत पलास उदास शोक में अशोक भारी।
बौरे बने रसाल, माधवी लता दुखारी।
तजि तजि निज प्रफुलितपनौ, बिरह-बिथित अकुलात।
जड़ हू ह्वै चेतन मनौ, दीन मलीन लखात—
एक माधौ बिना॥"

"भ्रमर-दूत" के विषय में श्रीयुत मुकुटधरजी पाण्डेय ने जो सम्मति हमारे पास लिखकर भेजी थी वह भी पढ़ने योग्य है। आपने लिखा था:—

"रचना मधुर है। यह ब्रजभाषा का पहला ही काव्यांश है जिसमें देश-कालोपयोगी सामयिक भाव प्रदर्शित हुए हैं—विशेषता यह कि प्राचीन विषय को लेकर। यथार्थ में कविवर सत्य-नारायण ब्रजभाषा में सामयिकता लानेके प्रयत्न में शुरू से ही रहे हैं। भाव में ही नहीं, उनके पद्यों के विषय और वर्णनशैली में भी सामयिकता पाई जाती है। 'भ्रमरदूत' में उनका यह यत्न सम्पूर्ण सफल होता, यदि वह इतने शीघ्र लोकान्तरित न हो जाते। इसमें यशोदा ने जो सन्देश भेजे हैं उसके वर्ण वर्ण और अक्षर-अक्षर में स्वदेश प्रेम और जाति-हितैषिता टपक रही है। इसको पढ़ते समय ऐसा जान पड़ता है मानों शोक-दुःख-जर्जरा स्वयं भारतमाता ही अपने हृदय का उद्गार निकाल रही हो! इन गुणों के साथ-साथ इसमें प्रासादिकता और स्वाभाविकता भी ख़ूब भरी हुई है। आठवाँ पद्य स्वभावोक्ति अलङ्कार का ख़ासा उदाहरण है। शब्दालङ्कार की तो सर्वत्र बहार है। अधिकांश अलङ्कार-प्रेमी अलङ्कार के पचड़े में

पड़कर रचना प्रवाह की स्वाभाविकता को नष्ट कर देते हैं; पर यहाँ यह बात नहीं। इसमें यमकानुप्रास का अनायास ही समावेश हुआ है। शब्दों का यथोचित प्रयोग कविकला का प्रधान अङ्ग है। भावमूलक कवि इस ओर विशेष ध्यान भले ही न दें, फिर भी प्रकृत कविता और श्रम-सिद्ध कविता के परख की मुख्य कसौटी वही है। कविवर सत्यनारायण इस परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होते हैं। "कूकि कूकि केकी कलित कुञ्जन करत कलोल" इस पंक्ति को एक ओर मुँह से बोलिये और दूसरी ओर कान से केकी की ध्वनि सुनिये! खेद है, "भ्रमरदूत" ४० पद्यों में ही रह गया; नहीं तो हम आगे वंशी और मुरली का भी स्वर सुनते! चतुर्थ पद्य के "छ्टा चूई परै" में चूई शब्द कितना उपयुक्त और अर्थवाहक है! इन शाब्दिक चमत्कारों के सिवा "भ्रमर-दूत" में कल्पना-कामिनी का भी कुछ कम सौन्दर्य्य प्रदर्शित नहीं हुआ है। ३०, ३१ और ३२ वें पद्य में भारतीय अगुवाओं का फ़ोटो उतारा गया है। 'भ्रमर-दूत' अपने कवि को प्रतिनिधि-कवियों की श्रेणी में स्थान प्रदान करता है। कविता की भाषा के विषय में पाठकजी जैसे व्रजभाषा-मर्मज्ञ ही कुछ राय दे सकते हैं। कविवर सत्यनारायण व्रज के पास ही रहते थे। व्रजभाषा के अत्यन्त प्रेमी, प्रशंसक और समर्थक थे। उसकी ख़ूबियों और बारीकियों को समझते थे और समझने की चेष्टा में रहते थे। इस अवस्था में उनकी भाषा के विषय में हमारे जैसे लोगों के कथन का मूल्य ही क्या हो सकता है? हाँ, उनके व्रजभाषा-प्रेम की तारीफ़ हम ज़रूर कर सकते हैं। ऐसे समय में, जब कि सारा देश खड़ी

बोली के पक्ष में था, आप अकेले ही (यह कुछ अत्युक्ति नहीं, ब्रजभाषा के पक्ष-समर्थक कुछ लोग इस समय भले ही हों, पर उसमें सुधार और सामयिकता लाकर लिखनेवाला कोई नहीं) ब्रजभाषा का झंडा अन्त समय तक उठाये रहे ! "भ्रमर-दूत" में भी वह उसे नहीं भूले। कवि के आन्तरिक विचारों का पता उसकी कविता से ही लगाया जा सकता है। यशोदा के मुख से "लखियत जो ब्रजभाषा जाति हिरानी सोऊ" कहलाकर आपने ब्रजभाषा के अप्रचार पर खेद प्रकट किया है। यथार्थ में ब्रजभाषा के अन्तकाल में सत्यनारायण उसके एक प्रतिभाशाली कवि हो गये, पर उन्हें अपने प्रतिभा-प्रदर्शन का सम्पूर्ण अवसर नहीं मिला।

"भ्रमर दूत" निर्दोष है—यह बात नहीं। छिद्रान्वेषी समालोचक इसमें कई दोष भी निकाल सकता है; पर हम यहाँ दोष ढूंढ़ने नहीं चले हैं।

"कविरत्नजी ने एक जगह लिखा है—"लोल लोल तहँ अति अमल दादुर बोल रसाल"। दादुर की बोली वर्षा में सुखद अवश्य जान पड़ती है; पर उसे रसाल कहना कुछ खटकता है। गुसाईंजी का कथन "वेद पढ़त जनु बटु समुदाई" अवश्य ठीक है। कविता को सामयिक बनाने के लिये कविने कहीं-कहीं काल का ध्यान भुला दिया है। ब्रज से भगवान के द्वारिका में जाकर रहने और यशोदा के सन्देश भेजने के मध्य में क्या इतना समय व्यतीत हो गया था कि वृन्दावन के तमाम कुंज कट गये थे और वहाँ चौरस खेत बन गये थे !

वही बात "कालीदह को ठौर जहँ, चमकत उज्ज्वल रेत—काछी माली करत तहँ अपने-अपने खेत" के विषय में भी कही जा सकती है। पर इस दोष से कविता की उपयोगिता बढ़ गई है—कोरे समालोचकों की दृष्टि ही उस पर पड़ सकती है।"

साहित्य-सम्मेलनों पर की गयी कविताएँ

सत्यनारायणजी हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के तीन अधिवेशनों पर उपस्थित हुए थे—द्वितीय, पंचम और अष्टम। द्वितीय अधिवेशन प्रयाग में हुआ था। इसके विषय में स्वर्गीय मन्नन द्विवेदीजी ने लिखा था—"द्वितीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन का समय था। मित्र-मंडली मेरी कुटी पर एकत्रित थी। वहीं से मेयोहाल में सम्मेलन देखने जाना था। पं० केदारनाथजी, पं० जीवनशङ्करजी, सम्पादक पन्नालालजी और मित्रवर बदरीनाथ उपस्थित थे। हम लोगों की प्रार्थना पर पंडित सत्यनारायणजी ने सम्मेलन में पढ़ने के लिये लच्छेदार ओज उपमा-प्रसाद पूर्ण पद तैयार किये थे। अपनी कविता को पढ़ने का ढङ्ग भी उन्हीं को मालूम था। जिस समय आप पंडाल में सम्मेलन की स्वागत-कविता पढ़ने लगे, लोग मुग्ध हो गये!"

वह कविता निम्नलिखित थी :—

श्रीराधावर प्रेम-मूर्ति-जन-वत्सल ललित ललामा।
बिगत छद्म सुख-सद्म सकल बिधि तव पद-पद्म प्रनामा॥

जन-मन-रञ्जन खल-दल-गञ्जन भञ्जन हित भूभारा।
पुनि बन्दौं भारतभुवि जहँ प्रभु स्वयं लियो अवतारा॥
श्रीपति-जन्म-स्थान शान्तिमय बेद बितान पुराना।
गुन-मण्डित पण्डित रत्ननि को जाको कोश महाना॥
नसी यदपि जो नासवान छिनभंगुर जिह प्रभुताई।
तदपि बिमल बिलसति जाके हिय प्रणव बेद निपुनाई।
अटल भारती-प्रभा-प्रभाकर जा भुवि परम प्रकासा।
का आश्चर्य तहाँ बुधवर मन-पंकज करहिं बिकासा?
ज्ञानवान साहित्य-तत्वविद सुभग सरल हिय सुन्दर।
क्यों न होहिं तहँ भारतेन्दु सम पूरण प्रेम धुरंधर॥
तिन कीरति की चारुचन्द्रिका-चुम्बन को चित भावै।
जनु हिन्दी-साहित्य-रसिक-उर-उदधि उमङ्गत आवै॥
वा साहित्य-सरोज-मधुर-मधु-चाखन को ललचाये।
अलबेले अलि-वृन्द चहूं दिसि सों मानो घिरि आये॥
सरस प्रेमघन-स्वाँति-बूँद के पीवन को मतवारे।
'हिन्दी' 'हिन्दी' रटत सबै ये सज्जन यहाँ पधारे॥
जननी-जन्मभूमि भाषा के जे अविचल अनुरागी।
तिन दरसन लहि चरन-परसि हमहूँ अतिशय बड़भागी॥
बड़े भाग सों आज जुरयो यह सम्मेलन मनभावन।
समयोचित सुप्रयागराज में पुण्य-हृदय-पुलकावन॥
वृद्ध नागरी-भक्त-भक्ति की लता लहलही प्यारी।
जाकर जनु यह स्वच्छ पुष्प है सरस सुलभ उपकारी॥
अथवा हिन्दी-दुःख-दलन को बालकृष्ण को रूपा।
मंजुल मधुर मनोमोहन अति सोहन नवलस्वरूपा॥

'हिन्दी' 'हिन्दू' हृदय भाव के ऐक्य रसहिं बरसावन।
मुरझाई साहित्य-बेलि-हित यह धाराधर पावन॥
जाके दरसन को हमरो मन सदा रहत अनुरागत।
अस नित नव साहित्य-देह धर करत तिहारो स्वागत॥
हे गोविन्द! प्रेमघन! याको सब विधि रक्षा कीजौ।
सुधा-सलिल सरिसाय सुहावन सत्य याहि सुख दीजौ॥

पंचम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन पर

लखनऊ में सत्यनारायणजी ने 'ब्रजभाषा' नाम की जो कविता पढ़ी थी वह उनकी अन्य सब रचनाओं से उत्तम कही जा सकती है। चतुर्वेदी अयोध्याप्रसादजी पाठक इस कविता के विषय में लिखते हैं:—

"लखनऊ-साहित्य सम्मेलन में श्रीश्यामसुन्दरदास व पुत्तनलाल विद्यार्थी के प्रबन्ध के कारण सत्यनारायणजी को मौक़ा मिलना कठिन था कि वे उसे पढ़ें या सुनावें। इसलिये सम्मेलन के सभापति श्रीमान श्रीधर पाठकजी को शाम के वक्त डेरे पर जा घेरा। वे घूम-कर आये थे। कपड़े उतारते जाते थे। "ब्रजभाषा" सुनाई गयी। पाठकजी बड़े प्रसन्न हुए और कहा—"आहा! रासपञ्चाध्यायी का आनन्द आ गया!" दूसरे दिन प्रोग्राम के बीच में ही पाठकजी ने सूचना दे दी कि सत्यनारायणजी कविता सुनावेंगे। पंडितजी प्लेटफ़ार्म की सीढ़ियों पर बड़ी मुश्किल से बैठने दिये गये थे। झट लपककर ऊपर चढ़ गये और कविता सुनाना प्रारम्भ किया। बड़ा प्रभा

पड़ा। जिन महाशयों ने पण्डितजी का अनादर किया था वे हाथ जोड़कर क्षमा प्रार्थना करने लगे; लेकिन पंडितजी ने बुरा ही नहीं माना था, क्षमा क्या करते ?"

'ब्रजभाषा' इतनी बढ़िया कविता है कि उसको हम यहाँ पूर्ण-तया उद्धृत किये बिना नहीं रह सकते ।*

श्रीहरिः

श्रीब्रजभाषा

सजन सरस घनश्याम अब. दीजे रस बरसाय ।
जासों ब्रज-भाषा-लता हरी भरो लहराय ॥
भुवन विदित यह यदपि चारु भारत भुवि पावन ।
पै रसपूर्न कमंडल ब्रजमंडल मनभावन ॥
परम पुण्यमय प्रकृति छटा यहँ बिधि बिथुराई ।
जग सुर मुनिनर मंजु जासु जानत सुघराई ॥
जिह प्रभाववस नितनूतन जलधर शोभाधरि ।
सफल काम अभिराम सघन घनश्याम आपु हरि ॥
श्रीपति पदपंकज रज परसत जो पुनीत अति ।
आइ जहाँ आनन्द करति अनुभव सहृदय मति ॥
जुगल चरन अरविन्द ध्यान मकरन्द पान हित ।
मुनि मन मुदित मलिन्द निरन्तर बिरमत जहँ नित ॥

*यह कविता पहले अलीगढ़-सम्मेलन में पढ़ी गयी थी। -लेखक

तहँ सुचि सरल सुभाव रुचिर गुनगन के रासी।
भोरे भारे बसत नेह बिकसत ब्रजबासी॥
जिनके उच्च उदार भाव-गिरिसों जग श्रासा।
जनमो तारनि-तरनि कलिन्दिनि यह ब्रजभासा॥
जासु सरत निरमल जगजीवन जीवन माहीं।
लखियत उज्जल सूर चंद की नित परछाहीं॥
जिन प्रकास सों श्रोरु प्रकासित सुन्दर लहरी।
नित नवल रसभरी मनहरी बिलसत गहरी॥
जिह श्राश्रय लहि कलिमलहर तुलसी सौरभ यस।
मंजु मधुर मृदु सरस सुगम सुचि हरिजन सरबस॥
केशव श्ररु मतिराम बिहारी देव श्रनूपम।
हरिश्चन्द्र से जासु कूल कुसुमित रसालद्रुम॥
श्रष्टछाप श्रनुपम कदम्ब श्रघ-श्रोक-निकन्दन।
मुकुलित प्रेमाकुलित सुखद सुरभित जगबन्दन॥
तुरत सकल भयहरनि श्रार्य जागृति जयसानी।
जन मन निज बस करनि लसति पिक भूषन बानी॥
बिबिध रंग रञ्जित मनरंजन सुखमा श्राकर।
सुचि सुगंधि के सदम खिले श्रगनित पदमाकर॥
जिन पराग सों चौंकि भ्रमत उत्सुकता प्रेरे।
रहसि-रहसि रसखान रसिक श्रलिगुंजि घनेरे॥
बरन-बरन में मोहन की प्रतिमूर्ति बिराजत।
श्रच्छर श्राभा जासु श्रलौकिक श्रद्भुत भ्राजत॥
सुरपद बरन सुभाव बिबिध रसमय श्रति उत्तम।
शुद्ध संस्कृत सुखद श्रात्मजा श्रभिनव श्रनुपम॥

देसकाल-अनुसार भाव निज व्यक्त करन में।
मंजु मनोहर भाषा या सम कोउ न जग में ॥
ईश्वर मानव-प्रेम दोउ इक संग सिखावति।
उज्जल श्यामलधार जुगल यों जोरि मिलावति ॥
भेद-भाव तजिवे की प्रतिभा जब रसरनी।
योग गहत तिनसों तब सुन्दर बहत त्रिवेनी ॥
करीं जाय यदि जासु परीक्षा सविधि यथारथ।
याही में सब जग कैा स्वारथ अरु परमारथ ॥
बरनन को करिसकत भला तिह भाषा-कोटी।
मचलि-मचलि जामें माँगी हरि माखन-रोटी ॥
जाकैासो रस अवगाहत जाही में आवै।
कैसोहू गुनवान थाह जाकी नहिं पावै ॥
रह्यो यही अवसेस एक आरज जीवनधन।
चिन्तनीय यह विषय तुमनु सों सब सज्जन गन ॥
बङ्ग और महाराष्ट्र सुभग गुजरात देस में।
अटक कटक पर्य्यन्त कहिय भारत असेस में ॥
एक राष्ट्रभाषा की त्रुटि जो पूरत आई।
इतने दिन सों करति रही तुम्हरी सिवकाई ॥
सत समरथ कबियनु की कबिता प्रमान जामें।
निरखहु नयन उघारि कहां लों सबनु गिनामें ॥
इकदिन जो माधुर्य्य कान्तिमय सुखद सुहाई।
मंजु मनोरम मूरति जाकी जग जियभाई ॥
देखत तुम निश्चिन्त जात ताके अब प्राना।
अभागिनी शोकार्त्त कहहु को तासु समाना ॥

लिखन रह्यो इक ओर तासु पढ़िबोहू त्याग्यो ।
मातासों मुख मोरि कहाँ तुव मन अनुराग्यो ॥
शुभ राष्ट्रीय बिचारनु को जब पुण्यप्रचारा ।
कैसो याके संग कियो तुमने उपकारा !!!
रह्यो बनावन याहि राष्ट्रभाषा इकओरी ।
उलटो जासु अनिष्ट करन लागे बरजोरी ॥
या जीवन-संग्राम माहिं पावत सहाय सब ।
नाम लैन हू तज्यो किन्तु तुमने याको अब !
क्यों जासों मन फिर्यो कृपा करि कछुक जतावौ ।
वृथा आतमा या ब्रजभाषा की न सतावौ ॥
जिनके तुम बस परे अहहिं ते सकल बिमाता ।
ब्रजभाषा ही शुद्ध संस्कृत सांची माता ॥
मातृहृदय को प्रेम मातृहृदही में आवै ।
ताकौ पावन स्वाद विमाता कबहुँ न पावै ॥
टपकावति प्रेमाश्रु पुलकि तन पूत प्रेमसों ।
भरि-भरि देखत नैन तुमहिं जो नित्यनेम सों ॥
तिहदिसि चितवत नाहिं कहां की नीति तिहारी ।
पुण्यप्रकृति तजि प्रतिकृति ताकी लगति पियारी ॥
काज न जब कुछ करत सिथिलता तन में व्यापत ।
यही सोचि जननी ब्रजभाषा निसिदिन कांपत ॥
सुत-सेवा-हित तासु रुचिर रुचि रहत सदा हीं ।
जनमें पूतकुपूत कुमाता माता नाहीं ! !
जाय कहाँ अब, बनहिं तुम्हैं यहि पाले पोसे ।
याको बल याको जीवन बस आप भरोसे ॥
निरालम्ब यह अम्ब याहि अवलम्बनु दी जै ।
तनसों मनसों धनसों याकी उन्नति कीजै ॥

यही रहति जननी की केवल नित अभिलाषा।
सफल होहिं तुव सबै उच्च उन्नत प्रिय आशा॥
सकल ओर अभ्युदय-सूर्य्य की किरनि प्रकासैं।
नसहिं अविद्या रैनि ज्ञान-नय-कमल बिकासैं॥
जागृति त्रिविधि बयारि बसन्ती नित सरसावैं।
निरमल पर उपकार हृदय मधि लहरि सुहावैं॥
सोहैं सुजन रसाल प्रेम मंजरि चहुँ छाये।
निजभाषा रुचि लता अङ्क लहि परम सुहाये॥
कवि कोयल सत्काव्य कूक अपनी उच्चारैं।
गुनिगुन गाहक रसिक भ्रमर मंजुल गुंजारैं॥
जगमगाय जातीय प्रेम सुधरै चरित्रबल।
सब के हों आदर्श उच्च उत्तम अरु उज्ज्वल॥
बिद्या बिनय बिवेक प्रकति छवि मनहिं लुभावै।
दुख को हो बस अन्त देस भारत सुख पावै॥
परब्रह्म परमातम घट-घट अन्तरजामी।
पूरहिं यह अभिलास सत्यनारायण स्वामी॥

इसी सम्मेलन में आपने पैसा-फंड की अपील और सम्मेलन पंचपदी नामक कविताएँ भी पढ़ीं थीं। इन्हें हमने परिशिष्ट में दिया है।

फीरोज़ाबाद के आगरा-प्रान्तीय सम्मेलन पर

फ़ीरोज़ाबाद तथा उसके निवासियों पर सत्यनारायणजी क विशेष कृपा थी। इसलिये जब फ़ीरोज़ाबाद में आगरा-प्रान्तीय

सम्मेलन हुआ तो सत्यनारायणजी ही उसकी स्वागत-कारिणी समिति के सभापति बनाये गये। श्रीमान श्रीधर पाठकजी इस प्रान्तीय-सम्मेलन के प्रधान थे। इन दोनों कवियों का सम्मेलन वास्तव में मणि-काञ्चन-संयोग की तरह था। इसी कारण सम्मेलन का सम्पूर्ण कार्य बड़ी सफलता से समाप्त हुआ। हिन्दी के अनेक विद्वान और लेखक इस सम्मेलन में सम्मिलित हुए थे। सत्यनारायणजी की स्वागत-वक्तृता वैसी ही योग्यता-पूर्ण थी जैसा कि पाठकजी का सारगर्भित भाषण।

सत्यनारायणजी ने अपने भाषणके प्रारम्भ में श्रीमान पाठकजी के विषय में निम्नलिखित पद्य पढ़ा था।

परम पुण्यमय बिश्व-प्रेम के जो रँगराँचे।
उर उदार अति सदय हृदय सहृदय जग साँचे॥
मंजु मधुर मृदु सरस सुगम सुनि सुठि जिन बानी।
नस-नस नव जातीय ज्योति विद्युत लहरानी॥
श्रीधर भाषा-साहित्य के जे अस कविकोविद प्रवर।
सत सादर नित सबकों नवत सीस नाय जुग जोरि कर॥

भाषण के अन्त में श्रीमान पाठकजी से सभापति का आसन ग्रहण करने के लिये अपने निम्नलिखित शब्दों में प्रार्थना की थी :—

प्रकृति मधुर प्रिय परम बिदित नय नागरि नागर!
भव्य भारती बिमल विभाकृत विशद उजागर॥

पुण्य राष्ट्रभाषा-उत्कविकुल अग्रगण्य वर।
अखिल आगरा-रत्न समुज्ज्वल नितनव श्रीधर ॥
श्री श्रीधर पाठक करि कृपा मंजुल मुद मंगल करन।
यहि सभापती आसन सुभग करहिं सुशोभित मन हरन ॥

सम्मेलन समाप्त होने पर सत्यनारायणजी ने श्रीरवीन्द्रनाथ के एक सुप्रसिद्ध पद्य का अनुवाद सुनाकर उपस्थित सज्जनों को मन्त्र-मुग्धसा कर दिया था। वह यह था :—

भगवन ! मेरा देश जगाना।
स्वतंत्रता के उसी स्वर्ग में, जहाँ क्लेश नहीं पाना।
रुचे जहाँ मनको निर्भय हो ऊँचा शीश उठाना।
मिलै बिना कुछ भेद-भावके सबको ज्ञान-खज़ाना ॥
तंग घरेलू दीवारों का बुना न ताना-बाना।
इसीलिये बच गया जहाँ का पृथक्-पृथक् हो जाना ॥
सदा सत्य की गहराई से शब्दमात्र का आना।
पूरणता की ओर यत्न का जहाँ भुजा फैलाना ॥
बिमल बिवेक सुलभ श्रोते का जो रसपूर्ण सुहाना ॥
रूढ़ि भयानक मरुस्थली में जहाँ नहीं छिप जाना ॥
जहां उदारशील भावों का भावै नित अपनाना।
सच्चे कर्मयोग में प्रतिजन सीखे चित्त लगाना ॥

सत्यनारायणजी के इस मधुर गीत की ध्वनि अब भी उन लोगों को नहीं भूली जिन्होंने इसे फ़ीरोज़ाबाद में सुना था !

अष्टम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन इन्दौर

सम्मेलन के इस अधिवेशन में भी सत्यनारायणजी सम्मिलित हुए थे। इसका विवरण हम सत्यनारायणजी के अन्तिम दिवस नामक अध्याय में करेंगे।

इस अध्याय से पाठकों को पता लग गया होगा कि सत्यनारायण जी का जीवन कितना साहित्यमय था। सहृदयता और सरलता के साथ-साथ जिस वस्तु ने सत्यनारायण के व्यक्तित्व को आकर्षक बना दिया था, वह था उनका साहित्यिक जीवन। श्रीयुत गोकुलानन्द-प्रसाद वर्म्मा ने "साहित्यिक रुचि और जीवन" नामक एक लेख में लिखा था—"आँखें उठाइये, अब भी अपने हिन्दी-संसार में आप बहुतेरे सज्जनों को देखेंगे जो सच्चे साहित्यसेवी हैं, जिनका जीवन सच्चा साहित्यिक जीवन है। × × × वह अधखिला फूल आगरा-निवासी कविवर सत्यनारायण अब इस संसार में नहीं; पर जिन लोगों ने साहित्य सम्मेलन के लखनऊ के अधिवेशन वा दूसरे अधिवेशनों में उसको देखा था, उसके भाषा प्रेम को मालूम किया था, उसके हृदय को अपने हृदय में स्थान दिया था, वही कहेगा कि सत्यनारायण अपनी सादी आकृति में भी कैसा मनोहर व्यक्ति था!

पाठकों ने सत्यनारायणजी को साहित्यिक जीवन का वृत्तान्त पढ़ ही लिया। अब उनकी "साहित्यिक मृत्यु' अर्थात् विवाह और गृह-जीवन का वर्णन अगले अध्याय में पढिये।

विवाह



एक बार आगरा निवासी गोस्वामी पं० ब्रजनाथ शर्म्मा और पं० हरिप्रपन्नाचार्य्यजी हरद्वार गये हुए थे। वहाँ से लौटते समय उन्होंने सोचा कि चलो सहारनपुर की 'मेरी शारदा-सदन' नामक संस्था को भी देखते चलें। समाचार-पत्रों में इस संस्था का नाम उपर्युक्त सज्जनों ने कई बार पढ़ा था। संस्था के अधिष्ठाता पंडित मुकुन्दरामजी ने इन महाशयों को अपनी संस्था का निरीक्षण कराया। अधिष्ठाताजी ने एक लड़की से हारमोनियम पर एक भजन भी गवाया। गोस्वामीजी के पास जेब में सत्यनारायणजी की कोई कविता पड़ी हुई थी, उन्होंने वह उस लड़की को गाने के लिये दी। उसने उस कविता को हारमोनियम पर गाकर सुनाया। तत्पश्चात् निरीक्षकगण सन्तुष्ट होकर संस्था से बाहिर चले आये। बाहर आने पर जब ये लोग चलने के लिए उद्यत थे, पं० मुकुन्दराम जी दौड़े हुए आये और बोले—"जिस कन्या की परीक्षा आपने ली थी। उसके लिये वर की आवश्यकता है। यदि आपकी तालाश में कोई वर हो तो बतलाइये। गोस्वामी ब्रजनाथ शर्मा ने मज़ाक में यों कह दिया—"हमारी तालाश में एक वर है।" मुकुन्दरामजी ने पूछा—"कौन? गोस्वामीजी ने कहा—"सत्यनारायण कविरत्न" मुकुन्द

रामजी ने कहा—"क्या वे ही, जिनकी कविताएँ पत्रों में निकला करती हैं ? गोस्वामी ने उत्तर दिया—"हाँ वे ही। मुकुन्दरामजी ने प्रार्थना की कि सत्यनारायणजी को आप सम्बन्ध के लिये तैयार करें। इस प्रकार मज़ाक-मज़ाक में ही उस दुःखान्त नाटक का सूत्रपात हुआ जिसका अन्तिम पर्दा आगे चलकर १६ अप्रैल सन् १६१८ को गिरा !

गोस्वामी ब्रजनाथजी शर्मा की मारफ़त पत्र-व्यवहार कुछ दिन तक होता रहा। सर्वसाधारण को यह ख़बर "मौज़ी" ने १६ जुलाई सन् १६१६ के 'भारतमित्र" द्वारा निम्नलिखित शब्दों में सुनाई थी:—

"सहारनपुर की (मेरी) सम्राज्ञी शारदा-सदन की षोड़शी सुन्दरी के साथ सीधे-साधे सरल सुकवि सत्यनारायण का समीचीन सम्बन्ध शीघ्र ही सुसम्पन्न होने का शुभ समाचार सुरसिक साहित्य-सेवियों को सदा सन्तुष्ट रखेगा इसमें सन्देह नहीं। क्योंकि यह सदानन्द सन्दोह के समागम का सच्चा साधन है।"

इस समाचार को पढ़कर सत्यनारायणजी के अनेक मित्रों ने उनको पत्र भेजकर इस सम्बन्ध को न करने का आदेश किया। सरस्वती सदन इन्दौर के श्रीयुत द्वारिकाप्रसादजी "सेवक"ने एक ज़ोरदार पत्र इसी आशय का पंडितजी को भेजा, जिसमें यही आग्रह किया था कि इस सम्बन्ध को आप कदापि न करें। उधर विवाह के लिये पत्र-व्यवहार होता रहा।

२२ मई सन् १६१५ के पत्र में श्रीयुत मुकुन्दरामजीने गोस्वामी जी को लिखा था—

मान्यवर महाशयजी,

नमस्कार

उपरोक्त आश्रम अब सहारनपुर से उठकर ज्वालापुर आ गया है। यहाँ भक्तराज सेठ बलदेवसिंहजी (देहरादून) ने भूमि तथा धन इमारत के लिए दिया है। यहाँ इस संस्था की अधिक उन्नति होगी, ऐसी आशा है। आपका पत्र तथा दोनों पुस्तक प्राप्त हुए थे। हम आपके अनुग्रहीत हैं।

परिवार की स्त्रियाँ देखना चाहती हैं। क्या उक्त पंडितजी किसी प्रकार ज्वालापुर (हरिद्वार) पधार सकते हैं? सब बातें भी तय हो सकेंगी। देखना भी सर्व प्रकार ठीक हो सकेगा। मै तो स्वयं भी वहाँ ही आकर देख सकता हूँ। बूझकर सूचना दें तो बड़ी कृपा हो। आने जाने का व्यय हम दे देवेंगे।

पं० पद्मसिंहजी—सम्पादक "भारतोदय"—भी ज्वालापुर में उक्त पंडितजी को जानते हैं। साक्षातकार उनसे भी हो जावेगा। कृपया वापसी डाक उत्तर दें।

भवदीय—

मुकुन्दराम शर्मा

अधिष्ठाता

संस्कृत-कन्या विद्यालय।

इसके बीस-बाईस रोज़ बाद श्रीयुत मुकुन्दरामजी ने जो पत्र सत्यनारायणजी के नाम भेजा था उसकी ज्यों की त्यों नक़ल यहाँ जाती है।

ॐ

स्थान ज्वालापुर (हरिद्वार)
ज़िला – सहारनपुर
तारीख़ १५ जून १९१५ ई०
तिथि ज्येष्ठ सुदी ३ भौमवार संवत् १९७२ ।

मान्यवर महोदय श्रीयुत पण्डित सत्यनारायण जी शर्म्मन्:

नमस्ते

आप के विवाह सम्बन्ध में मैंने अब तक पत्र-व्यवहार पं० बृजनाथ जी गोस्वामी शीतलागली, आगरा के साथ किया था । अब आगे आप से ही सब पत्र व्यवहार करना उचित समझता हूँ । आप स्वयं ही पत्र-व्यवहार कीजिये ।

आप विवाह कब तक कर सकते हैं ? हमने आपके तथा कन्या के नाम से सुझवाया था तो ता० ३ जौलाई १९१५ तदनुसार मिति असाढ़बदी ७ या ८ निकलती हैं। आप इस तिथि पर कर सकते हैं या नहीं ? और सर्व प्रकार की तैयारी वस्त्र आभूषण आद की कर सकेंगे या नहीं ?

हम विवाह में अधिक व्यय करने में असमर्थ हैं ; क्योंकि ४ वर्ष से हमने स्त्री-शिक्षा-व्रत धारण किया हुआ है और बिना कुछ लिये हुए ही इतना बड़ा कठिन काम सिर पर उठा रक्खा है । हम एक साधारण आदमी और एक निर्धन ब्राह्मण हैं । इस संस्था से पूर्व भी अनेक नौकरी करते हुए प्रायः ब्राह्मणत्व ही का ध्यान रक्खा

है और धन संग्रह नहीं किया। हाँ, हम से जो कुछ बना है, अपने परिवार तथा अन्य मित्रों की शिक्षा में सर्वदा तत्पर रहे हैं और मेरी स्त्री ने भी स्त्री-शिक्षाव्रत के लिये भिक्षुकों की भाँति जीवन कर रक्खा है जो हमारे परस्पर के व्यवहार द्वारा आप जान सकेंगे। हमने आपकी वृत्ति अपने अनुकूल देखकर ही आप को कन्या के योग्य पसन्द किया है।

इसमें सन्देह नहीं कि हमारी प्रिय पुत्री सर्व प्रकार योग्य है—सुन्दर, हृष्ट-पुष्ट, गृह-कार्य्यदक्षा, विदुषी और सर्व कार्य्यों में प्रवीणा है। इस प्रकार की ब्राह्मण कन्या बहुत ही कम निकलेंगी जिसके पबलिक में भाषण देहली, लखनऊ, मंसूरी आदि में हुए हैं और जो इस आश्रम के कार्य्यार्थ भ्रमण में प्रायः भाषण करती रही है और लेख भी अच्छे लिख लेती है। हार्मोनियम बजाना-गाना भी जानती है। गोस्वामीजी परीक्षा कर भी चुके हैं उनसे समाचार मिले ही होंगे। आयु भी १६ वर्ष की है। सर्व प्रकार योग्य है। उसको योग्य बनाने में ही हमने अपना तन मन धन अब तक लगाया है। इसलिये धन-हीन हैं। हमसे धन की आशा तो रखना व्यर्थ होगा। हाँ, हमारे व्यवहार से आप सर्वदा प्रसन्न रहेंगे यह आशा है। हां, हमने आपके स्वास्थ्य-सम्बन्धी सब बातें जो हमें अन्वेषण द्वारा प्रकट हुई थीं अपनी प्रिय पुत्री को जता दी हैं तथा आपके सम्बन्ध की अन्य बातें भी प्रकट कर दी हैं। वह भी आप के गुणों को अपने अनुकूल समझ कर अन्य कई वरों में से आपको ही पसन्द करती है। हम भी इस लिये उससे सहमत हैं।

कन्या का नाम सावित्री देवी है और वह शारीरिक दशा के प्रकट करने पर प्राचीन समय की महाभारतवाली "सावित्री सत्यवान्" की तरह अपने भाग्य को ईश्वर अधीन करती है। हम भी उसके इस दृढ़ सच्चे विश्वास से अधिक प्रसन्न हुए हैं। और इसलिये ही हमारे परिवार के इतर सज्जनों तथा मित्रों ने भी आपके साथ सम्बन्ध को सर्वथा अनुकूल ही समझ लिया है। आपकी सम्मति और विचार क्या है ? आपके उत्तर आने पर हम ५) पाँच रुपये वाग्दान (सगाई) की रीति के तौर पर मनीआर्डर द्वारा भेज देवेंगे। वापसी डाक उत्तर दीजिये।

शीघ्र से शीघ्र आप विवाह कर सकेंगे ? ज्वालापुर-आगरे में बड़ा अन्तर है और मार्ग-व्यय अधिक होगा। इसलिए सोच-विचार कर ही बारात में लाना उचित रहेगा। न्यून से न्यून कितने सज्जनों को लाओगे ? हां, सब सज्जन योग्य पुरुषों को आप स्वयं विचार कर के ला सकते हैं। मित्रवर पं० पद्मसिंहजी की भी यही सम्मति है।

मैं आपके ग्राम में भी गया था। अब तक आप एकाकी थे। गृहस्थी होने की दशा में मकानादि सुरक्षित और आराम का होना चाहिए। आपको निज मकान का भी प्रबन्ध करना पड़ेगा। आप स्वयम् विचारशील हैं, मैं अधिक क्या लिखूँ ?

बारात में आनेवाली तादाद को पूर्व लिखने से आतिथ्यादि का प्रबन्ध समुचित किया जा सकेगा। इसलिये पूर्व सूचना देवें।

हमारे द्वारा यहां क्या प्रबन्ध (बाजे आदि का) कराना उचित समझते हैं, यह भी लिख भेजें।

विवाह संस्कार कराने को पं० घनश्यामजी के भ्राता पं० भीमसेनजी आगरा के तथा पर्वतीय विद्वान् पं० यज्ञेश्वरजी यहा ही हैं। हम बुला लेवेंगे।

वापसी डाक उत्तर देवें।

भवदीय—

मुकुन्दराम शर्म्मा गौड़, पाराशर।

अधिष्ठाता

कन्या-संस्कृत विद्यालय।

P.O. Jwalapur, Dt Saharanpur,

O, R. R.

इस पत्र के उत्तर में सत्यनारायणजी ने एक कार्ड डाला। तत्पश्चात् एक चिट्ठी और भी भेजी। उस चिट्ठी में आपने लिखा था :—

"आपके दीर्घकाय कृपा-पत्र के उत्तर में एक कार्ड डाला जा चुका है। जिस प्रेमपूर्ण ओजस्विनी भाषा में आपने वह पत्र लिखा था उसे पढ़कर मैं क्या, कोई भी सहृदय पुरुष आपकी आज्ञा उल्लंघन नहीं कर सकता; फिर भी प्रस्तावित विषय पर पुनर्विचार करना कोई बुराई नहीं है। सहसा किसी कार्य को नहीं करना चाहिये। इसलिये निम्नलिखित कुछ बातों पर ध्यान देने की कृपा करने के लिये मैं आप से सानुरोध प्रार्थना करता हूँ। आशा है, आप ऐसा करके कृतकृत्य करेंगे। जिन बातों पर विचार करना है वे सब की सब यथार्थ हैं, उन में लेशमात्र को भी अतिशयोक्ति की मात्रा नहीं है।

(१) मेरा स्वास्थ्य लगभग ३ साल से बिगड़ता चला आ रहा है। अब भी अच्छा नहीं है। बरसात में रोग का दौरा होना सम्भव है जिसकी मैं भी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

(२) स्वतंत्र जीवन ही मेरा जीवन है। नौकरी चाकरी कभी की नहीं और ऐसी दशा में श्रम करना * × × ×।"

ता० ३१ जुलाई १९१५ को सत्यनारायणजी ने किसी मित्र को यह पत्र लिखा था —

धांधूपुर,

३१ जुलाई १९१५

प्रियवर,

कृपा पत्र यथा समय मिला। सामयिक सूचना के लिये धन्यवाद विशद प्रकार से पं० बद्रीनाथ तथा लक्ष्मीधरजी ने मुझसे कुछ नहीं कहा है। हाँ, मुझे देखकर मुसकराये अवश्य हैं। आपको किस प्रकार सच आगया कि मैं "बेचैन" हूं। प्रथम तो मेरा स्वास्थ्य ही अच्छा नहीं है। आप से क्या यह छिपा है? न मेरी ओर से अभी तक कोई प्रस्ताव किया गया है। अपनी दशा जैसी है वैसी ही लिखदी गई है। जैसे आपने यह कृपा की, वैसे ही उस पत्रोल्लिखित "गृहलक्ष्मी" की सद्गुणावली, अवकाशानुसार, विस्तारपूर्वक लिखिये।

ऐसा सम्बन्ध करने के पूर्व यथासम्भव मैं आप की सेवा में आऊँगा केवल स्वास्थ्य परीक्षा के लिये। तत्पश्चात् कोई काम होगा—इस ओर से आप निश्चिन्त रहें। यदि दैव-संयोग से किसी

* इस पत्र का शेष अंश नहीं मिल सका। —लेखक

विकट समस्या में फंसना ही पड़ा तो आप को तार द्वारा अवश्य सूचना दी जायगी, विश्वास रखिये।

अब मैं कुछ-कुछ स्वतंत्रतापूर्वक स्वास ले उठा हूँ। अब आपकी सेवा में तुकबन्दी भेजा करूँगा।

आपका —

सत्यनारायण

तारीख ६ अक्टूबर सन् १९१९ को श्रीयुत मुकुन्दरामजी ने एक पत्र फिर सत्यनारायणजी के नाम भेजा, जिसमें आपने लिखा था —

"श्रीयुत माननीयवर महोदयजी,

मैंने आपके पास एक पत्र विवाह के सम्बन्ध में ता० १७ सितम्बर १९१९ को डाला था। अब तक प्रतीक्षा कर रहा हूँ। उत्तर नहीं दिया। कृपया वापसी डाक उत्तर प्रदान करें।

पं० व्रजनाथजी की भेजी हुई पत्रिका "स्त्री-सुधार" नामी ट्रैक्ट की समालोचनावाली तो पहुँच चुकी है।

विवाह के सम्बन्ध में अब आपके क्या विचार रहे? स्वास्थ्य कैसा प्रमाणित हुआ? आपके कारण हमने और से अभी तक बात भी नहीं की है।

वापसी डाक उत्तर देने की कृपा करें। हम विजया दशमी दशहरा पर वाग्दान (सगाई) की रसम अदा करना चाहते हैं। सगाई भेजी जावेगी।

अगहन में विवाह करने को तैयार हैं या नहीं ? क्या सम्मति है ? आप भी कन्या को देखना चाहते हों तो आकर देख जायँ । यह बात कुछ बुरी नहीं कि परस्पर सब बात देख ली जाय । कन्या से आपकी दशादि सब कह दी गई है। इतने पर भी वह आपको अनुकूल समझती है।

भवदीय—

मुकुन्दराम शर्म्मा

इसके उत्तर में १३।१०।१५ को सत्यनारायणजी ने निम्नलिखित पत्र भेजा था:—

श्री

१३—१०—१५

भगवन् !

कृपा-पत्र मिला। ज्वर से पीड़ित होने तथा आगरा-प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-सम्बन्धी कार्य-भार के कारण ठीक समय पर उत्तर न दे सका। क्षमा करियेगा।

मेरा स्वास्थ्य अब पहले से गिर गया है। विवाह विषयक प्रश्न को मैंने—एक बार नहीं—कई बार सोचा और जब-जब इस पर विचार किया तब-तब आत्मा के गम्भीरतम प्रदेश से यही निर्णयात्मक ध्वनि प्रतिध्वनि हुई कि जो व्यक्ति मेरे लिये इतना आत्म-त्याग करता है उसके भविष्य-सुख की चिन्ता करना मेरा परम कर्त्तव्य है—धर्म है।

जैसा आपकी सेवा में प्रथम निवेदन किया जा चुका है कि गृहस्थ जीवन का सुख व सौन्दर्य्य अच्छे स्वास्थ्य पर निर्भर है, अपनी हाल की शारीरिक व्यवस्था को देखते हुए मुझे सखेद लिखना पड़ता है कि मेरा स्वास्थ्य विवाह-योग्य कदापि नहीं है। ऐसी दशा में आप से सादर यह अनुरोध करना अनुचित न होगा कि आप कृपया किसी स्वस्थ एवं सुयोग्य सज्जन को चुनियेगा जिसमें वह देवी आराम पावे। दशहरा पर सहसा सगाई भेजना साहस-कार्य है। इसे कदापि न करें; क्योंकि यह मेरे विचार के विरुद्ध है।

हां, इस सम्बन्ध से कहीं बढ़कर हम और आप उस पवित्र प्रेम-पाश में प्रतिबद्ध हैं जो प्रत्येक मनुष्य को, यदि वह सच्चा मनुष्य है, स्वदेश तथा स्वबान्धवों की सेवा करने के लिये विवश करता है। हमारा आपका उद्देश एक है। इस कारण आपके सर्वोपयोगी पुनीत कार्य को अग्रसर करने के लिये यह शरीर सर्वदा समुपस्थित है। इसे आप अपना ही समझें।

यदि कभी आना हुआ तो आपकी पुण्यमयी संस्था तथा आपके पुण्य दर्शन से अपने को अवश्य कृतार्थ करूँगा। पूज्य पं० पद्मसिंह जी को प्रणाम्।

विनीत—

सत्यनारायण

इसके उत्तर में श्रीयुत मुकुन्दरामजी ने १६ अक्टूबर को लिखा था—

"मान्यवर महोदयजी,

नमस्कार

आपका १३ । १० । १५ का पत्र प्राप्त हुआ । उत्तर में निवेदन है कि हम आपकी इस कृपा के लिये अत्यन्त अनुग्रहीत हैं जो आपने हमारे तथा हमारी संस्था के लिये दर्शाई है ।

हमने आपके भरोसे पर अभी तक दूसरे किसी वर की तालाश नहीं की थी - और कन्या बड़ी समझदार है। आपके गुणों पर मुग्ध होकर उसने आपके साथ ही पत्र-व्यवहार कराया था । अब आपने स्पष्ट उत्तर दे दिया है। हम आपकी सुजनता की प्रशंसा करते हैं; परन्तु साथ में यह भी निवेदन करते हैं कि क्या वास्तव में स्वास्थ्य-दशा वर्षा ऋतु में गिर गई हैं या पूर्ववत् ही है । साधारण ज्वर की चिन्ता नहीं करनी चाहिये । और यदि आप किसी अन्य कारणों से नहीं करना चाहते हों तो दूसरी बात है । हमें भी सूचित करना चाहिये-हमें भूषण-वस्त्रादि की आवश्यकता न समझें । हम तो आपकी सुजनता से प्रसन्न हैं । इलाज हम आपका यहाँ करा देवेंगे । मेरे कई मित्र अच्छे अनुभवी वैद्य हैं । और यदि किसी प्रकार भी आप विवाह करना चाहते ही नहीं तो हमें कोई और वर बतलाइये । आगरा-कालिज में कोई पढ़ता हो अथवा आपकी दृष्टि में अन्य कोई हो, या अपने मित्रों से पता चले तो हमें उत्तर देने की कृपा करें ।

अपने विषय में भी उत्तर देवें कि स्वास्थ्य-दशा के अतिरिक्त और कोई बात तो बाधक नहीं है ।

भवदीय—मुकुन्दराम शर्म्मा

२२ अक्टूबर को श्रीयुत मुकुन्दरामजी ने निम्नलिखित तार गोस्वामी व्रजनाथ शर्मा के नाम भेजा—

"Send satyanarayan one day expenses will pay.
Mukundram"

अर्थात् "सत्यनारायण को एक दिन के लिये भेजो। खर्चा हम देंगे—मुकुन्दराम।

इस तार के साथ ही एक तार उन्होंने सत्यनारायणजी को भी भेजा और साथ ही निम्नलिखित पत्र भी।

२२ अक्टूबर १९१५

मान्यवर महोदयजी !

नमस्कार

मैंने श्रीमानों के पास एक पत्र भेजा था, पहुँचा होगा। उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। आज आपके नाम तथा गोस्वामी व्रजनाथ जी के नाम तार भी दिया है कि और एक दिन के वास्ते हम पर कृपा करके यहाँ पधारें तो बड़ी भारी कृपा हो।

आपने किस कारण से विवाह का निषेध किया है ? हम स्वयं वास्तविक कारण जानना चाहते हैं। आपका स्वास्थ्य अच्छा है। हमें ऐसा प्रतीत हुआ है कि आपने किन्हीं अन्य कारणों से निषेध किया है। अतः हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि मार्ग-व्ययादि हम देवेंगे। एक बार आप हमारे यहाँ आकर दर्शन देने की कृपा करें।

परिवार की स्त्रियाँ आदि आपका देखना चाहती हैं। हम आपके साथ ही मानसिक संकल्प देर से कर चुके हैं। कन्या भी आपके गुणों से मुग्ध होकर आपको ही अधिक पसन्द करती है। कृपया आप एक दिन को अवश्य पधारें। आने की सूचना तार द्वारा दे देवें।

भवदीय मुकुन्दराम शर्म्मा

इस पत्र के पाने के बाद सत्यनारायणजी ज्वालापुर गये।

ज्वालापुर से लौटने के बाद सत्यनारायणजी ने निम्नलिखित पत्र २८।१०।१५ को पं० पद्मसिंहजी शर्म्मा के नाम भेजा था।

आगरा
२८।१०।१५

पूज्य प्रिय पंडितजी,

पद

सुधि रहि-रहि आवत तव सँग को रंग-रलियाँ।
नय नयनाभिराम श्यामल बपु -शैल,गंग,तट गलियाँ ।।
रस-बतरानि बिचारत बिकसत रोम-रोम की कलियाँ।
सत गरीब को फेरि देउ मन भली न ये छलबलियाँ ।।

आ गया—शरीर आगया! मन वहाँ ही आपकी सेवा में छोड़ आया हूँ। आपके दरबार में यहाँ का कोई प्रतिनिधि चाहिये न?

कुछ इज़हार लिये जाने पर मुक़दमा फिर मुलतबी हो गया। यहाँ अलीगढ़ की ट्रेन से लगभग १॥ या २ बजे आ पहुँचा।

गाड़ी में बैठा जब मैं आ रहा था तब झंझट में फँसे हुए मैंने दूर से देखा कि पं० रामगोपालजी महाविद्यालय के फाटक पर गाड़ी की ओर देख रहे थे। मैं नमस्कार करने जब तक आया तब तक गाड़ी दूर निकल आई। उनकी निगाह ठीक सीध में होने से नमस्कार कार को सफलता न हुई। कृपाकर मेरी ओर उनसे क्षमा प्रार्थना मांग लीजे।

मास्टर साहब को ब्राह्मी-पत्र सब पहुँचा दिये। उनसे निवेदन करिये कि ज़रा इधर भी कृपा-दृष्टि रक्खें।

पूज्य पं० शालिग्रामजी से नमस्कार।

श्री नारायणसिंहजी, सुन्दरलालजी तथा अन्य प्रेमी विद्यार्थियों से नमस्कार।

आपका—
सत्यनारायण

३ नवम्बर को मुकुन्दरामजी ने एक पत्रगोस्वामी ब्रजनाथजी शर्मा के नाम भेजा। उसमें आपने लिखा था—

"हम मार्गशीर्ष से आगे विवाह के लिये कदापि नहीं ठहर सकते। यदि पं० सत्यनारायणजी किसी प्रकार भी उस समय तक नहीं कर सकते तो हम विवश हैं। हम अन्यत्र प्रबन्ध कर रहे हैं। आप उनसे बूझकर शीघ्र उत्तर दें।"

फिर दूसरे पत्र में मुकुन्दरामजी ने गोस्वामीजी को लिखा—

"हमने आपसे बहुत आग्रह किया था कि हम बहुत शीघ्र विवाह करना चाहते हैं। यदि शीघ्र विवाह करना स्वीकार करें तो वागदान का मनीआर्डर लेवें अन्यथा वापिस कर दें। जब आपका उत्तर आ गया कि नहीं कर सकते, तब हमने अन्यत्र पत्र-व्यवहार किया था और सब बातचीत पक्की कर चुके थे। शीघ्र ही विवाह की तैयारी भी हो रही थी। इतने ही में फिर आपके पत्र मुझपर तथा पं० पद्मसिंहजी पर आये कि माघ में अवश्य विवाह कर लेवेंगे और वागदान का मनीआर्डर भी लेने की सूचना मिली तो फिर वहाँ का पत्र-व्यवहार बन्द करके पं० सत्यनारायणजी के साथ ही पं० पद्मसिंहजी तथा आपके आग्रह पर सम्बन्ध स्वीकार कर लिया है। परन्तु इतनी बात अवश्य है कि हम देर तक ठहर किसी प्रकार भी नहीं सकेंगे। हम विवाह की तिथि निश्चय करा के शीघ्र ही भेजनेवाले हैं। यथा सम्भव जो भी तिथि नियत हो सकेगी, की जावेगी। आप सब तैयारी करें। हम बड़ी धूमधाम नहीं चाहते। साधारण तौर पर कार्य्य करें। परन्तु पौष के अन्त अथवा माघ के प्रारम्भ में विवाह करना अवश्य ही पड़ेगा, यह पूरा-पूरा प्रबन्ध रक्खें। इसी शर्त पर वाग्दान को भेजा भी गया था। हमारी यही शर्त पत्रों में भी थी। हमने शीघ्र ही विवाह करनेवाले सम्बन्ध को आपकी स्वीकारी पर बन्द किया है।"

इसके ४-५ दिन बाद ही चतुर्वेदी अयोध्याप्रसादजी पाठक के नाम भी मुकुन्दरामजी ने एक पत्र भेजा जिसमें उन्होंने लिखा था—

"यदि वे (सत्यनारायण) मार्गशीर्ष में विवाह करने के लिये तैयार हो सकें तो वागदानवाला मनीआर्डर ले लेवें अन्यथा हमें उनकी आशा छोड़कर कोई दूसरा वर ही निश्चय करना पड़ेगा। हम मार्गशीर्ष से आगे किसी प्रकार भी विवाह को हटाने को तैयारनहीं हैं।"

इन पत्रों के उत्तर में सत्यनारायणजी ने ६।११।१५ को निम्नलिखित पत्र भेजा था—

भगवन्,

गोस्वामी ब्रजनाथजी द्वारा कृपा-पत्र मिला। यदि उसे एक अंश में अल्टीमेटम कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। सच जानिये, आपके सद्व्यवहार से बिमोहित होकर मैं आपकी सेवा में आत्मसमर्पण कर चुका हूँ; किन्तु जब तक पूज्य पं॰ यज्ञेश्वरजी आदि वैद्य-प्रवर एक मत होकर मेरे स्वास्थ्य के लिये अपनी पुष्ट सन्तोषजनक सम्मति न देंगे तब तक इस सम्बन्ध के विषय में अपना स्वीकारात्मक उत्तर अथवा कार्य स्थगित करने के लिये विवश हूँ। माना कि आपके तथा देवी के हृदय में अगाध प्रेम है; परन्तु मैं जो आगा पीछा सोचने में कुछ विलम्ब लगा रहा हूँ क्या वह सत्परिणाम-कामना का द्योतक नहीं है?

'सहसा विदधीतन क्रियाम्' *

---

*यह वाक्य सत्यनारायणजी ने लिखकर फिर काट दिया था। —लेखक।

यदि किसी कारण विशेष से आपको अपने दैर के मानसिक संकल्प में परिवर्तन करने की शीघ्रता हुई है, जैसा कि होना स्वाभाविक भी है,तो तद्विषय में इस शरीर की आन्तरिक कामना है।

"विधाता भद्रं ते वितरतु मनोज्ञाय विधये,

विधेयासुर्देवाः परमरमणीयां परिणतिम् ।"

अपने एक सेवक की तरह मुझे भी याद रखिये और सर्वदा कृपा बनाये रखिये।

आपका—

सत्यनारायण

ता० २१ नवम्बर को श्रीमुकुन्दरामजी ने एक पत्र फिर सत्यनारायणजी को भेजा, जिसमें लिखा था:—

"हमने अन्य वर तलाश करने का विचार कर लिया है और एक अच्छा वर संस्कृत का विद्वान मिल भी गया है जो इसी अगहन में विवाह भी कर सकेगा। इसलिये आप को सूचनार्थ अब लिखा जाता है कि हम विवश होकर दूसरी जगह करते हैं। हमारा इस में कोई दोष नहीं।

हमने ६ या ७ मास आप के कथनानुसार प्रतीक्षा भी की थी। जब आप सर्वथा सहमत नहीं हुए तब हम अन्यत्र करते हैं। × × × परन्तु हमारा प्रेम आप से पूर्ववत् रहेगा। हमें भूल मत जाना।"

इस प्रकार यह सम्बन्ध लगभग टूट ही गया था कि दैवयोग से उसमें उपन्यास जैसा परिवर्तन हुआ। ता० २६।११।१५ को महाविद्यालय ज्वालापुर से पंडित पद्मसिंहजी ने निम्नलिखित पत्र गोस्वामीजी के नाम भेजा।

"श्री गोस्वामीजी महाराज,

प्रणाम,

कृपा-कार्ड आपका मिला। मैं दस-बारह दिन से पं० मुकुन्दरामजी से नहीं मिल सका। आज उनसे मिलकर मालूम करूँगा कि उनके इस विचार परिवर्तन का मुख्य कारण क्या है। मैं तो संसार भर के वर पुरुषों पर श्रीसत्यनारायणजी को "तर्जीह" देता हूँ। जहाँ तक मेरी शक्ति में है, मुकुन्दरामजी को समझाऊँगा। उन्हें कई अनिवार्य्य कारणों से जल्दी तो बेशक बहुत है। क्या माघ से पूर्व आप वर महोदय को किसी प्रकार भी तैयार नहीं कर सकते? विशेष तैयारी की ज़रूरत नहीं है। आप पूरा प्रयत्न कीजिये कि माघ से पूर्व ही यह कार्य सम्पन्न होजाय। मैं मुकुन्दराम को समझाता हूँ।

भवदीय—

पद्मसिंह शर्म्मा

इसके बाद क्या हुआ, उसका पता पं० पद्मसिंहजी के २१।१२।१५ के पत्र से लगता है। शर्माजी ने सत्य-नारायणजी को लिखा था:—

"आशा है, आप इधर आने की तयारी में लगे होंगे। पं० मुकुन्दरामजी ने अपने पत्र में तिथि की सूचना आप को दे दी है। तदनुसार यथासमय आप अपने सहचर-

वर्ग सहित दर्शन देंगे, इसमें तो सन्देह नहीं। श्रीगोस्वामीजी का एक कृपा-कार्ड मिला था। उसके उत्तर में मैं दो पत्र भेज चुका हूँ। आशा है, वे उन्हें मिलेंगे। फिर उन्होंने (जैसा कि अपने पत्र में इच्छा प्रगट की थी) कुछ पूछा नहीं। कोई बात ऐसी हो तो साफ़ करली जाय। इतना फिर निवेदन है कि किसी बात में भी तकल्लुफ़ या संकोच की ज़रा ज़रूरत नहीं। जिस प्रकार इच्छा हो, पधारिये।

बरात भी 'जस दूल्हा तस सजी बराता" के अनुरूप ही होनी चाहिये—बस इने गिने दस- पाँच साहित्य-सेवी × × ×"।

इस पत्र का उत्तर २६।१२।१५ को सत्यनारायणजी ने निम्नलिखित पद्य में दिया था।

"आई तव पाती।
नहिं बिसरायो अजहुँ मोहि यह जानि सिरानो छाती॥
बड़े भाग जो इतने दिन में सोचि कछू सुधि लीनी।
दरस-पिपासाकुल कों आधी जीवन आशा दीनी॥
जो मोसों हँसि मिले होत मैं तासु निरन्तर चेरो।
बस गुनहो गुन निरखत तिह-मधि सरल प्रकृति को प्रेरो॥
यह स्वभाव कौ रोग जानिये मेरों बस कछु नाहीं।
नित नव बिकल रहत याही सों सहृदय बिछुरन माँहों।
सदा दारु योषित सम बेबस आज्ञा मुदित प्रमानै।
कोरो सत्य ग्राम को वासी कहा "तकल्लुफ" जानै॥"

इस कविता की पिछली ६ पंक्तियों में सत्यनारायण ने अपने चरित्र की कुंजी बतला दी है। निर्दोष और प्रेममय सरलता ही

उनके जीवन में सब से अधिक आकर्षक वस्तु थी। अस्तु, अब कोरे सत्यग्राम के बासी को गृह-जंजाल में फँसने का समय आगया। ये काग़ज़ के टुकड़े पर हिसाब लगाने बैठे :—

हँसुली	४०)
पहुँची, कड़े	१००)
बाजू	२०)
१० लच्छे, झांझन	३०)
करधनी, अँगूठी	२५)
लहगा, दुपट्टा, चद्दर	५०)

विवाहोत्सव

७ फ़र्वरी सन् १९१६ को सत्यनारायणजी का विवाह हुआ।

"तुलसी गाय-बजाय के दियौ काठ में पाँव"

विवाह के अवसर पर सत्यनारायणजी ने निम्नलिखित बचन दिये थे।

सूखे चने !चबाकर भी हम हिन्दी को आराधेंगे।
हिन्दू हिन्द देश का मंगल तन मन धन से साधेंगे॥
क्या हिन्दू क्या आर्यसमाजी मुसलमान क्या ईसाई।
भेद भाव तज सदा गिनेंगे हम सब को भाई-भाई॥

उनका दुःख दूर करने में मानेंगे अपना आनन्द ।
सदा कहेंगे, जैसा चहिये, सच्ची बातें हम स्वच्छन्द ॥
कुरीतियों की मूल काटने हम आवाज़ उठावेंगे ।
शुद्ध रीतियों को सप्रेम हम हृदयासन बैठावेंगे ॥

इस प्रकार दो भिन्न-भिन्न प्रकृतियों का संसर्ग हुआ । कर्कशता सरलता के गले पड़ी । स्वच्छन्दता ने सहृदयता पर अधिकार जमाया । चंचलता ने सरलता का लाभ उठाया और विलासिता तथा भक्ति का मुक़ाबला हुआ । उस समय प्रेमपुर धांधूपुर का वायुमंडल अशान्त बनगया और एक करुणोत्पादक ध्वनि हुई —

" भयो क्यों अनचाहत को संग !

अगले अध्याय में इसी ध्वनि का अर्थ किया जायगा ।

गृह-जीवन



लीवर क्रौम्वैल ने अपने चित्रकार से कहा था—
"Paint me as I am. If you leave out the scars and wrinkles, I will not pay you a shilling."

अर्थात् "हमारा चित्र ज्यों का त्यों बनाओ। यदि तुमने चहरे की गूथों और सिकुड़नों को छोड़ दिया तो हम तुम्हें एक शिलिङ्ग भी नहीं देने के।" यही वाक्य प्रत्येक चरित्र-लेखक के लिये आदर्श का काम कर सकता है। अपने चरित्र नायक की कमज़ोरियों को दिखलाना उतना ही आवश्यक है जितना उसके गुणों का वर्णन करना। इसी उद्देश्य से मैंने सत्यनारायणजी के गृह-जीवन पर प्रकाश डालने का निश्चय किया है। इसके अतिरिक्त एक बात और है। वह यह कि सत्यनारायणजी की मनुष्यता को सर्वसाधारण के सम्मुख लाने के लिये ही यह जीवनी लिखी गई है। इसलिये यदि मैं इस अध्याय को छोड़ दूँ तो यह जीवनी बिलकुल अधूरी ही रह जायगी। अच्छे चित्र में छाया और प्रकाश दोनों का प्रशंसनीय और यथोचित संमिश्रण रहता है। यदि आप छाया-भाग को छोड़ दें तो वह चित्र कभी भी असली चित्र नहीं कहा जा सकता। और फिर यदि सत्यनारायणजी के जीवन का यह भाग छोड़ दिया जाय तो

स ाधारण की समझ में उन पद्यों का महत्व कदापि नहीं आ सकता जो उन्होंने अपने गृहजीवन से निराश और दुःखी होने के समय लिखे थे।

सत्यनारायणजी का विवाह ७ फ़रवरी सन् १६१८ को हुआ था। × × फ़रवरी को सत्यनारायणजी सपत्नीक धाँधूपुर लौटे। उस समय सत्यनारायणजी के हृदय के क्या भाव थे इसकी कल्पना करने की सामर्थ्य हममें भी नहीं है। लेकिन इतना हम अवश्य कह सकते हैं कि उनके हृदय में यह आशा अवश्य थी कि एक सुशिक्षित पत्नी के संसर्ग से उनका साहित्यमय जीवन और भी अधिक सरस हो जायगा। उस समय "कोरे सत्य ग्राम के बासी" को इस बात का पता नहीं था कि 'शिक्षा' और 'सहृदयता' दो भिन्न-भिन्न वस्तुएँ हैं। महीने भर के अन्दर ही सत्यनारायणजी को पता लग गया कि शिक्षित मनुष्य जितना हृदय-हीन हो सकता है उतना अशिक्षित मनुष्य कदापि नहीं हो सकता।

धाँधूपुर पहुँचने के कुछ ही दिन बाद ही श्रीमती सावित्री देवी जी ने कहना प्रारम्भ किया—"मुझे अपनी सहेली "**आमोदिनी**"* केपास "रतिनगर" पहुँचा दो। सत्यनारायणजी ने बहुत कुछ समझाया लेकिन श्रीमतीजी ने एक न मानी।

---

* असली नामों को न लिखकर हमने इन कल्पित नामों को ही लिखना उचित समझा है। —लेखक।

ता० ७ अप्रैल १९१६ को श्रीमतीजी के नाम "आमोदनी" का निम्नलिखित पत्र आया।

५ अप्रैल १९१६

श्रीमानजी तथा श्रीमती बहिनजी,

नमस्ते

आपके ४ ता० को आने के कई पत्र मुझको मिले और एक ६ तारीख को आने का पत्र मुझको मिला जिसमें यह लिखा हुआ था कि मैं अव्वल तो चार तारीख़ को ज़रूर-ज़रूर आऊँगी, नहीं तो ६ ता० को ज़रूर ज़रूर आऊँगी। कल चार तारीख को गाड़ी स्टेशन पर गई। मुरादाबाद से जो दस बजे गाड़ी आती है वह देखी। फिर ३ साढ़े तीन बजे जो गाड़ी आती है वह देखी। २ पैसे का टिकट लेकर प्लेटफ़ार्म पर केशोराम ने हर एक गाड़ी में पुकारा। लेकिन फिर शाम के वक्त लाचार होकर चला आया।

आपकी बहिन—आमोदिनी

श्रीमती सावित्रीजी ने अपने ५। १२। १८ के पत्र में मुझे लिखा था:—

"पंडितजी मेरे कहने पर मुझे आमोदिनी के यहाँ पहुँचाने के लिये मुरादाबाद १० मार्च सन् १९१६ को गये थे और मेरे कारण आमोदिनी से भी वह प्रसन्न थे; लेकिन कुछ कारणों से फिर वह उसके व्यवहार से अप्रसन्न हो गये थे। मुझे भेजना भी बन्द कर दिया था।"

श्रीमतीजी ने १० अप्रैल की जगह १० मार्च भूलकर लिख दिया मालूम होता है। अस्तु पंडितजी दिन-रात के कलह से तंग आकर श्रीमतीजी को रविनगर पहुँचा आये।

आमोदिनीजी पर प्रसन्न होकर पंडितजी ने उस समय यह कविता लिखी थी: —

कली री अब तू फूल भई।
मन मधुकर बहु आश लगाये तोसों प्रेममई॥
बिकसत सुभग अंग दल प्रतिपल शिशुता झलक सिरानी।
रह्यो कछू अज्ञात तोहि जो अब ऐसी हठ ठानी॥
चार दिना को लहरि महरि है पुनि रीते के रीते।
ऐसा करहु न जो पछितावौ पाछे अवसर बीते॥
सोचि-समझि कें कीजै कारज जग स्वारथ को चेरो।
सधे लोक-परलोक याहि सों सत्य सिखावन मेरो॥

इस कविता की एक प्रति श्रीमती आमोदिनी और दूसरी श्रीमती सावित्री देवीजी के नाम भेजी गई थी।

धाँधूपुर पहुँचने के बाद पंडितजी को प्रतीत हुआ कि रविनगर पहुँचाकर हमने बड़ी भयंकर भूल की। चिट्ठियाँ भेजना शुरु कीं। जबाब नदारद! २३ अप्रैल १९१८ को श्रीमती आमोदिनी देवी ने निम्नलिखित पत्र पंडितजी को भेजा।

"श्रीमान मान्यवर पंडितजी,

नमस्ते!

आप के ३ पत्र आये। वृत ज्ञात हुआ और पढ़कर चित्त अति प्रसन्न हुआ कि आप कुशलपूर्वक घर पर पहुँच गये। आपका प्रेषित उत्तर-रामचरित्र नामक पुस्तक प्राप्त हुआ। आप की इस कृपा के लिये धन्यवाद है। अपराध तो अपराधियों से हुआ करते हैं। आपके पास तो अपराध की हवा भी नहीं निकल सकती है। हम ही अपराधी हैं कि आपके उत्तर में विलम्ब हुआ। क्षमा करें। शेष कुशल है।

आपकी भगिनी
आमोदिनी

पंडितजी ने फिर भी सावित्रीजी के नाम आने के लिये पत्र भेजा। उसके उत्तर में २७ अप्रैल को श्रीमती आमोदिनी ने पंडित जी को लिखा—"आपको किसी प्रकार घबराने की ज़रूरत नहीं है। ये भी आपका मकान है। और आने की बाबत यह है कि ये आपका मकान है। आप जब चाहे तब आ सकते हैं। बाक़ी उनके आने की बात की ये हैं कि जब को वे आने को लिख देंगी तभी आवेंगी और आप यहाँ से किसी प्रकार की इन्तज़ारी न करें।"

२४ मई १९१६ को सत्यनारायणजी को निम्नलिखित तार मिला—

"Don't Come useless cant go.

– Sawitri"

अर्थात् "मत आओ। निरर्थक है। नहीं जा सकती।

—सावित्री"

२६ मई को श्रीमतीजी ने पत्र भी भेजा। उसमें लिखा था:—

"पंडितजी, आपका पत्र मिला। उसके उत्तर में मैंने तार दिया है। शायद उससे कुछ हाल मालूम कर लिया होगा। अब पत्र भी इस विषय का भेजा जाता है। जब तक ख़ुद मेरी ही इच्छा आने की न हो आपका इसमें परिश्रम करना एक अनधिकार-चेष्टा ही समझी जायगी। × × × विशेष बात यही है। अपने आने का विचार छोड़दें।"

इसके पूर्व ५ मई के पत्र में श्रीमती लिख चुकी थीं:—

"इसमें कोई सन्देह नहीं कि जो बातें आप हम दोनों के ऊपर घटा रहे हैं वे ख़ुद की ही लिखी नहीं; बल्कि ज्वालापुर के पत्र से ही लिखी हुई हैं। और ईश्वर से अनेक बार प्रार्थना है कि वो दुष्ट विध्वंसकारी बनकर हमारी यातना को हरें और आपकी ज़बान मुबारिक हो और आपके लिखने के मुताबिक बातें ही पत्थर की लकीर हों। × × × अगर आप हमारे पिताजी की कृपा से नेत्र-बिहीन होगये हैं तो मेरे लिये ईश्वर का न्याय है। × × × विवाह होने से जकड़ी गई हूँ सो मन तो स्वतंत्र है। मुझे भगवान का डर है।"

२७ मई को श्रीमतीजी ने लिखा था:—

"आपका दूसरा पत्र मिला। उसका उत्तर आमोदिनी से न लिखाकर ख़ुद ही लिखने की तकलीफ़ उठाती हूँ। मेरे यहाँ पर

रहने में अगर आपकी बदनामी है तो इसका मैं कोई यत्न नहीं कर सकती। × × × ×

मुझे तो इस दुनिया से कूच करना है। परन्तु आप अपना नफ़ा नुकसान सोचकर कोई कार्य्य करें × × ×

× × मैं तुम्हारे स्वभाव को जानती हूँ। परन्तु सनातनी इस बात के बहुत पाबन्द हैं—"ढोल गँवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी।" आप भी तो उसी शिक्षा के माननेवाले हैं! × × × ×

मेरी इच्छा को कोई नहीं रोक सकता। मैं भी अब अपने को दुनियाँ की कोई दिन की अतिथि समझकर भविष्य के वियोगानल को सहन कर लूँगी; पर आप मुझसे कोई सुख उठाने की चेष्टा न करें; क्योंकि मेरा जन्म आर्य्य-कुल में हुआ है × × ।"

सत्यनारायणजी की गुरुबहन जानकीजी को सावित्री देवी ने लिखा था—"अब मुझे पता पड़ गया है कि ये सब मेरी जान लेने के फ़िक्र में हैं। वहाँ पर मुझे गर्मी ज्यादः सताती है। अगर मैं यहाँ गर्मियों में रहूँगी तो ज़रूर-ज़रूर मर जाऊँगी। तुम्हारे भाई की एक चिट्ठी आई है। उनसे कान खोलकर कह देना कि मेरी तन्दुरुस्ती यहाँ पर अच्छी है। वह गर्मियों में मुझे ले जाने का व्यर्थ कष्ट न उठावें। अगर वो ज़बरदस्ती करेंगे तो मैं ही ज़हर खाकर मर जाऊँगी!"

ये सब पत्र सुरक्षित हैं। स्थानाभाव से हम उनको पूरा-पूरा उद्धृत करने में असमर्थ हैं। अतएव उनके चुने हुए वाक्यों को यहाँ लिखे देते हैं।

"मेरा जन्म आर्य्य-कुल में हुआ है पर एक माता के पेट से रावण जैसा पापी, विभीषण जैसे धर्मात्मा पैदा हुए थे। मैं आर्य्य माता की पुत्री पापिनी हूँ। तभी तो गृहलक्ष्मी नहीं, पिशाचिनी होकर ही इसका चरितार्थ कर रही हूँ। कालिका पिशाचिनी सावित्री से तुम्हें अपनी जान अवश्य बचानी चाहिये' !

"मेरी इच्छा की लगाम नहीं है। इसको आप पूरा करना चाहते हैं; परन्तु लाभ कुछ भी नहीं" !

" अच्छा है अगर आप प्रेम के दावानल को बुझाने की चेष्टा न करें; क्योंकि मेरे ऊपर आज तक किसी ने ऐसा करने की सलाह नहीं दी है। बस अब अगर बुद्धि से काम लें तो अच्छा, नहीं तो "चिड़िया चुँग गई खेत पछताओ कुछ नहीं होगा"।

एक पर्चे पर लिखा हुआ है –

"जरे दीवार ज़रा झांक के तुम देख तो लो।
नातवाँ करते हैं दिल थाम के आहें क्यों कर।
दिल वो जिगर ख़ून हो चुके हैं, हवास तक अपने जा चुके हैं—
वही मुहब्बत का हौसला है, हज़ार कोड़े गो खा चुके हैं।"

किसी को भेजे गये एक पत्र में यह सारगर्भित पद्य है—

"इसी उलफ़त के कूँचे में नफ़ा पीछे ज़रर पहले,
लगावे आँख जो कोई करे जाँ का सरफ़ पहले"।

एक दूसरे पत्र में सत्यनारायण जी को ये पक्तियाँ लिखी गई थीं—

"यह प्रहार प्रेमोपहार हाँ इसी दिशा में आने दो।
कठपुतली सा हमें विवश करके भरपूर नचाने दो॥

इनका साथी बनो मुझे पर्वाह नहीं है ।

× × ×

भला मिटाये मिट सकती है जब है इतनी चाह मुझे ।

इस विचित्र विचार-प्रवाह को यहीं रोककर हम सत्यनारायणजी का २४ । ७ । १६ का पत्र ज्यों का त्यों उद्धृत करते हैं ।

श्री

धांधूपुर

२४ । ७ । १६

श्रीमती,

यथायोग्य

आपके दो पत्र मिले । उत्तर में निवेदन है कि जैसा मैं लिखता रहा हूँ उसी संकल्प पर दृढ़ हूँ। विचारे × × × जी ने कभी अनुचित परामर्श नहीं दिया और न मैं घर का वकील होते हुए उनके पास मुकद्दमेबाज़ी की सलाह लेंने गया । अभी तक इसका ज़िक्र भी नहीं है । यदि आवश्यकता पड़ी तो आप ही मेरी मुंसिफ़ हैं आप ही मेरी जज हैं। दस्त-ब-दस्ता असालतन आपके ही हुज़ूर में फ़रियाद की अर्ज़ी लेकर हाज़िर हूँगा। आपसे अच्छा और कौन हाकिम मिलेगा जिसके पास जाकर अपना दुख सुनाऊँ? न मैंने आपके पत्रों को ही उन्हें दिखाया है । दिखाने योग्य ही नहीं। और फिर दिखाने का फल ? हाँ, मैंने उन पत्रों को सुरक्षित रख छोड़ा है—आप के पाणिपल्लव का प्रथम प्रसाद है। उसकी जितनी क़दर की जाय थोड़ी। आपकी तरह फाड़ नहीं डाला है !

यदि मैंने मनसा-वाचा-कर्मणा कोई अन्याय आपके साथ किया हो तो उसके लिये मैं बारम्बार क्षमा माँगता हूँ। आपके लिखने के अनुसार जब-जब अकेले × × × जी नहीं—किसी ने भी आप के आने के विषय में पूछा सबको यही उत्तर दिया गया कि उनसे ही पूछ लो। उदाहरण के लिये कन्या-पाठशाला रावतपाड़ेवाले, जिनकी ओर से आपको पाठशाला-निरीक्षण के लिये निमंत्रण मिला था, वार बार पूछते हैं। उनसे भी यही कहना पड़ा और मेरे पास उपाय ही क्या है? × × × जी अथवा जिस किसी ने आप को जो कुछ लिखा है अपनी ही ज़िम्मेदारी पर लिखा है। आपके न्याय वा अन्याय की परिभाषा अभी तक मेरी समझ में नहीं आई। न जाने आप किसे न्याय कहती हैं और किसे अन्याय। यथासम्भव मैंने तो अब तक कोई भी विरुद्धाचरण नहीं किया है; क्योंकि आपकी मर्ज़ी के अनुसार, लाख-लाख विरोध होते हुए भी, आपको रविनगर लेगया—आपको वहीं छोड़ आया। आपने लिखा—गर्मी में नहीं 'आऊँगी'। अच्छा साहब जैसी मर्ज़ी! आपने तार दिया, पत्र लिखे कि यहाँ मत आओ। सो अभी तक आपको मुँह नहीं दिखलाया है! फिर आपका आर्डर आया कि यह भी मत पूछो कि "कब आओगी"। उसके अनुसार, चाहे मैं दुख में हूँ या अन्य बाधाओं से घिरा हुआ हूँ, वह भी नहीं पूछा! जिन आमोदिनीजी की आज्ञापालनार्थ रविनगर गया उन्हीं को कई पत्र डाले। सबके उत्तर नदारद! व्यर्थ बातों का वे क्यों जवाब दें? खैर भाई, हमने

अपराध ही ऐसा किया है ! इतने पर भी आपको अकारण ही कष्ट उठाना पड़े तो इसमें मेरा क्या वश है ? रही मेरी जान, सो उससे काम चले तो वह भी हाज़िर है। ऐसी दशा में जब आप अपनी तक़दीर को रोती हैं तो कृपया बतलाइये मैं क्या करूँ ? कभी-कभी पत्र लिख देता हूँ। यदि इसके लिये भी आप निषेध करें तो उसके अनुसार चलूँ। जो कुछ मुझे लिखना या पूछना था, पूर्व पत्रों में लिख चुका हूँ। अब अधिक लिखना व्यर्थ है। मैं भी इस जीवन से तंग आगया हूँ। जो कुछ मैंने सोच लिया है उसे समाप्त करते-करते यह शरीर ही नहीं रहेगा ! और यदि मौत आगई और यह बचरहा तो शीघ्र ही यहाँ से × × ×। फिरआपकी प्रार्थना अपने आप ही × × × ×। इसलिये आप को अपने अमूल्य प्राणों को संकट में डालने का प्रयोजन नहीं है, और न प्रत्येक पत्र में इस मंत्र के लिखने की आवश्यकता है। इस समय मेरा शरीर अच्छा नहीं है। चौदह या पन्द्रह दिन से आम.खून के दस्त हुए ही चले जाते हैं और ३ दिन से दूसरी आँख भी दुखने आगई है। दर्द के मारे बेचैन हूँ। ऐसी दशा में मैंने कुछ अनुचित लिखा हो उसके लिये क्षमा प्रदानार्थ पुनः प्रार्थना है। जिसमें आपका लोक परलोक सुधरे, आत्मगौरव बढ़े एवं भविष्य समुज्वल हो वही करिये। आपके विषय में कुशल पूछने के लिये,आपको यथोचित साहाय्य देने के लिये, ही यदि आवश्यकता हो, मेरा ईश्वर दत्त अधिकार है, आप पर लट्ठ चलाने के लिये नहीं, और आपको अदालतों में घसीटकर व्यथित करने के लिये नहीं। आप चाहे जो कुछ करें; किन्तु मुझे अपना दायित्व (फ़र्ज़) मालूम

है। सात्तरा होकर मेरी प्रकृति राज्ञसा नहीं बनेगी। हाथ गहे की लाज से अथवा दुनिया के लिहाज़ से क्या मैं आपसे आशा करूँ कि आप मेरी इस व्यथित एवं विपन्नावस्था में कटु तथा तीव्र पत्र लिखने की कृपा न करेंगी और अब भी अपनी असीम इच्छा को स्पष्ट (साफ़-साफ़) शब्दों में लिखकर अनुग्रहीत करेंगी।

अन्त में आपको परमपिता परमात्मा की क़सम खिलाकर प्रार्थना करता हूँ कि आप मेरे इस पत्र को सुरक्षित रक्खें और इसे पढ़कर इस पर यथोचित ध्यान दें। व्यर्थ ही कूड़े की टोकरी में न डाल दें, न इसे फाड़ें और न इसे चिराग़अली के सुपुर्द करें। आशा है, आप स्वीकार करेंगी।

ठकुरिया का कागज़ कहाँ रक्खा है? सूचित कीजिये। सम्भव है उससे रुपये मिल जायँ।

सब को प्रणाम।

आपका

सत्यनारायण

इस पत्र का जो उत्तर श्रीमती सावित्री देवी ने ३ अगस्त १९१९ को दिया था वह ज्यों का त्यों उद्धृत किया जाता है।

ओ३म

ता० ३—१९१९

पंडितजी,

तुम्हारा प आया। आपने जो लिखा है कि विचारे ने न कभी अनुचित परामर्श दिया उनके दो लम्बे चौड़े तख़्ते

लिखे हुए मेरे पास आये हैं जिनमें मेरी बुराई अख़बारों में छपाने तक की धमकी दी है। अपने घर के ख़ाली प्रेस में दूसरों की लड़कियों की बुराई छापने का घमंड है। जो अपनी बेटी-बहिन की इज़्ज़त का कुछ भी ख़्याल नहीं करते उनके ही दिमाग़ में ऐसे तुच्छ विचार पैदा होते हैं। मैं नहीं चाहती क उनसे पत्र-व्यवहार करूँ। और उन्होंने लिखा है कि मेरी स्त्री ने तुमको पतिव्रता के बारे में उपदेश दिया था, सो तुमने घर जाकर हँसी उड़ाई। मैंने तुमसे कहा था कि वे ऐसा कहती थीं। अगर वो पतिव्रता होंगी तो अपने लिये होंगी। वे स्त्री-पुरुष जुदे रहें या मिल के रहें, मैं उन्हें शिक्षा देने नहीं जाऊँगी। इसलिये मैं नहीं चाहती कि वो मेरी किसी बात में बाधा डालें। अगर वो या तुम सब इस बात में ही पक्के हो तो तुम्हारी इच्छा। परन्तु मेरा कुछ नहीं बिगड़ सकता। और ये भी लिखा था कि जब उनसे कुछ ज़िक्र आता है तो आंखों में आँसू भर लाते हैं। सच पूछो तो मैं तो पतिव्रता हूँ नहीं, न मुझसे आगे को आशा रक्खें। और इससे अच्छा भला और क्या है कि आपको ऐसी दशा में ज़रूर पतिव्रता ढूंढ़नी चाहिये जिससे मेरे दारुण दुःख दूर हों, और मेरी जान बचे। और आपने जो लिखा है कि दस्त-ब दस्त असालतन आप के ही हज़ूर में फ़रियाद की अर्ज़ी लेकर हाज़िर हूँगा तो तुम तो स्वतंत्र हों। पर हाँ, स्वतंत्र तो मैं भी हूं; परन्तु तुमने और तुम्हारे मित्रों ने मेरी जान लेने के लिये परतंत्र अपनी बुद्धि में समझ रक्खा है। इससे ज्याद:मुझे और क्या दुःख होगा कि रात; दिन

यही चिन्ता रहती है कि किस वक्त वो सब जान लेने के लिये यहाँ आजावें ! लेकिन बड़े दुःख की बात है कि हरेक पत्र में इतना खुलासा करके लिखती हूँ और किसी की जान नहीं लेती। सिर्फ़ अपनी जान बचाने के लिये तुमको लिख दिया था लेकिन चारों तरफ़ आप सबों के पत्रों की बौछार होरही है। तुमने जो लिखा है कि इस विषय में आज अधिक नहीं लिखूँगा ? थोड़ा तो इतना लिखा जाता है, ज़्यादा और कितना होगा ? न जाने परमात्मा इन चिट्ठियों का कब अन्त करेगा ! उसकी बड़ी ही दया समझो तो मुझको अपनी ज़िन्दगी में पत्रों की बौछार बन्द हो । पर हाँ, ये तो मैं जानती हूँ कि मेरे मरने के बाद सबके काग़ज़ कलमों को विश्राम लेना पड़ जायगा और आपकी त्रिवेणी जो बह निकली है सो मुझको खाकर द्विवेणी बहती रहेगी। सो वो तुम्हारे कर्म्मों का फल है। द्विवेणी को मैं दूर नहीं कर सकती। अपनी जान खोकर त्रिवेणी का एक हिस्सा दुख दूर कर सकती हूँ। बाक़ी नहीं। आप मेरे पास पत्र न डालें तो मैं तीव्रकटु पत्रों की बौछार क्यों करुँगी ? मैं तो जो भी लिखती हूँ वो सच ही लिखती हूँ। मैं कटु शब्द नहीं लिखती और असीम इच्छा को स्पष्ट शब्दों में लिखकर अनुग्रहीत ही करती हूँ कि आप मुझसे किसी प्रकार की आशा न रक्खें और मेरी जान मुझको बख़्श दें । अगर ये बात तुम्हारी समझ में नहीं आती और बार-बार हरेक ख़त में यही लिखा आता है कि तुम्हारी इच्छा क्या है सो मैं तो लिख चुकी । इसके विरुद्ध चलकर आप मेरी जान के गाहक बनेंगे, बस यही

होगा। दुनियाँ में हजारों पुरुष हैं जो बड़े-बड़े उपकार करते हैं। आपने मेरी जान लेने को ही उपकार समझ रक्खा है। अच्छा है भविष्य विषयक जो धारणाएँ हैं, या जो आप सबों ने भविष्य में करने के लिये विचार रक्खी है, ये सब जीते जी के झगड़े हैं। और अच्छा है, आप सबों की इच्छा इसी में है कि जान लेनी चाहिये। ईश्वर तुम्हारी इच्छा को पूरी करे। ठकुरिया का तमस्सुक तुम्हारी बहिन जानकी ने उससे लेकर रक्खा है, मेरे पास नहीं है। इस महीने में या और महीनों में मेरा कोई मतलब भेजने का (पत्र भेजने का ?) नहीं है। तुम भेजो या मत भेजो। मैं तो छुटकारा पाचुकी।

हस्ताक्षर सावित्री

यह बात ध्यान देने योग्य है कि पंडितजी ने अपने पत्र में लिखा था:—"इस समय मेरा शरीर अच्छा नहीं है। चौदह या पन्द्रह दिन से आम.खून के दस्त हुए ही चले जाते हैं और ३ दिन से दूसरी आँख भी दुखने आगई है। दर्द के मारे बेचैन हूँ। और पत्र के अन्त में प्रार्थना भी की थी कि "हाथ गहे की लाज से अथवा दुनिया के लिहाज़ से क्या आपसे आशा करूं कि आप मेरी इस व्यथित एवं विपन्नावस्था में कटु तथा तीव्र पत्र लिखने की कृपा न करेंगी ?" श्रीमतीजी ने उनकी प्रार्थना कहाँ तक स्वीकृत की, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। उन्हीं दिनों सत्यनारायणजी ने निम्नलिखित पद्य बनाया था।

परेखौ

परेखौ प्रेम किये को आवै ।
कहा कहें मन मूढ़ बड़ो यह जो तुम्हरे ढिंग जावै ॥
होतो बात हमारे बस की कबहुँ न लेते नाम ।
पानो पी पी सदा कोसते तुमको हे घनश्याम ॥*
जो चाहत तुमको निसिबासर प्रेम प्रमत्त अपार ॥
ताके संग अनोखो ऐसो करत आप व्योहार ॥
सुनत रहे जो मुख अनेक सों अनुभव में अब आई ।
ऊँची बड़ी दुकान तिहारी फीकी बनै मिठाई ॥
तन मन धन सर्वस्व निछावर करै जो तुम्हरे हेत ।
त के बँट निर्दयता ऐसी ! कैसे दयानिकेत ?
चितवत नित चकोर से तुमको लखि पावत आनन्द ।
तिनको तुम नित नये जरावत भले भये ब्रजचन्द ॥

इत्याद

ता० २० । ६ । १६ को सत्यनारायणजी ने निम्नलिखित पत्र श्रीयुत विश्वेश्वरदयाल चतुर्वेदी के पास, जो उस समय मध्यप्रदेश में थे, भेजा था ।

---

*यह पंक्ति हृदय-तरंग में इस प्रकार लिखी है—
करतो चाहे जगत भले ही कितनौ हू बदनाम ॥

श्री

आगरा
२०।६।१६

भगवन्,

नमोनमः

प्रथम पत्र पुनः कृपा-कार्ड प्राप्त हुआ। आप सब जानते हैं इसलिये क्षमा माँगने का प्रयोजन नहीं है। आपको अमरावती जाना पड़ा था और यहाँ × × × जाना पड़ा था ! आपने झरनों का दर्शन किया और यहाँ झरनों को निर्झरित किया है ! कैसा विचित्र साम्य ! इस सबके सब दुःख को वर्षा देखती है; किन्तु निस्सहाय की भाँति चपल नयनों को चुरा लेती है। जानती है किन्तु अपने कामों को रोक नहीं सकती। इसलिये "वापुरी" है। जाना था उसे सहृदया किन्तु निकली जड़ की जड़ ! इसलिये "वापुरी" है। जो दूसरों के दुःख के साथ दुःखित नहीं हो सकती उसकी दशा Pitiable *है। इसलिये "वापुरी" है। विचारी आँसू बहाती हुई नाचार है इसलिये "वापुरी" है। × × × × × × × ×। कभी प्यारे घनश्याम से किसी गोपी ने कुछ पूछा था। × × × उस जले-जलाये ने उसे "वापुरी" कहकर उत्तर दिया होगा— × × ×। बतलाइये, यह सब कुछ क्यों हो गया ? क्या

---

* Pitiable का अर्थ है करुणा की पात्र। —लेखक।

जान-बूझकर बन गये ? या ऐसी अवस्था का प्रलयोन्मुखी होना अवश्यम्भावी है ?

यदि कभी सम्भव हुआ तो आपकी मनोबोधिनी मोहनी मयूर-मालामयी सरस घनश्यामला झरनोन्मुखी उत्तंग-स्थिता कुटी में प्रवेश करने का संकल्प – प्रयास – किया जायगा। शेष फिर कभी।

देर में निवेदन करने के लिये क्षमा !

'चतुर्वेदी" के लिये लेख नहीं भेजा ?

आपका—

सत्यनारायण

"जाना था उसे सहृदया किन्तु निकली जड़ की जड़ !" इन शब्दों में सत्यनारायणजी के गृह-जीवन की सारी कथा का सार आ गया है।

२५।४।१६ को सत्यनारायणजी ने आगरे में एक काग़ज़ पर कविता लिखना प्रारम्भ किया था –

"भेड़ जो लाये ऊन को चरने लगी कपास'

उन्हीं दिनों पण्डितजी के एक घनिष्ट मित्र ने पं० पद्मसिंहजी शर्मा को लिखा था—

श्रीमान पं० पद्मसिंहजी,

प्रणाम

छोटी लड़की "खेल-तमाशा" में से पढ़ रही थी: –

आरे सुग्गा आरे सुग्गा बैठ हाथ पर आ मेरे।
अच्छी चीजें छोड़ के कैसे वृक्ष पसन्द हुआ तेरे!
रोज़ तुझे हम ताजे-ताजे मेवे फल खिलवावेंगे।
दाख-चिरौंजी जामन लीची बेर का मज़ा चखायेंगे॥

परन्तु दाख-चिरौंजी को छोड़ और तिरस्कार करके सुग्गा का जवाब है :—

हे मेरी प्यारी लड़की है प्यार बड़ा बेशक तेरा।
पर इस जङ्गली वृक्ष ने कैसा मोह लिया है मन मेरा॥
इसके ही कारण मैं नित स्वच्छन्द विचरता चरता हूँ।
पिंजड़े का कुछ ख़ौफ़ नहीं है उदर मौज से भरता हूँ॥

अनवारसहेली के सिद्धान्तानुसार "स्वच्छन्द विचरना" दाख-चिरौंजी से कहीं अच्छा प्रमाणित हुआ और यही स्वच्छन्दता हमारे पंडित सत्यनारायणजी के हाथ से, ज़माने के फेर ने, छीन ली। उस के कारण जो कष्ट समय-समय पर पंडितजी अनुभव कर रहे हैं वह छुपा नहीं है। पं० किशोरीलाल व देवकीनन्दन खत्री इतने पर ही तो उपन्यास-गढ़ रच डाला करते थे। अजब कशमकश में डाल रक्खा है! और जो कुछ व्यथा और चिन्ता अष्ट प्रहर लगी रहती है—वह मन विदानम व विदानम दिलेमन × × × ×।

पण्डितजी से आप कहें जितने शीशे नेत्र-जल के भरवाकर "स्नानं समर्पयामि" के लिए भेज दिये जावें। × × × पंडितजी का कष्ट अधिक नहीं देखा जाता!"

उसी समय "झरनों को निर्झारित" करते हुए सत्यनारायणजी के "व्यथित एवं विपन्न" हृदय से यह ध्वनि निकली थी:—

भयो क्यों अनचाहत को संग ।
सब जग के तुम दीपक मोहन, प्रेमी हमहुँ पतंग ॥
लखि तव दीपति-देह शिखा में निरत बिरह लौ लागी ।
खिँचति आपसों आप उतहिं यह ऐसी प्रकृति अभागी ॥
यदपि सनेह भरी तव बतियाँ, तऊ अचरच की बात ।
योग बियोग दोउन में इक सम नित्य जरावत गात ॥
जब जब लखत तबहिं तव चरनन, वारत तन मन प्रान ।
जासों अधिक कहा तुम निरदय, चाहत प्रेम प्रमान ॥
सतत घुरावत ऐसो निज तन, अन्तर तनिक न भावत ।
निराकार ह्वै जात यहाँ लों तउ जनकों तरसावत ॥
यह स्वभाव को रोग तिहारो हिय आकुल पुलकावै ।
सत्य बताबहु का इन बातनि, हाथ तिहारे आवै ॥

जब आपने अपनी यह कविता चतुर्वेदी देवीप्रसादजी एम्० ए० को सुनाई तो चतुर्वेदीजी ने कहा —"विवाह के बाद हम तो आपके मुख से कोई श्रृङ्गारमय कविता सुनने की उम्मेद करते थे और आप यह बनाके लाये हैं —' भयो क्यों अनचाहत को संग !"

उन्हीं दिनों आपने अपने मित्र जीवनशंकरजी याज्ञिक एम्० ए० को लिखा था कि सूरदास का पद "कुसमय मीत काको कवन" भेज दीजिये। याज्ञिकजी ने पद भेजते हुए लिखा था "क्या मैं समझ गया हूँ कि आपको यह पद किसके लिये मँगाना पड़ा है ?'—

यहाँ पर एक बात और लिख देना आवश्यक है। वह यह कि श्रीमती सावित्री देवीजी आमोदिनी को जो पत्र भेजती थीं उनका कुछ भाग हिन्दीलिपि और कुछ गुरुमुखी लिपि में होता था। हिन्दी लिपि मे तो साधारण सी बातें होती थीं और गुरुमुखी में न जाने क्या-क्या लिखा रहता था! सत्यनारायणजी ने गुरुमुखी के इन पत्रों का अन्वेषण किया था और उनमें निकला था—"दुष्ट मुकुन्द का सत्यानाश।"

इस नाजुक और दुःखद विषय पर अधिक प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं। सम्भवतः इस पत्र-व्यवहार के पढ़नेवाले कई सज्जन सत्यनारायणजी को बेहद नर्मी व कमज़ोरी का अपराधी वतलावेंगे और कुछ अंशों में उनकी यह सम्मति युक्तिसंगत भी होगी; पर जो लोग सत्यनारायणजी के कोमल स्वभाव को अच्छी तरह जानते थे उनके हृदय में सत्यनारायणजी के प्रति सहानुभूति ही उत्पन्न होगी।

सत्यनारायणजी के प्रति जो हृदयहीनतापूर्ण व्यवहार हुआ था उसका कारण ढूँढ़ते ढूँढ़ते हमारे हाथ श्रीमती सावित्री देवी के नाम का सुख-संचारक-कम्पनी मथुरा का ४।३।१६ का निम्नलिखित कार्ड पड़ गया—

वी० पी० विभाग सुख संचारक को

पारसल नं० १९५७ ४।३।१६ मथरा

आपकी सेवा में आज्ञानुसार नीचे लिखे हिसाब से माल भेजा

है। कृपा करके क़ीमत देकर ले लीजिये। यदि पारसल पहुँचते समय रुपया पास न हो या कोई हिसाब में भूल हो तो पारसल को वापिस न करके डाकख़ाने में अमानत (डिपाजिट) रखवाकर हमसे पूछिये। ऊपर लिखा नम्बर और तारीख़ अवश्य लिखिये।

नाम चीज	रु०	आना
१ प्रेम का परिणाम		-)
१ हास्य-मंजरी		।)
१ एक रात में ४७ .खून		-)
१ तड़फती मछली		।)
१ किशोरी नरेन्द्र		≡)
१ यारों की यारी		=)
१ फूलसिंह डाकू		=)
	१	-)
पारसल बनाने का ख़र्च		≡)
मनिआर्डर ख़र्च		-)
		१।) कुल

पताः—

श्रीमती सावित्री देवी

C/o सत्यनारायणजी कविरत्न

धाँधूपुरा, ताजगञ्ज

आगरा

हमने भी इन पुस्तकों को मँगाया। पहले तीन तो मिलीं, पिछले चार ग्रन्थ रत्न स्टाक में थे नहीं। बड़ी उत्सुकता के साथ हमने "एक रात में चालीस ख़ून" पढ़ना प्रारम्भ किया। सुन लीजिये—

। ओ३म् ।*

एक रात में चालीस ख़ून।

अहह! क्या तुम जानते हो मैं किस मिट्टी की बनी हूँ? अगर मेरा नाम गुलेनार है तो तुम देख लेना कि मैं क्या करती हूँ। क्या रहमान तुम मेरे साथी बन सकते हो? याद रखो, अगर तुमने मेरा साथ दिया तो मैं तुमको ख़ुश कर दूँगी। नहीं मैं तुम्हारी जान की भी गाहक हो जाऊँगी।

रहमान—क्या तुम इस नाचीज़ सल्तनत के लिये अपने शौहर की जान लोगी? क्या तुम्हारी इच्छा मलका बनने की है?

गुलेनार—ज़रूर-ज़रूर, उसके बुरे बर्ताव का फल उसको चखाये वगैर नहीं रहूँगी।

रहमान—मेहरबान, आपके साथ उन्होंने क्या बुरा बर्ताव किया है जिसका बदला तुम जान से चुकाओगी?

गुलेनार—मुझे इस वक्त कुछ कहने का मौक़ा नहीं हैं। इस वक्त तो केवल तुम मरते दम तक मेरे साथ होना चाहते हो?

रहमान—मुझे आपकी बातों में कब उजर है। मैं बसरोचश्म

*'ओ३म्' बिचारा भी कहाँ आकर फँसा है!—लेखक।

आपके कहने के मुताबिक आपके साथ अपनी जान देने को तैयार हूँ।

गुलेनार (हंसकर)—मुझको तुमसे जैसी उम्मेद थी तुमने वैसा ही जबाब दिया है। क्या तुमने जो कुछ कहा, वह सच कहा?

रहमान—क्या मैंने आज तक कोई बात आपसे झूठी कही है? जिस वक्त जो हुक्म आप फ़रमावेंगी, बंदा उसी वक्त उसकी तामील करेगा।

गुलेनार ने रहमान को इस तरह अपनी ओर कर एक रात को मौक़ा पाकर अपने शौहर के खाने में ज़हर मिला दिया।

खाना खाने के बाद जब खुरशैदअली—गुलेनार का शौहर—बाहरवाले महल में जाने लगा, तब ही लड़खड़ाकर ज़मीन पर गिर पड़ा और थोड़ी देर बाद मुँह से झाग देने लगा...इत्यादि

पुस्तक हमने जहाँ की तहाँ रखदी और सोचने लगे-ऐसी पुस्तकों से क्या लाभ? इनसे क्या शिक्षा मिल सकती है? इनका पाठकों और पाठिकाओं पर क्या प्रभाव पड़ेगा? अस्तु, विषयान्तर हुआ जाता है। इन पहेलियों को सुलझाना तो साहित्य-समालोचकों का कर्त्तव्य है। हम तो यहाँ जीवन चरित्र लिख रहे हैं। हमैं इनसे क्या प्रयोजन? इस अप्रिय विषय को यहीं छोड़िये और मेरे साथ कोरे सत्य-ग्राम के बासी के अन्तिम दिवस और मृत्यु का हृदय-वेधक वृत्तान्त पढ़िये।

अन्तिम दिवस और मृत्यु

ब्राह्मण-स्कूल में शिक्षा का काम



स समय विवाह के लिये पत्र-व्यवहार हो रहा था उस समय सत्यनारायणजी ने श्रीयुत मुकुन्दराम जी को एक पत्र में विवाह के प्रस्ताव का विरोध करते हुए लिखा था—"स्वतंत्र जीवन ही मेरा जीवन है। नौकरी-चाकरी कभी की नहीं।" विवाह के बाद सत्यनारायणजी को नौकरी करनी पड़ी; क्योंकि मन्दिर से जो ज़मीन लगी हुई थी उससे कुल ३००) रु० साल को आमदनी होती थी। जब अपनी मृत्यु के पहले मुकुन्दरामजी फीरोज़ाबाद आये थे तो उन्होंने मुझसे कहा—"मेरी पुत्री ने पंडितजी से कहा था कि जो चीज़ ठाकुरजी की है उसे मैं नहीं खाने की। इसलिये उन्हें नौकरी करनी पड़ी।"

ता० ८ जुलाई सन् १६२६ को सत्यनारायणजी ने निम्न लिखित प्रार्थना-पत्र ब्राह्मण स्कूल के सेक्रेटरी के पास भेजा था—

To,

The Secretary,

Brahman School

AGRA.

Sir,

Hearing that services of an under graduate are required in your School. I offer myself for the same.

As for my qualifications I read not say much. My work will show itself.

Hoping my request to be considered favourably.

Yours obediently,

Dated 8—7—1916. *Satyanarayan*,

(Dhandhupur.)

इस प्रार्थना-पत्र पर ब्राह्मण-स्कूल के सेक्रेटरी श्रीयुत गीताराम दीक्षित ने यह आर्डर दिया था—

Appointed as an Assistant Master on Rs. 25—p. m. from 1st August 1916 on probation of six months where after to be confirmed on the promise of serving school at least for two years."

इसके साथही साथ सत्यनारायणजी को निम्नलिखित पत्र भेजा गया था :—

श्रीमान सत्यनारायणजी को ज्ञात हो कि ता० २३ जुलाई सन् १९१६ ई० के प्रस्तावानुसार आप ६ माह की जाँच पर २५) मासिक वेतन पर ब्राह्मण-स्कूल आगरे में असिस्टेण्ट मास्टर नियत हुए हैं। कृपया कम से कम दो साल की स्कूल सेवा की स्वीकारी भेजियेगा, जिससे कि ६ माह बाद आपकी मुस्तक़िली का प्रस्ताव पेश किया जावे।

गीताराम दीक्षित

मंत्री

सत्यनारायणजी ने इसके उत्तर में लिखा था--

"कृपा-पत्र मिला। ब्राह्मण-स्कूल की सेवा करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। सेवा की अवधि दो साल की हो अथवा अधिक; किन्तु मेरे जीवन के निर्दिष्ट मार्गानुसरण में यथासम्भव कोई विघ्न-बाधा उपस्थित न होनी चाहिये। आपकी सेवा में बस यही मेरा नम्र निवेदन है।"

आपका—

सत्यनारायण

इस प्रकार बी० ए० तक पढ़े हुए सत्यनारायणजी जैसे विद्वान को २५) रु० मासिक की नौकरी! सो भी बतौर जाँच के दीगई! इसपर टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं। बात असल में यह है कि सत्यनारायणजी इस क्रय-विक्रय-मय संसार के सर्वथा अनुपयुक्त थे।

मालती-माधव की समाप्ति

दिसम्बर १९१७ के प्रारम्भ से ही सत्यनारायणजी "मालती-माधव" के अनुवाद-कार्य्य को पूर्ण करने में लगे हुए थे। इन्दौर-साहित्य-सम्मेलन के साहित्य-विभाग से भेजे गये एक पत्र के उत्तर में उन्होंने २ फ़र्वरी सन् १९१८ को लिखा था—

"आजकल मैं "मालती-माधव" नाटक को हिन्दी-अनुवाद करने में व्यस्त हूँ, जो इसी अवसर पर निकल जाना चाहिये;

क्योंकि पंजाब-विश्वविद्यालय में उसके नियुक्त होजाने से अब अधिक विलम्ब करना दुस्साहस होगा। इसलिये शंका है कि उक्त कारणवश निर्दिष्ट निबन्ध को तैयार कर यथासमय उपस्थित करने का कदाचित ही मुझे अवकाश मिले। आशा है, मेरी वर्तमान स्थिति पर ध्यान देते हुए आप मुझे क्षमा करेंगे।

हाँ, मुझसे भी कहीं अधिक अच्छे झालरापाटन के पूज्य मित्र पं० गिरिधर शर्मा हैं। वह उक्त विषय पर अत्यन्त सुन्दर व रोचक लेख लिख सकते हैं। इस कारण उनके साहित्य के उन्नत परिज्ञान से लाभ उठाने के लिये आपकी सेवा में सादर सानुरोध प्रार्थना है"।

७ फर्वरी को सत्यनारायणजी ने अपने मित्र डाक्टर लक्ष्मीदत्त(फीरोज़ाबाद) को लिखा था :—

"सिड़ीमती आजकल हरिद्वार हैं। जब उनका पत्र आया है तब उसमें उन्होंने अपनी तबियत ठीक ही बताई है। हाँ, यहाँ आने पर यदि उन्हें, जैसी आशा है, रोग ने ग्रसा तो आपको अवश्य कष्ट दूँगा। आजकल "मालती-माधव" नाटक पर पिलाई है और आप के चरणों की कृपा से ,लगभग समाप्तप्राय हो चुका है। आशा है कि एक सप्ताह में अनुवाद कार्य्य हो चुकेगा। आपका उत्तर-रामचरित और मालतीमाधव दोनों Punjab University की क्रम से High Proficiency and Honurs Examinations में prescribed होगये हैं। इस हेतु आपको तथा श्रीमान्भवन को बधाई"।

इसीदिन सत्यनारायणजी ने पं० पद्मसिंहजी शर्म्मा को लिखा था—"गत दिसम्बर के प्रारम्भ से ही मैं आपके "मालती माधव" में लगरहा था। साधारणतया जैसे-तैसे उसे आज समाप्त कर पाया है। यथासम्भव भाषा का सुधार भी किया गया है। एक प्रकार से उसे गढ़ दिया है। अब जड़ने का अथवा विविध प्रस्तावों द्वारा उसमें अभिनवत्व लाने का कार्य आप के लिये अलग रख दिया है। एक बार उसे और देखलूँ, फिर आपकी सेवा में भेजने का यत्न किया जाय। आशीर्वाद दीजिये जिससे इस दुस्तर कार्य्य से शीघ्र निस्तार मिलै"।

इसके उत्तर में पद्मसिंहजी ने लिखा था। "मालती-माधव" की आप पुनरालोचना कर गये। बहुत अच्छा हुआ। मैं उसे फिर आद्योपान्त एक बार आपसे सुनना चाहता हूँ। कोई ऐसा मौक़ा मिले कि श्री पं० शालग्रामजी, बन्दा और हज़ूर सब एक जगह ४-५ दिन के लिये इकट्ठे होसकें तो ठीक काम बने। क्या आप इन्दौर-सम्मेलन में जायँगे?

श्रीमती सावित्रीदेवीजी के नाम पत्र

ता० ११।२।१८ को रात के बारह बजे सत्यनारायणजी ने श्रीमती सावित्री देवी के नाम जो पत्र लिखा था, वह देवीजी के पास सुरक्षित था। उन्होंने मुझे वह पत्र दिखलाने की कृपा की थी। उसमें लिखा था—

११—२—१८

अन्धेर कैसा कर रहो है बेवफ़ाई आपकी।
चार दिन की चाँदनी थी × × आपकी॥
ख़याले ख़ाम है अपनों से फ़ायदा पाना।
सदफ़ के काम किसो दिन गैाहर नहीं आता॥
अजल ख़फ़ा है और फ़लक मुद्दई ज़िमी दुश्मन।
कोई ज़माने में अपना नज़र नहीं आता॥
करूँ मैं दुश्मनी किससे, कोई दुश्मन भी हो अपना।
मुहब्बत ने जगह छोड़ी नहीं दिल में अदावत की॥

आपका दर्शनाभिलाषी—
सत्यनारायण

मेरे नाम पत्र

ता० १२ फ़र्वरी १९१८ को सत्यनारायणजी ने मेरे नाम निम्नलिखित पत्र भेजा था—

१२।२।१८
ब्राह्मण-स्कूल

श्रीयुक्त भाई बनारसीदासजी,
पालागंन

आज ११ दिन पीछे आपका कृपा-पत्र श्री पाठकजी से मिला है। हाँ, पूर्णानन्दसिंहजी (सम्पूर्णानन्दजी ?) का एक पत्र आया था। उसका मैंने उसी समय उत्तर दिया था। आपका क्या, समग्र

चतुर्वेदी जाति का,यह शरीर चिरऋणी है। जिस पैतृक प्रेम से आप लोग मेरे साथ बर्ताव कर रहे हैं उससे उऋण होना इस जन्म में तो कठिन है। उऋण होने से यदि सम्बन्ध टूटने की बात हो तो मुझे वह उऋण सोने का भी नहीं चाहिये।

आपके पत्र से ज्ञात—विश्वास--हुआ कि 'हृदय-तरंग' इस संसार में उठ सकेगा; क्योंकि × × ×। इसमें अतिशयोक्ति नहीं है। यह इस ग्रामीण हृदय का सच्चा नैसर्गिक उद्गार है। इसी से ऊपर कहा है कि जो आपके द्वारा संग्रहीत हुआ है, जिसे आपका अवलम्ब मिला है वह अविलम्ब ही अवश्य २ प्रकाशित हो। यद्यपि आपको नहीं चाहिये, (वह) आपकी कीर्ति-कौमुदी से, दिशाओं को मुग्ध करैगा, इसमें एक अक्षर भी मिथ्या नहीं।

अस्तु, जब चाहें आप तब उसे भेज सकते हैं। सेवा करने के लिये हर समय तैयार हूँ।"मालती-माधव" एक प्रकार से समाप्तप्राय होचुका है। किसी सहृदय द्वारा उसकी पुनरावृत्ति होना परमावश्यकीय है। देखें, किसे ईश्वर भेजे। पीछे छपने का प्रबन्ध हो सकेगा।

श्रीमान गान्धीजी की प्रशंसा में या आपकी ओर से स्वागत विषय में तुकबन्दी करनी पड़ेगी, यह कृपया एक कार्ड द्वारा और सूचित कर दीजिये।

---

* यहाँ पर सत्यनारायणजी ने लेखकके विषय में कुछ ऐसी अत्युक्तिमय प्रशंसात्मक बातें लिखी थीं जिनका उद्धृत करना अनुचित प्रतीत होता है।
—लेखक

यदि इसका शरीर निरोग—चलने फिरने लायक भी—रहा तो यथासम्भव अवश्य आप लोगों की सेवा में पत्र-पुष्प लेकर उपस्थित होने की प्रबल इच्छा है। भगवान विपिनविहारी से प्रार्थना है कि वह उक्त इच्छा को पूर्ण करें। सब प्रेमियों को प्रणाम !

आपका —
सत्यनारायण

आज मैं प्रयागराज जा रहा हूँ। यदि आप उचित समझें तो अधिकारी जगन्नाथदास विशारद विरक्त मन्दिर, भरतपुर से अथवा चित्रमय जगत के भूतपूर्व सम्पादक से लिखा-पढ़ी करें। मुझे तो वह ठीक-ठीक उत्तर ही नहीं देते।

स० ना०

श्रीसावित्री देवी तथा उनकी माता नारायणी देवी के नाम पत्र

ता० ८ मार्च को सत्यनारायणजी ने निम्नलिखित पत्र श्रीमती सावित्री देवी जी के नाम भेजा था—

श्रीमती

यथायोग्य

आपने लिखा था कि अपनी कुशलता लिखना। यकायक दो दिन से तबियत ख़राब होगई है—दस्त होने लगे हैं—ऐसी ही दशा रही तो खाट पर लेटना पड़ेगा। जानकी का सिर चक्कर खाने लगा है।

विचारी गिर पड़ी। उसके कई जगह लग गई है। जो एक बार भी खाना मिलता था वह भी नसीब होने की कम सम्भावना है। पुस्तक प्रेस में है, इसलिये शहर आना पड़ता है। द्वारिका घर गया है। मेरी ही सब तरह आफ़त है - घर-बाहर जहाँ देखो वहाँ घबड़ाया सा फिरता हूँ। इसलिये यदि आप अपना और मेरा हित चाहती हो तो तुरन्त पत्र लिखते ही उत्तर-स्वरूप स्वयं किसी विश्वस्त पुरुष के साथ नानाजी हों वा कुन्दन हों, यहाँ चली आइये। आपको यह सब यों लिखदिया है कि आप कहतीं कि मुझे सूचना न दी। इससे अधिक विपत्ति मुझ पर कभी न आवेगी। आप के घबड़ाने के डर से तार नहीं दिया है। इसी कार्ड को तार समझना।

आपका —

सत्यनारायण

श्रीमती नारायणीदेवीजी के नाम निम्नलिखित पत्र उन्होंने लिखा था—

श्रीमती परमपूजनीय माताजी,

प्रणाम

यकायक तबियत ख़राब होगई है। कल से कई बार शौच भी गया हूँ। यदि ऐसा ही हाल रहा तो जल्दी खाट में गिरने का अन्देशा है। बहिन जानकी का दिमाग़ घूमने लगा है। विचारी गिर पड़ी। इधर पुस्तक प्रेस में है। द्वारिका अपने घर गया है। जानकी के बीमार होने से एक दफ़ा भी गति से भोजन नहीं मिलता। बीमारी की वजह से

बाजार का खाने से परहेज़ करना पड़ता है। इस प्रकार बेबश होकर आपकी सेवा में सविनय निवेदन है कि आप कृपाकर मेरी वर्तमान स्थिति पर विचार करती हुई सावित्रीदेवी को किसी विश्वस्त पुरुष के साथ यहाँ भेज दें। उसके दोनों तरफ़ का किराया यहाँ भेज दिया जायगा। यदि आप मेरा हित चाहती हैं तो कृपया इस पत्र के उत्तर-स्वरूप में उन्हें यथासम्भव शीघ्र भेज दें।

आपका—

सत्यनारायण

देवहुती रमेश को प्यार और सब को नमस्कार।

आशा है, अब आश्रम में आप कार्य करने लगी होंगी।

१६।३।१८ को सत्यनारायणजी ने मुझे अपने पत्र में लिखा था—"यहाँ पर प्लेग का बड़ा ज़ोर है। अवसर पर जैसा बन पड़ेगा वैसा सेवा में उपस्थित होने के विषय में देखा जायगा। "मालती-माधव" आधा छप रहा था कि प्लेग के कारण विचारा प्रेस ही बन्द होगया। जब छप जायगा, सेवा में भेजूँगा। जब आप छुट्टी पर यहाँ आयँगे तब हृदय-तरंग तैयार हो जायगी। सम्भव है कि आप की सेवा में कुछ तुकबन्दी दो चार दिन में भेज सकूँ। पोस्ट से अथवा पं० रामरत्नजी के हाथ।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन इन्दौर

२० मार्च को श्रीयुत पं० केदारनाथजी भट्ट का लखनऊ से भेजा हुआ पत्र सत्यनारायणजी को मिला, जिसमें उन्होंने लिखा था—

"सम्मेलन-सेवी इन्दौर जाने के बारे में पूँछते थे। मैं तो शायद ही जासकूँ। परन्तु मेरी सम्मति में तुम अवश्य जाना। महात्मा गांधी सभापति हैं, यही आकर्षण काफ़ी है। वहाँ अपना गान्धीस्तव वा एक और सामयिक कविता पढ़ना बड़ा अच्छा होगा।

२७। ३। १८ को सत्यनारायणजीने निम्नलिखित पत्र श्रीयुत सूर्य्यनारायणजी अग्रवाल (इटावा) को भेजा था—

२७। ३। १८

आगरा

श्रीमन्

प्रणाम

पिछला पत्र आपका यथासमय आया, किन्तु उस समय प्लेग के कारण स्कूल बन्द था। आज सेक्रेटरी के यहाँ से मिला। उसे देखकर लाज में डूब गया हूँ। तत्प्रायश्चित-रूप में इन्दौर जा रहा हूँ। आपकी उदारता में विश्वास है कि आप क्षमा करेंगे। उन दिनों "मालती माधव" छप रहा था। कहाँ? बेलनगंज में, जहाँ प्लेग फूट रहा था। ११ फ़र्मे अथवा ६ अंक छापकर प्रेस बन्द हो गया। उसी झगड़े में आपकी सेवा में न आ सका। क्षमा करिये और दया बनाये रहिये।

आपका—सत्यनारायण

बात यह थी कि सूर्य्यनारायणजी ने पंडितजी को अपने पत्र में लिखा था कि, इटावा नागरी-प्रचारिणी सभा के उत्सव के समय आपको तीन साल से निमन्त्रण दे रहा हूँ। आपने प्रत्येक वार

स्वीकार भी कर लिया, लेकिन आने की कृपा एक बार भी नहीं की। अबकी उत्सव २३-२४ मार्च को होनेवाला है। आपने मेरे दो पत्रों का उत्तर भी नहीं दिया। मुझे बड़ा दुःख है कि आप मुझसे नाराज़ हो गये हैं, इत्यादि'।

इन्दौर-आगमन

अष्टम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के साहित्य और प्रदर्शिनी-विभाग का काम मेरे सुपुर्द था। एडवर्ड हाल में बैठा हुआ मैं प्रदर्शिनी की तैयारी में लगा था कि इतने में सत्यनारायणजी वहाँ आ पहुँचे। बड़े प्रेम के साथ उन्होंने मुझे गले लगा लिया। श्रीयुत गिरिधर शर्मा नवरत्न की आज्ञानुसार मैंने सत्यनारायणजी को एक तार भी इन्दौर आने के लिये दिया था और हम सब उनकी प्रतीक्षा कर ही रहे थे। उनके आने से हम सबको अत्यन्त हर्ष हुआ।

सम्मेलन में कविता-पाठ

महात्मा गान्धीजी के सभापति होने के कारण लगभग १०-१२ हज़ार दर्शक सम्मेलन के लिये पहुँचे थे। स्वयंसेवकों का प्रबन्ध ठीक नहीं हो सका था। अंग्रेज़ी विद्यालयों के कितने ही विद्यार्थी स्वयंसेवकों में यों ही भर्ती कर लिये गये थे और उन्हें किसी प्रकार की शिक्षा नहीं दी गई थी। अपनी मिर्जई पहनकर सत्यनारायणजी मंडप पर पहुँचे। वहाँ उनके ग्रामीण वेष को देखकर सम्मेलन के धृष्ट और असभ्य स्वयंसेवकों ने उन्हें बहुत तंग किया। जिस दरवाज़े पर जाते, स्वयंसेवकों से दुरदुराये जाते थे। जहाँ स्वयं-

सेवकों के कुप्रबन्ध से रायबहादुर सेठ जमनालालजी बजाज को भी मंडप में प्रवेश करते हुए अपमानित होना पड़ा था, वहाँ गँमारू मिर्जई और दुपल्लू टोपीवाले सत्यनारायणजी को कौन पूछता था! "दद्दू हमैंऊ का घुसि जान देउ, हमऊ देखिगे।" यह प्रत्येक दरवाजे पर जाकर कहते थे। इस तरह की भाषा सुनकर और सत्यनारायण का वेष देखकर अंग्रेज़ीदाँ स्वयंसेवक उन्हें फटकार देते थे! बड़ी मुश्किल से वे मंडप में घुस पाये।

दूसरे रोज़ मैं उन्हें अपने साथ मंडप पर ले गया था। वहाँ पहुँचकर बोले—"भूख लगी है, कछु खवाऔ"। हम लोग निकट के उन स्थानों पर गये जहाँ प्रतिनिधियों के भोजन का प्रबन्ध किया गया था। प्रयत्न करने पर भी कहीं भोजन नहीं मिल सका! स्वयं-सेवक लोग स्वयं मज़े से भोजन कर रहे थे। बहुत कुछ निवेदन करने पर भी उनका हृदय द्रवित नहीं हुआ! इतने में मेरे साहित्य-विभाग का एक स्वयंसेवक बाइसिकिल पर आता दीख पड़ा। उसके हाथ मैंने बाज़ार से कुछ फल मँगवाये। सत्यनारायणजी बेतरह भूखे थे। तेल के सेव वहाँ बिक रहे थे। तब तक वही लेकर हम लोगों ने खाये। तत्पश्चात् मैंने सत्यनारायणजी के साथ जाकर, श्रीमान् बापना साहब की आज्ञा से उन्हें उस मञ्च पर बिठला दिया जो ख़ास-ख़ास आदमियों के बैठने के लिये बनाया गया था किसी प्रबन्ध-सम्बन्धी कार्य्य के लिये मैं इधर उधर घूम रहा था। थोड़ी देर में आकर देखता क्या हूँ कि सत्यनाराणजी अपने स्थान पर खड़े हुए हैं! जो कुछ हुआ था उसका वृत्तान्त श्रीमान ठाकुरलाल

सिंहजी कर्मचारी रेवेन्यू विभाग, रियासत इन्दौर के शब्दों में सुन लीजिये।

"मैंने देखा कि एक सज्जन वृन्दावनी मिरजई पहने दो पैसे की दुपल्ली सफेद टोपी लगाये, सफेद पिछौरा बगल में दबाये, हाथ में कागज़ों का पुलिन्दा लिये 'नंगे पाँव कुर्सी पर बैठे हैं।......मैं धीरे से उनके पास पहुँचा और नीचे लिखे अनुसार बातचीत हुई।

मैं—क्या महाशयजी आपके पास इस स्थान पर बैठने के लिये टिकट है?

ग्रामीण पुरुष (कुछ मुसकराते हुए; परन्तु करुणाजनक भाव से) नहीं महाराज, मेरे पास टिकट तो नहीं है।

मैं—फिर आप यहाँ कैसे बैठे हैं?

ग्रामीण पुरुष—(उसी भाव से) महाराज, मुझे सम्मेलन के एक उच्च कर्मचारी ने यहाँ बैठने की आज्ञा दी है।

मैं-क्या आप कृपा करके उन उच्च कर्मचारी का नाम बता देंगे?

ग्रामीण पुरुष—महाराज, मुझे बापना साहब ने यहाँ बैठने की आज्ञा दी है।

यह सुनकर मैं वहाँ से चल दिया और रायबहादुर डाक्टर सरजूप्रसादजी मन्त्री-सम्मेलन के पास जाकर उनसे सब हाल सुनाया। डाक्टर साहब ने हँसकर कहा— ठाकुर साहब, क्या आप

सत्यनारायणजी को नहीं जानते हैं ? यह सुनकर मेरे ऊपर वज्र सा टूट पड़ा ! × × × सभा-विसर्जन होने पर बड़ी मुश्किल से पंडितजी का पता लगाया। बहुत से मनुष्य उनको घेरे खड़े थे। मैंने हाथ जोड़कर कहा—"पंडितजी अनजाने का अपराध क्षमा कीजिये। "चहिय विप्र-उर क्षमा घनेरी"। यह सुनकर पंडितजी मुसकराते हुए हाथ जोड़कर कहने लगे—"ठाकुर साहब आप क्षत्रिय हैं! ब्राह्मण तो सदा क्षत्रियों के आश्रित रहे हैं। क्षमा-फमा काहे की ?"

कुछ प्रस्तावों के पास हो जाने के बाद महात्मा गांधीजी ने प्रोग्राम में पढ़कर कहा—"अब सत्यनारायण कविरत्न अपनी कविता सुनावेंगे"। सत्यनारायणजी अपनी मिर्जई सँभालते हुए और कागज़ के दो टुकड़े हाथ में लिये हुए उठे और मेज़ के निकट उपस्थित हुए। मञ्च के रायसाहबों और रायबहादुरों को कुछ हँसी आई।

सत्यनारायणजी ने रसखान के दो कवित्त पढ़े।

वा लकुटी कर कामरिया पर राज तिहूँपुर को तजि डारों।
आठहूं सिद्धि नवौ निधि को सुख नंद की गाय चराय बिसारों।
रसखान कबें इन नैननु तें ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारों।
कोटिन हू कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारों॥

मानुष हों तो वहीं रसखान बसौं मिलि गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हों तो कहा बस मेरो चरों नित नन्द की धेनु मझारन।
पाहन हों तो वही गिरि को जो कियो ब्रजछत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हों तो बसेरो करौं वहि कालिन्दी कूल, कदम्ब की डारन॥

इन कवित्तों को सत्यनारायणजी ऐसे मधुर स्वर से पढ़ा कि सम्पूर्ण पंडाल में सन्नाटा छा गया। श्रोतागण दंग रह गये। फिर उन्होंने अपनी "प्रतिनिधि-प्रेम-पुष्पाञ्जलि" पढ़ी।

दरशन शुभ पाये।
धन्य भाग इन नयननु के जो लखि तुमकों सरसाये॥
जैसी कानन सुनी सुखद सुचि सुन्दर कीर्ति तुम्हारी।
सो सब आज आपु हम देखी परम पुनीत पियारी॥
श्रीघनश्याम-प्रेम के पपिया रसनिधि मीन प्रबीन।
दया-द्रवित तव हृदय मनोहर निरमल नित्य नवीन॥
सरल सुभाव अभेद अपनूम मति अनन्य तव भ्राजै।
मनहुँ प्रतीति प्रीति प्रतिभा प्रिय पुण्य प्रवाह बिराजै॥
प्रेम-पुनीति मार्ग के गामी सब जग के उजियारे।
प्रभुपद-पद्म-पराग राग के अलबेले अलि प्यारे॥
हिन्दू-नयन-चकोर चन्द्र तुम नवजीवन बिस्तारक।
सहृदय-हृदय-कुमोद खिलावन मोद-भरन उपकारक॥
चरन-कमल तव दरसि परसि-हम हरे-भरे भये आज।
फूलत ज्यों द्रुमलता सुमनयुत लहि ऋतुराज स्वराज॥
यह जातीय बेलि जो हिन्दी जन हिय बन लहरावै।
पुलकि सींचिये ऐसी बस जो अब नहिं सूखन पावै॥
मोहन प्यारे तुमसों निसदिन बिनय बिनीत हमारी।
हिन्दू हिन्दी हिन्द देश के बनहु सत्य हितकारी॥

जिस समय सत्यनारायण यह कवितापढ़ रहे थे, सम्पूर्ण मंडप करतल-ध्वनिसे गूँज रहा था। इसके बाद उन्हं ने भक्ति-पूर्वक महात्मा

गांधीजी की ओर मुख करके और श्रद्धा-पूर्वक सिर नवाकर कहा— "अब कुछ महाराज की सेवा में तुकबंदी निवेदन करूँगा" फिर उन्होंने "श्री गान्धी-स्तव" पढ़ा। जिस समय उन्होंने—

तुमसे बस तुमहीं लसत, और कहा कहि चित भरैं।
'सिविराज' 'प्रताप' उरु 'मेजिनो' किन-किन सों तुलना करैं॥

यह पद्य पढ़ा था, उपस्थित जनता का हृदय प्रेम से विह्वल हो गया था। स्तव का अन्तिम पद यह था।

अपुहिं सारथी बने कमलदल आयत लोचन।
अरजुन सों बतरात बिहँसि त्रयताप बिमोचन॥
धीरज सब विधि देत यही पुनि-पुनि समझावत।
'दैन्य' 'पलायन' एकहु ना मोहिं रन में भावत॥
इक निमित्त-मात्र है तू अहो, फिर क्यों चित-बिस्मय धरैं।
गोपाल कृष्ण मोहन मदन, सो तुम्हार रक्षा करैं॥

इस कविता के प्रभाव को पं० वेङ्कटेशनारायणजी तिवारी ने अपने "लीडर" "न्यू-इंडिया" इत्यादि को भेजे हुए तार में इन शब्दों द्वारा प्रकट किया था—

Pandit Kaviratna Satyanarayan of Agra read very beautiful Hindi poems composed by him, which kept the whole audience spellbound in admiration."

अर्थात् "आगरे के कविरत्न पं० सत्यनारायण ने अपनी बन हुई बड़ी मनोहर कविताएँ पढ़ीं, जिनकी प्रशंसा में सम्पूर्ण श्रोता गण मंत्र-मुग्ध से हो गये!"

सम्मेलन की बैठक समाप्त होते ही सत्यनारायणजी की कविता की बड़ी माँग हुई। किसी ने कहा—"पंडितजी एक प्रति इसकी हमें दे दीजिये"। किसी ने कहा—"हमारे पत्र के लिये कृपाकर एक कापी हमें प्रदान कीजिये।" कोई महाशय अपना विज़िटिङ्ग-कार्ड देकर कहने लगे—"पंडितजी इसकी एक कापी मेहरबानी करके मेरे नाम बड़ौदा भेजे दीजिये" और अनेक विद्यार्थी तो इस कविता के लिये मुझे तंग करते रहे। सत्यनारायणजी के पास केवल एक प्रति थी। कई प्रतियाँ तो सत्यनारायणजी ने और मैंने समाचार-पत्रों के लिये नक़ल कीं, लेकिन वे प्राप्त नहीं थीं। इसलिये इन्होंने मुझे आज्ञा दी कि और प्रतियाँ तुम भेज देना।

स्वयंसेवकों द्वारा अपमानित उस "गरीब बामन" के मधुरस्वर और ललित कविता को इन्दौरवाले बहुत दिन तक नहीं भूले।

इस सम्मेलनके अवसर पर चतुर्वेदी जगन्नाथप्रसादजी ने अपना "सिंहावलोकन" नामक निबंध पढा था। उसे सुनकर आप चतुर्वेदीजी से बोले-"बस ब्रजभाषा से तो एक बरस भर के लिये निश्चिन्त हो गया।"

सत्यनारायणजी से इन्दौर में हमलोगों का मनोरंजन हुआ। मैंने उनसे कहा—"मेरी पुस्तक "प्रवासी भारतवासी" का नाम आपकी एक कविता के बीच में आया है। अच्छा बताइये तो सही, कहाँ आया है?" सत्यनारायणजी ने कहा—"यह तो हमैं नाँइ मालुम"। मैंने फ़ौरन ही "श्रीगोखले" नामक कविता की यह पंक्तियाँ पढ़ीं—

कुलो प्रथा उच्छिन्न करन जिन शक्ति प्रकासी।
जिनके अमित कृतज्ञ "प्रवासी भारतवासी॥"

पंडितजी बहुत हँसे और बोले –"जि तुमने ख़ूब याद रक्खी।" फिर मैंने उनसे कहा—"कभी-कभी ऐसा होता है कि कवि अपनी कविता के जिस भाव को नहीं समझता है उसको पाठक समझ जाते हैं"। सत्यनारायणजी ने कहा—"हाँ, ऐसा होता है।"

मैं—"आपकी कविता से उदाहरण दे सकता हूँ।"

सत्यनारायण –"अच्छा बताओ।"

मैंने कहा –"ऐसी तूमा-पलटी के गुन नेति-नेति श्रुति गावैं।" यह पंक्ति आपने 'माधव आप सदा के कोरे' नामक कविता में लिखी है। इसमें तूमा-पलटी का दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि श्रीकृष्ण भगवान देवकी माता के यहां से जसोदामैया के यहाँ गये थे इसलिये 'तू मा पलटी' में उनपर व्यङ्ग किया गया है!

सत्यनारायणजी बड़े प्रसन्न हुए और बोले –"वा! जि तुमने अच्छौ अर्थ लगायौ है!"

इन्दौर में सत्यनारायणजी मिस्टर सी० ए० डाब्सन साहब से भी मिले थे। डाब्सन साहब पहले आगरे में हेडमास्टर थे और जब वे आगरा छोड़कर आये थे तो सत्यनारायणजी ने उनके लिये अभिनन्दन-पत्र लिखा था। इन्दौर में सत्यनारायणजी को डाब्सन साहब के पास मैं ही ले गया था। डाब्सन साहब उनसे हिन्दी में बातचीत करने लगे। मैं इस बात को नहीं जानता

था कि डाब्सन साहब सत्यनारायणजी से परिचित हैं। इसलिये मैंने मि० डाब्सन से कहा - "सत्यनारायणजी तो अंग्रेज़ी खूब पढ़े हुए हैं—आप उनसे अंग्रेज़ी में क्यों नहीं बोलते?" मिस्टर डाब्सन बोले - "सत्यनारायण को मैं खूब जानता हूँ। आगरे से चलते वक्त इन्होंने मुझसे कहा था कि "हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान' को मत भूलजाना। इसलिये मैं इनसे हिन्दी में बोलता हूँ" यह सुनकर मुझे लज्जित होना पड़ा। डाब्सन साहब को जो अभिनन्दन पत्र दिया गया था उसमें सत्यनारायणजी ने ये शब्द रक्खे थे।

"नित ध्यान रहै तव हृदय में ईश-चरण अरविन्द को।
प्रिय सजन, मित्र, निज छात्रजन, हिन्दी-हिन्दू हिन्द को"॥

जब सत्यनारायणजी हमारी प्रदर्शिनी देखने के लिए आये तो मैंने उनसे कहा आप अपनी कोई कविता सुनाइये। उस समय उन्होंने बड़े मधुर स्वर से मुझे यह पद सुनाया था:—

सुधि रहि-रहि आवत तव संग की रँगरलियाँ।
नय नयनाभिराम श्यामल वपु-शैल, गंग-तट गलियाँ॥
रस-बतरानि बिचारत बिकसत रोम-रोम की कलियाँ।
सत गरीब कौ फेरि देउ मन भलीं न ये छलबलियाँ॥

ओङ्कारेश्वर-यात्रा

सम्मेलन समाप्त होने पर सत्यनारायणजी ओङ्कारेश्वर के दर्शन करने के लिये गये थे। साथ में पं० तोतारामजी, अध्यापक रामरत्नजी, भागीरथप्रसादजी दीक्षित और रामप्रसादजी इत्यादि थे। इस यात्रा का विवरण तोतारामजी की ज़बानी सुन लीजिये।

"गोल टोपी लगाये" वृन्दावनी मिर्जई पहने, गले में अँगौछा डाले और बगल में गजी की चादर और लोटा दबाये हुए सत्यनारायणजी हमलोगों के साथ स्टेशन पर पहुँचे। टिकट लाने का काम पंडित जी को सौंपा गया। भीड़ बहुत थी। पंडितजी ने बहुत कोशिश की, लेकिन टिकट नहीं मिल सका। दो-चार धक्के ज़रूर मिले! लौटकर पंडितजी बोले—"क्यों भैया, जि मोते कौनसी अदावटि कौ बदलौ काढ़यो जो मोइ टिकट लैबे भेजि दयौ। ह्माँ तो चिँटी के ऊ घसिवे कूं ठौर नाँय। खिरकिया पै पेलमपेला है रही है, टिकट कैसैं लाउतो?" हम लोग खूब हँसने लगे। फिर दूसरा साथी जाकर टिकट ले आया। रेल आगई और झटपट सब साथी एकही डिब्बे में घुसकर बैठगये। डिब्बे में म उनके पासही बैठा था। पंडितजी ने मुझे अपना "भ्रमर-दूत" सुनाया। फिर मुझ से कहा—"तुमऊ कछु सुनाऔ।" मैंने कहा—"क्या सुनाऊँ?" सत्यनारायणजी ने कहा—"अच्छा तो अपने ब्याह की कथा सुनाऔ कि फिजी में तुम्हारौ ब्याह कैसे भयो! फिर मैंऊ अपने ब्याह की कथा तुम्हैं सुनाऊंगो।" इसी प्रकार बातचीत होती रही।

हम लोग मोरटक्का स्टेशन पर उतरे और वहाँ से ओङ्कारेश्वर के लिये बैलगाड़ी किराये करने की तदबीर होने लगी। बैलगाड़ी वाला २) रुपये प्रति सवारी माँगने लगा। पंडितजीने कहा—चलौ सत्याग्रह करौ—पैदल चलौ। फिर गाड़ीवाला आठ आने सवारी पर आगया, लेकिन हमलोगों ने तो सत्याग्रह करदिया था! पैदल चल पड़े। एक गठरी सत्यनारायणजी ने सिर पर रखली और एक

मैंने। मैंने उनसे पूँछा —"आप अपने विवाह से सन्तुष्ट तो हैं ?" सत्यनारायणजी ने कहा—"का कहैं ! कछु कहत बन्ति नाँइ। तुम हमारे घर कौ ठेका ले लेउ । ज़मीदारी मन्दिर सब तुमकों सौंपि देंइगे और हमैं छुट्टी देउ"। इस प्रकार बातचीत करते हम नर्मदा के पवित्र तट पर जा पहुँचे। नाव तैयार मिली । सब नाव में बैठे और उस पार उतरे। एक पंडे ने हमको अपने मकान में ठहरा दिया। सत्यनारायणजी को वहाँ सामान की रखवारी के लिये बिठलाकर हम लोग भोजन की तलाश में निकले। लौटकर आकर देखा तो पंडितजी लापता ! सब जगह तलाश किया— कहीं पता न लगा। फिर हम लोग ओङ्कारेश्वर के मन्दिर पर पहुँचे। वहाँ पर एक सिपाही ने उन्हें कोने में बिठला रक्खा था। वहाँ राजा की ओर से एक सिपाही रहता है जो प्रत्येक दर्शनकरनेवाले से)॥ दो पैसा लेलेता है। पंडितजी के पास पैसे थे नहीं। सिपाही के रोकने पर भी आप भीतर चले गये थे। जब लौटकर आये तो सिपाही ने उन्हें रोक लिया और कहा—"पहले दो पैसे रखदो, तब जाने पाओगे।" इसीलिये आप वहाँ बैठे थे। जब हम पहुँचे तो हमने पूँछा—कैसे बैठे हो !? सत्यनारायणजी बोले –"बैठे का हैं गिरफ़दार हैं। खूब ख़बरि लई आपने। हम तो जानते कि कोई ख़बर लिवैया है ई नाँहि। जा राजा के सिपाही के पाले पड़े हैं।" हमलोगों ने दो पैसे दे दिये और पंडितजी हमारे साथ दर्शन करके चले आये।

नर्मदा में हम लोगों ने स्नान किये। पंडा अपना

काम करके दक्षिणा लेकर चला गया—फिर सत्यनारायणजी ने मुझे बुलाया और कहा—" नर्मदाजी को पानी हाथ में लेउ"—मैंने कहा—" क्यों ? " पंडितजी ने कहा—" लेउ तौ पानी।" मैंने पानी लिया। फिर पंडितजी ने कहा—"तुम कहौ कि हे नर्मदाजी, हम सत्यनारायण के बाप बनतें × ×!" यह सुनकर मुझे हँसी आगई और मैंने हाथ का पानी गिरादिया। पंडितजी ने कहा—" जि का करौ। हम तुम्हें अपनी जमीन जायदाद सब सौंपते और छुट्टी लेते !"

ओङ्कारेश्वर से हम लोग मोरटक्का की ओर वापिस चल दिये। रास्ते में एक जगह पर पक्का कुँआ था। एक आदमी पानी पिलाता था। हम लोगों ने वहीं विश्राम किया और बैठकर चने खाने लगे। सत्यनारायणजी ने उस पानी पिलानेवाले को भी बुलाया और उसको भी वहीं बिठलाया। पंडितजी मुस्कराते हुए उस आदमी के सामने बैठ गये और बोले—"जि आदमी हमारी ससुरारि के मालूम पत्तौ।"हम सब हँसने लगे—"हमारी नाँय तो हमारे काऊ मित्र की ससुरारि के हैं।" फिर सब हँसे !

पंडितजी ने कहा—"हँसत का हौ, पूँछि जु लेउ।" क्यों भैया, काँ रहतौ?" उसने उत्तर दिया—"आगरे के पास"। पंडितजी ने कहा—" कौन गाँव से ?" उसने गाँव का नाम बतलाया। पडितजी ने कहा "चतुर्भुज को जानतौ ?" वह आदमी बोला "चतुर्भुज कों तौ हमारी बहन ब्याही है।" सत्यनारायणजी ने कहा "देखि लेउ, हमने ठीक कही कि नाँहि।" हम लोग खूब हँसे ! पंडितजी ने उससे कहा—"देखौ भैया, बुरौ मत मानियो। तुम तौ हमारे घर केई हो।"

इसी प्रकार हँसते और बातचीत करते हम लोग मोरटक्का स्टेशन पर पहुँचे। वहाँ से रेल में बैठकर इन्दौर आउतरे। यह मुझे क्या मालूम था कि पंडितजी से हमारा यह अंतिम मिलन है। उनकी स्मृति हृदय-पटल पर चिर काल तक अङ्कित रहेगी।"

इन्दौर से वापिसी

ता० ३ अप्रैल को पंडितजी अपने मित्र भागीरथप्रसादजी दीक्षित के साथ इन्दौर से आगरे के लिये रवाना हुए। स्टेशन पर पहुँचाने के लिये मैं गया था। बड़ी मुश्किल से जगह मिली। * जब गाड़ी चलने को हुई तो मैंने हँसी में कहा— 'पंडितजी एक बात हमारी हू मानिओ। जब रेल चलन लगै तब चढ़ियो और जौनों खड़ी न होन पावै उत्तर परियो।'—पंडितजी ने हँसकर कहा— "भैया तुम्हरौ कहौ ज़रूर मानिङ्गे"।

चलते-चलते मैंने पंडितजी से कहा -'मैं पन्द्रह-बीस रोज़ बाद धाँधूपुर पहुँचूँगा तब तक आप "हृदय-तरङ्ग" ठीक कर रखिये।" गाड़ी चलदी और पंडितजी आंखों से ओझल होगये !

अन्तिम पत्र और अन्तिम कविता

इन्दौर में मैंने पंडितजी से निवेदन किया था कि मेरी पुस्तक

* ग्रामीण पोशाक होने के कारण लोग घुसने नहीं देते थे। जैसे-तैसे मैंने घुसकर जगह की और बिठलाया। पंडितजी बोले—"मिर्जई पहिनबे की जि सजा है!"

"प्रवासी भारतवासी" के टाइटिल-पृष्ठ के लिए कोई पद्य बनाकर भेजना। ८ अप्रैल १६१८ को पंडितजी का निम्नलिखित पत्र मिला।

श्री

श्रीमान भाई बनारसीदासजी,

प्रणाम

यहाँ सकुशल आ पहुँचा। आपके अनुग्रह का इसे फल समझिये। आप लोगों को बड़ा कष्ट हुआ।

आपकी आज्ञानुसार टाइटिल के लिए दो पंक्ति भेजता हूँ। पसन्द आने पर काम में लाना। बहुत सोचा, किन्तु इसके सिवाय कुछ न सूझा—

कोई मंत्र* हो कोई तंत्र† हो कैसा हो हो काज।
सत्याग्रह स्वराज ही केवल सबका एक इलाज॥

यहाँ प्लेग का बड़ा प्रकोप है। इसलिए अक्ल घास चरने चली गई है! क्षमा करिये और कृपा बनाये रखिये। श्रीमान द्वारिकाप्रसाद 'सेवक' से प्रणाम वा नमस्ते कह दीजिये।

वरवे आदि प्रेमियों को प्रणाम।

आपका

सत्यनारायण

* मंत्रि-मंडल

† शासन-पद्धति—as राजतंत्र, प्रजातंत्र

यह बात ध्यान देने योग्य है कि व्रजभाषा-कवि की अन्तिम कविता खड़ी बोली में हुई।

१५ अप्रेल सन् १९१८ की बात है। संध्या का समय था। कुछ झुटपुटा सा हो रहा था। सत्यनारायणजी श्रीमती सावित्री देवीजी को, जो सात-आठ रोज़ पहले ज्वालापुर से धाँधूपुर आगई थीं, "मालतीमाधव" के प्रूफ़ में से शिव की स्तुति सुना रहे थे। फिर उन्होंने अपनी वह कविता सुनाई जो स्वामी रामतीर्थ के साथ रहने के दिनों में बनाई थी। तत्पश्चात् आपने पं० पद्मसिंहजी को भेजी हुई अपनी वह कविता सुनाई जिसमें ये पद्य आये थे।

जो मोसों हँसि मिलै होत मैं तासु निरन्तर चेरो।
बस गुन ही गुन निरखत तिह मधि सरल प्रकृति कौ प्रेरो॥
यह स्वभाव कौ रोग जानिये मेरो बस कछु नाहीं।
नितनव बिकल रहत याही सों सहृदय बिछुरन माहीं॥
सदा दारुयोषित सम बेबस आज्ञा मुदित पमानैं।
कोरी सत्य ग्राम कौ बासी कहा "तकल्लुफ़" जानै॥

कविता सुनने के बाद आपने कहा—भूख लगी है। उनकी गुरु बहन ने कहा-"कल के लिये आटा पिसने के लिये गेहूँ दे आओ, रोटी अभी हाल होती है"। गेहूँ की डलिया लेकर घर के बाहर गये। उनके साथी गेंदालाल जाट ने कहा - "पंडितजी महाराज, पालागन।"उसे आशीर्वाद देते हुए गेहूँ डालने चलेगये। उधर से लौटे तो गेंदालाल ने कहा"-महाराज दण्डौत"। सत्यनारायण ने कहा-"जब हम गये थे तब तुमने पालागन कहा था और अब हम लौट के आये हैं तब

दण्डौत कहते हो, यह बात क्या है ?" गेंदालाल ने कहा—"भाई जब तुम गये थे तब पंडितानी के हुकुम से, घर-गृहस्थी के धंधे में गेहूँ लेकर गये थे सो हमने पालागन कहा। अब तुम ख़ाली हाथ बाबाजी की तरह लौटे हो सो हम दण्डौत कहते हैं!" सत्यनारायणजी इस युक्तिसंगत बातको सुनकर मुस्कराये और कहा - "तुम तौ ऐसोई मजाक करिबौ करौ।" घर पहुँचकर रोटी खाई। उन दिनों धाँधूपुर में प्लेग की बीमारी फैली हुई थी, हैज़े का कहीं नामोनिशान भी नहीं था।* प्लेग से बीमार एक स्त्री को देखने के लिये गये। वहाँ से लौटकर बोले—"जी मचलाता है। जाने क्या हो गया! कसरत करके एक साथ रोटी ख़ाली इससे, या न जाने किससे!"

"कोरो सत्य ग्राम को वासी कारण कछू न जाने।"

श्रीमती सावित्री देवी अपने १६।१२।१८ के पत्र में लिखती हैं—

"चारों ओर प्लेग की बीमारी फैली हुई थी। एक आदमी के कहने पर ध्यान देकर पासके ही घर में एक गिल्टीवाली स्त्री को देखने के लिये चले गये। जबसे बीमारी शुरू हुई थी, वे चाहते थे कि वहाँ से कहीं और चल जायँ; किन्तु मेरे ज्वालापुर से देर में पहुँचने के कारण वे इच्छा-पूर्ण न कर सके। इस स्त्री को देखकर ओषधि बतलाई और वहाँ से कुछ देर बाद ही वापिस लौट पड़े। मेरा आग्रह था कि बीमारी के किसी रोगी को देखने न जायँ; किन्तु उस आदमी की विशेष विनती करने पर साधारण बीमारी समझकर

*सत्यनारायणजी उसी दिन धांधूपुर के निकट के ग्राम महावन की गढ़ी से घी ले के आये थे। —लेखक।

चले गये थे। शोक ! वही उनकी मृत्यु का कारण हुई। वापिस लौट कर उन्होंने ज़िक्र हमसे तक न किया और आप ही प्रसन्नता से घूमते रहे। बाहर जाकर और लोगों से कहा भी कि मेरा चित्त व्याकुल हो रहा है। सबने कहा कि पुस्तकें देखो—चित्त शान्त हो जायगा और हम भी कुछ सुनना चाहते हैं। उन दिनों "मालती-माधव" छप रहा था। उसका प्रूफ़ लाकर कुछ शिवजी की स्तुति सुनाने लगे। स्वामी रामतीर्थजी के साथ रहते हुए जो बनाया था वह "कभी मुझमें तुझमें भी प्यार था, तुम्हें याद हो कि न याद हो" सब सुनाते रहे। मै भी सुन रही थी। मुझसे कहा कि यह तुम नोट कर लेना, मैंने रामतीर्थजी की आज्ञा से बनाया था। मैं ख़ुश हुई और चाहा कि उतार लूँ; परन्तु उन्होंने कहा कि अब मुझे सुनाने दो, फिरउतार लेना। कविता में ऐसे मगन थे कि उन्हें अपने शरीर की सुध न रही। रोटी आदि खाने के बाद तालेवर नामक एक लड़के से, जो ब्राह्मण-स्कूल में पढ़ता था और बीमारी की वजह से हमारे घर पर ही था, बातें करते रहे। पिपरमेण्ट आदि भी खाया। क़रीब ३ बजे उनके पेट में दर्द हुआ। साथ ही क़ै दस्त शुरू हुए। सुबह को ५ बजे हमने डाक्टर बुलवाया और उनसे कहा कि डाक्टर आनेवाले हैं। हमको चिन्तित देखकर आप हमें धैर्य्य दिलाते रहे और इधर-उधर की बातचीत करते रहे। डाक्टर भी बहुत रोगी देखने से न आ सके, दवाई दे दी; वह उन्होंने ख़ुशी से पीली और चुपचाप लेटे रहे। क़ै आदि बन्दहोगई, फिर अचानक कमर में दर्द शुरू हुआ और सबके दाबने पर भी उन्हें बेचैनी

बढ़ती ही गई। बोलना भी बन्द कर दिया। फिर दो आदमी डाक्टर को लेने गये। सब मनुष्य ऐसी दशा सुनकर चले आये। मुझे धीरज बँधाने लगे। मैंने कई आवाज़ दीं, सब निष्फल! उन्होंने कुछ न कहा। घंटा भर बेहोश लेटे रहे। मालिश की गई, शहद! चटाया गया, पानी डाला, वह भी अन्दर न जा सका! मैं एक दम चिल्ला पड़ी! मुझे उनकी सूरत देखकर यह विश्वास भी न हुआ कि आज अन्तिम विदाई है -आज लाख कोशिश करने पर भी मैं न पा सकूँगी! ज़ोर से घबराकर मैंने अपना हाथ सिरहाने की तरफ़ पट्टी पर दे मारा। एक दम चौंककर मेरी ओर देखा और सदा के लिये हतभागिनी से विदा ले ली!" मृत्यु के दो घंटे के बाद इलाज के लिये डाक्टर साहब आये!

इस प्रकार बिना समुचित चिकित्सा हुए सरल-प्रकृति-प्रेरित सत्यनारायण ने सदा के लिये आँखें बन्द कर लीं! जब मैं सत्य-नारायण की उस समय की स्थिति की कल्पना करता हूँ, जब वे मृत्यु शय्या पर लेटे होंगे, आगरा-निवासी मित्रों का, जिन्हें कुछ सूचना नहीं दी गई थी, स्मरण करते होंगे, आधी छपी प्रिय पुस्तक "मालती-माधव" की याद करते होंगे और फिर सोचते होंगे कि अब डाक्टर आता है, डाक्टर अब आता है—डाक्टर नहीं आता, जीवन का अन्त आ जाता है! मेरा हृदय भर आता है! अधिक नहीं लिखा जाता! कुछ देर ठहरिये और चार आँसू मेरे साथ आप भी बहा लीजिये!!

शव के साथ धाँधूपुर के बहुत से ग्रामीण मित्र गये। जो हल चला रहे थे वे हल छोड़कर और जा खेत में पानी दे रहे थे अपना काम छोड़कर शव के साथ हो लिये। अंगूरीबाग़ के निकट, यमुना तट पर, चिता बनाई गई तालेवर विद्यार्थी ने अग्नि-संस्कार किया। थोड़ी देर में सत्यनारायण की सरल-सौम्य मूर्ति सदा के लिये आँख से ओझल हो गई !

वह कोमल काकली कलित सो, सोखी, वृन्दा विपिन निवेश।
मस्त कान्ह को कर कर देती, हर हर लेती हृदय प्रदेश॥
राष्ट्र भारती के उपवन में होता रहती थी वह कूक।
कर कर दिये क्रूरताओं के उनने सदा करोड़ों टूक॥
वह कोकिल, उड़ गया, गया—वह गया—कृष्ण ! दौड़ो लाओ।
वन देवी का धन लौटाओ—सच्चे नारायण ! आओ॥



सत्यनारायणजी का व्यक्तित्व



जीवनी लेखकों में शिरोमणि प्लूटार्क ने एक जगह लिखा है- "मनुष्य के गुणों और अवगुणों की यथार्थ जाँच सदा उसके अत्यन्तप्रसिद्ध कार्य्यों में ही नहीं होती; बल्कि प्रायः एक क्षुद्र कार्य्य--एक छोटीसीबात अथवा मज़ाक -से ! मनुष्य के असली चरित्र पर जो प्रकाश पड़ता है वह उसके लड़ाई के दिनों के बड़े-से-बड़े घिराव और युद्धों से नहीं पड़ सकता।" इसी आदर्श वाक्य को सामने रख कर मैं सत्यनारायणजी के जीवन पर एक दृष्टि डालना चाहता हूँ।

कवितामय जीवन

पहली बात जो सत्यनारायणजी के जीवन में दीख पड़ती है वह यह है कि उनका जीवन कवितामय था। चिट्ठियाँ प्रायः कविता में ही लिख दिया करते थे।

१८।४।१९०५ को सत्यनारायणजी के पास उनके एक मित्र का निम्नलिखित पत्र पहुँचा।

आगरा
१८।३।१६०५

अरे ओ पंडित,

जय श्रीसत्यनारायणजी की !

लल्लू तेरी तारा रूरी सरसुती में छपी। मैंने आज देखी ही। सीतला गलीवारे व्रजनाथ के पास आजी आई है। द्विवेदीजीने बड़ी किरपा करी, ७० ही लैन छापी हैं। जौ फुरसति होय तो आयके देखिजैयो और हू काऊ की बनी बसंत वामें छपी है।

हमारी औरु चौबेजी और पंडितजी की सला एतवार को तुम्हारे म्हाँ आइबे की भई है। जौ तुम्हारी राजी होइ तो चले आमें।

पंडितजी महाराज तव निकट विनय इक मोर।
पत्रोत्तर दोजो हमें करिकें किरपा घोर॥

नाम लिखने पै कुछ नहीं मौक़ूफ़,
तरज़ तहरीर से समझ लेना।

(एक हितचिन्तक)

पंडितजी ने इस पत्र के ऊपर लिख दिया—

जाने यह कर कमल सों लिख्यो ताहि आशीस।
पूजहिं करि करुणा सकल तासु आस जगदीस॥

और पत्र का उत्तर दिया।

तव आवन की सुनत ही उर अति बढ़्यो उछाह।
हम प्रेमी पागलन कों और चाहिये काह!

एक महाशय ने पत्र भेजकर मांसाहार के विषय में आपकी सम्मति पूँछी। आपने जवाब में लिखा—

भगवन कृपा-पत्र तव आयो।
अपनो मत यथार्थ प्रगटन में यह कबहुँ न सकुचायो।
जो जग रसना सों जल पीवत ते सब मांसाहारी।
उनकी दया-रहित रद-रचना मनुज लोक सों न्यारी॥
स्वयं सिद्ध यह प्रकृति नियम है फिर कोउ बात बतावै।
याही सों कपि खात न आमिस सुलभ सत्य दरसावै॥

किसी मित्र को नये वर्ष की बधाई देते हुए आपने लिखा था—

यह नई बरस।
देइ तुमकों सकल मंगल मंजुफल-प्रद हरस॥
प्रकृति पावन परम भावन प्रेमकर प्रिय परस।
आत्म-गौरव दिव्य दुतिमय अभय जीवन दरस॥
सुहृद सत जन सरल सुन्दर सदय सहृदय सरस॥

किसी लेखक ने अपनी पुस्तक 'मनोविलास' पंडितजी के पास भेज दी। आपने उसकी स्वीकृत इन पंक्तियों में दी—

देखा मनोविलास।
पढ़कर पूरन प्रेम भाव का उर में हुआ विकास॥
यही विनय है सतचित आनंद पावन जगदाधार।
दें सामर्थ्य तुम्हें जिससे हो हिन्दी का उपकार॥

अपने एक मित्र को पत्र लिखते हैं—

आहा! आई आई आई तव पाती अनन्त सुखदाई।
दरसन-बिरह-बिथित जो अँखियाँ तिनकी तपति बुझाई॥

ज्यौंहो हँसमुख चपल चारु चखलैानो छबि दरसाई ।
ललकि धरी सो धाइ हृदय में पलक कपाट चढ़ाई ॥
लहि इकन्त निहचन्त सकल विधि सत्य करत मनभाई ।

अपने परम मित्र लक्ष्मीदत्तजी के कमरे पर गये। उन दिनों लक्ष्मीदत्तजी डाक्टरी पढ़ रहे थे। आपने पद्य लिखकर उनके दरवाजे पर टाँग दिया।

प्रथम पाठ जो पढ़त हम मानव-जाति सनेह ।
कार्य्य हमारो सकल बिधि बिमल दया कौ गेह ॥

वैश्य-बोर्डिङ्ग-हाउस में गये। उस समय रात के ८ बजे थे। उनके मित्र माधुरीप्रसादजी ने कहा—"पंडितजी हमारी हस्तलिखित पत्रिका "भारती" के लिये कुछ कविता बना दीजिये"—सत्यनारायणजी ने उत्तर दिया–"इस वक्त दिमाग़ काम नहीं करता।" अयोध्याप्रसाद जी पाठक के घर के लिए चल दिये। मुजफ्फरखाँ के बाग़ तक पहुँचे थे कि लौट आये और बोले–'अच्छा लेउ लिख लेउ"—

अक्षर ब्रह्मविचार सार में मग्न मुदित मन ।
प्रकृति हंस आसीन स्वयं प्रतिभा नवजीवन ॥
बिलसत प्रभा प्रदीप्त मंजु मुख मंडल पावन ।
ब्रह्मचर्य्य पूरन प्रताप जगमगत सुहावन ॥
अभिनव जग जागृति भावमय कर बीणा झंकारती ।
अस श्रुति-पाणी हो सदय सत वरदा वाणी, भारती ॥

श्रीयुत राधाचरणजी गोस्वामी ने अपने पुत्र के विवाहोत्सव के लिये जो पत्र भेजा था, उसमें लिखा था—

"संवत् वसु रस अङ्क विधि,
माधव हरि दिन श्याम।
करिके कृपा बरात में,
चलिये मथुराधाम॥

यह पत्र २६ अप्रैल सन् १६११ को, जिस दिन बरात जानेवाली थी, उसी दिन, पण्डितजी को मिला। आपने उत्तर दिया—

सुखद पत्र मिल्यो प्रिय आपको—
अवसि, किन्तु लह्यो दिन के दिना।
सिर धरौं त्वपदाम्बुज रेणु कों,
अस कहाँ मम मंजुल भाग हैं॥

यहँ बड़े उरझे गृह-कार्य्य हैं,
न अवकाश प्रभो यहि हेतु सों।
सदय मो अपराध क्षमा करो,
दिन गये कछु श्रीपद परसिहों॥

पंडितजी पद्मसिंहजी ने सत्यनारायण को बहुत दिनों से कोई चिट्ठी नहीं भेजी थी। इसकी शिकायत आपने इन शब्दों में की थी—

पदम, तव हृदय बड़ो बेपीर।
सोचत ना यह भँवर बिचारो कब कौ अहहि अधीर॥
रुचिर अधर दल तनिक न खोलत का अपराध बिचारयो।
पुजवत साध न याके मनकी टेरि-टेरि ये हारयो॥
कोमल परम कहावत तोऊ कठिन भये अब ऐसे।
काऊ कौ दुख दरद न मानत जानत ना कछु जैसे॥

अपने एक अन्य मित्र को आपने लिखा था —

प्रियतम कृपापत्र तव आयो।
बड़े प्रेम से ताहि चूमि के अपने दृगनि लगायो॥
जब तुम जानत ब्रजभाषा कों निज प्रानहुँ सों प्यारी।
सब प्रकार सेवा के मोसों हो पूरण अधिकारी॥
हरिश्चन्द्र श्रीधर ग्रन्थनु में प्यारी रुचि सों पागो।
सत्य सनेह सहित नित नूतन भारतमन अनुरागो॥

रसिकतापूर्ण-स्वभाव

सीधे सादे और सरल होने पर भी सत्यनारायणजी ख़ूब हँसते-हँसाते थे। मुहर्रमीपन तो उन्हें छू भी नहीं गया था। मज़ाक करनेमें वे बड़े कुशल थे। सत्यनारायणजी को रस-भरे रसिये बहुत पसन्द थे। श्रीयुत सत्यभक्तजी ने अपने १८।११।१६ के पत्र में सत्याग्रह-आश्रम (साबरमती) से लिखा था—

"सत्यनारायणजी को रसियोंका शौक तो था पर जहाँ तक मुझे मालूम है उन्हें विशेष रसिया याद न थे। एक दिन उन्होंने भरतपुर की समिति में मुझ से तथा अन्य कई व्यक्तियों से, जो वहाँ बैठे थे, इस विषय में पूँछा। मैं तो इस सत्कार्य के करने का साहस न करसका; पर एक दूसरे व्यक्ति ने कई रसियों के कुछ भाग सुनाकर कविरत्नजी को कुछ बानगी दिखलाई। उनमें से एक रसिये की टेक उन्हें विशेष पसन्द आई थी और उसे वे कभी-कभी गाया भी करते थे।

"—बछेरी डोलै पीहर में!"

ब्रजमें—विशेषकर भरतपुर में—रसियों का विशेष प्रचार है ग्रामीण लोग इन्हें प्रायः गाया करते हैं। सत्यनारायण को इतनी कोई चीज़ पसन्द नहीं थी जितनी ग्रामीण आदमियों की संगति। सत्यनारायण बड़े चाव और आग्रह से उनसे रसियों को सुना करते थे। एक बार आपने स्वयं एक सुरुचि-पूर्ण रसिया बनाकर अपने मित्रों को सुनाया था।

तुम चौंना मोकूं तारौ, जगत रत नाम तिहारौ।
बलि तारौ, प्रहलाद उबारौ, तुम गजको संकट टारौ॥
तुम चौंना मोकूँ तारौ॥*

समाचार पत्रों में कभी-कभी आपके नाम पर कुछ मज़ाक छपता था तो उसे पढ़कर आप ख़ूब हँसते थे और उसे अपनी डायरी में नक़ल भी करलेते थे।

सत्यनारायणजी के विवाह के बाद श्रीयुत "मौजी" ने आपके विषय में "भारतमित्र" में लिखा था—

"सत्यनारायणजी अब काव्य क्यों महाकाव्य लिख सकते हैं; क्योंकि हरिद्वार में उन्हें कविता की कुइया मिल गई है। अब वह मज़े में नित्य कविता उलीचा करें!"

---

* जब भरतपुर के वर्तमान महाराज को अधिकार मिले थे, पंडितजी भरतपुर गये थे। उन्होंने उस अवसर के लिये यह एक रसिया भी बनाया था जो कई जगह गाया गया था।

बनि दुलहिन सी रही आज
भर्तपुर नागरिया।
द्वार-द्वार में लिखना काढ़े,
जुरचौ उछाह समाज॥
भर्तपुर नागरिया॥

जाट लोग भरतपुर का उच्चारण भर्तपुर ही करते हैं।

श्रीयुत "गड़बड़ानन्द" ने १८ जनवरी सन् १६१५ के 'प्रताप' में लिखा था—

"श्रीयुत श्रीधरजी की कविता के विषय में पूज्य "सरस्वती" सम्पादक की राय है—

"बाला-बधू-अधर-अद्भुत-स्वादुताई ।
द्राक्षाहु की मधुरिमामधु की मिठाई ॥
एकत्र जो चहहु पेखन प्रेम-पागी ।
तो श्रीधरोक्त कविता पढ़िए अनुरागी" ॥

"चौपटनन्दजी" इसी वज़न की निम्नलिखित कविता कविरत्न सत्यनारायणजी के विषय में कर रहे हैं—

काली नई मिरच तीखन तीतताई ।
डाला कुनैन ज्वर की अथवा दवाई ॥
गाँजा अफ़ीम विजया सब भाँति फीका ।
देखो सुजान कविता कविरत्नजी का ॥

८ फ़र्वरी के "प्रताप" में "गड़बड़ानन्द" के किसी भाई-बन्दका निम्नलिखित मज़ाक छपा था और सत्यनारायण ने इसे डायरी में नोट कर लिया था ।

"सारन के पाण्डेजी को रंज है कि रिश्तेदारी होने पर भी हिन्दी के इतिहास-रचयिताओं ने एक लाइन से भी कम उनके विषय में लिखी है । ऐसे ही और लोग भी नाक-भौंह सिकोड़ रहे हैं; लेकिन जो चाहते हों कि संसार उनकी प्रतिष्ठा करे तो उनको चाहिये कि

वे अपनी प्रतिष्ठा आप करें। शायद यही सोचकर अखिलानन्द महाराज और सत्यनारायण बाबा दुनियाँ के लाख नाना कहने पर भी कविरत्न होगये। सुनते हैं, अब भी नन्दकुमारदेव शर्म्मा को साहित्य-अष्टादशांग की पदवी मिलनेवाली है!"

कभी कभी पंडितजी बड़े आनन्द के साथ गाया करते थे—

पिया बिन नागिन काली राति।
कबहु रैनि यह होति जुन्हैया डसि उल्टी ह्वै जाति॥

और कभी मज़े में आकर यह भी गाते थे—

छोहरा मोड़ दै तीर कमान,पपीहरा काढ़ैं लेतु पिरान।
पापी,
वु तो पीउ-पीउ किलकारै, मोहि मारै मारै मारै।

हँसी और मज़ाक

सत्यनारायणजी ख़ूब हँसते और हँसाते थे। मीठी मीठी चुटकियाँ लेना भी जानते थे। जब आप आगरे के चतुर्वेदी-सम्मेलन में सम्मिलित हुए तो मैंने मज़ाक में आपसे कहा—"पंडित आप सनाढ्य से चौबे ख़ूब बने"! सत्यनारायणजी ने उत्तर दिया—"आप भी तो कभी-कभी पंडित तोताराम सनाढ्य के नाम से लिखा करते हैं इस लिए आप सनाढ्य हुए। बात यह हुई है कि एक चौबेजी सनाढ्य बन गये हैं और एक सनाढ्य ने चतुर्वेदी जाति की शरण ली है!"

मैंने कहा—"तब तो हर तरह से हमारी जाति का लाभ ही लाभ हुआ है। एक थर्डक्लास लेखक की जगह उसे एक कविरत्न मिल-

गया है।" मुस्कराकर पंडितजी चुप होगये। कभी-कभी आप कहा करते थे—"चतुर्वेदी केदारनाथजी ने सनाढ्यों के पत्र का कुछ दिनों तक सम्पादन किया था। उसी का बदला आज मैं 'चतुर्वेदी' का सम्पादन करके देरहा हूँ।"

तुम्हारा ख़ानसामा

एक बार सत्यनारायणजी किसी मित्र को पत्र लिखने बैठे। आप ने सोचा कि पत्र के अन्त में कोई उर्दू शब्द लिखना चाहिए। बहुत कुछ सोचा, पर कोई अच्छा उर्दू शब्द याद नहीं आया। इसलिये आप ने अन्त में लिखा—"तुम्हारा ख़ानसामा सत्यनारायण"। बहुत दिन तक "तुम्हारा ख़ानसामा" का मज़ाक रहा। सत्यनारायणजी के मित्र श्रीयुत केदारनाथजी भट्ट व चतुर्वेदी अयोध्याप्रसादजी अब तक इस मज़ाक की याद करके हँसा करते हैं।

निरभिमानता

भूपसिंह नामक एक सज्जन सत्यनारायण के साथी थे। चार पाँच वर्ष पहले मिढ़ाकुर में पढ़े थे और पीछे वहीं पढ़ाने भी लगे थे। वे भी कुछ कुछ कविता करते थे। उनकी कविता का नमूना एक सज्जन ने बम्बई में हमें सुनाया था।

"भूपसिंह भिनि भिनि भनन सितार बाजै,
बाजत तमूरा ताम ताम ताम तिनिनिनि।"

सत्यनारायण भूपसिंहजी को 'गुरुदेव' कहा करते थे; क्योंकि कविता करने में सत्यनारायण ने उनसे कभी-कभी सहायता ली थी।

सादगी और भोलापन

सत्यनारायण के व्यक्तित्व में ये दो बातें सबसे अधिक आकर्षक थीं। फैशन के चक्कर में वे कभी नहीं पड़े। उन्हें ग्रामीण होनेका गौरव था। उनके विद्यार्थी-अवस्था के मित्र श्रीयुत दरबारीलालजी लिखते हैं:—

"जब कभी मुझसे मिलते तो पहला प्रश्न यही होता था - "मैं अंग्रेज़ी पढ़ा हुआ तो नहीं मालूम होता?" इस पर मैं पूँछता—"इस प्रश्न से आपका उद्देश्य क्या है?' आप उत्तर देते—"आज कल बहुत से पढ़े-लिखे जंटिलमैन' होते जाते हैं; पर मैं तो जंटिलमैनी से बचने के लिये सामान्य वस्त्र पहनता और सादगी से रहता हूँ"? गौरव की बात तो यह थी कि उनकी सरलता और सादगी में कोई कृत्रिमता नहीं आने पाती थी। उनके हृदय का भोलापन और वस्त्रों की सादगी से सोने और सुगंध का मेल हो गया था। कोरमकोर वस्त्रों की सादगीवाले तो आजकल हज़ारों ही पाये जाते हैं; लेकिन उनमें सत्यनारायणजी की हार्दिक सरलता का शतांश क्या, सहस्रांश भी नहीं मिलेगा। बात यह है कि जैसे वे भीतर थे, वैसे ही ऊपर।"

श्रीयुत बदरीनाथजी भट्ट ने "सरस्वती" में लिखा था—

'"सत्यनारायणजी निरभिमानी इतने थे कि एक रात को इस नोट के लेखक के मकान पर टेसू के गीत गानेवाले गँवारों के साथ बेधड़क बैठकर आप भी उनके सुर में सुर मिलाकर और एक कान पर हाथरखकर ज़ोर ज़ोर से तान अलापने लगे।'

सत्यनारायण और एण्ड्रूज़

सत्यनारायण की मृत्यु के बाद ६ वर्षों में मुझे बीसियों साहित्य-सेवियों से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, लेकिन मुझे सत्यनारायण कैसा भोलापन केवल एक ही मनुष्य में दीखा है, यानी भारत भक्त-एंड्र्यूज़ में। सत्यनारायण कवि थे। मि० एंड्र्यूज़ भी कवि हैं। सत्यनारायण सांसारिकता से कोसों दूर थे, मिस्टर एण्ड्र्यूज़ को दुनयवीपन छू भी नहीं गया। सत्यनारायण ने निस्स्वार्थ भाव से साहित्य-सेवा और समाज-सेवा की। मिस्टर एंड्र्यूज़ भी ऐसा ही कर रहे हैं। भोलेपन में दोनों को सगे भाई समझना चाहिये। सत्यनारायण को धोखा देना कोई मुश्किल बात नहीं थी और मिस्टर एण्ड्र्यूज़ को धोखा देना आसान है। मुझे दोनों के ही संसर्ग में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और मैं कह सकता हूँ कि दूसरों को उत्साहित करने में, किसी के अवगुण को न देखकर उसके गुण ही गुण देखने में, हृदय की कोमलता और प्रेमपूर्ण स्वभाव में सत्यनारायण और एंड्र्यूज़ समान ही हैं। सत्यनारायण के स्वर्गवासके १८-२० दिन बाद ही मुझे मिस्टर एण्ड्र्यूज से साक्षात् परिचय करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मिस्टर एंड्र्यूज़ के निष्कपट और प्रेमपूर्ण व्यवहार को देखकर मैंने दिल में सोचा –'अहा! क्या ही अच्छा होता, सत्यनारायणजी जीवित होते और एंड्र्यूज़ से मिलते।' यदि मैं चित्रकार होता तो सत्यनारायण और एण्ड्र्यूज़' के हृदयालिङ्गन का चित्र खींचता और

चित्र के नीचे लिखता—"पूर्व और पश्चिम का मिलन !" दुर्भाग्यवश सत्यनारायणजी की जीवित अवस्था में मैं उन्हें एण्ड्र्यूज़ साहब से नहीं मिला सका। पर सत्यनारायणजी के स्वर्गवास होने पर मेरी प्रार्थना पर मि० ऐण्ड्र्यूज़ सत्यनारायण के तैल-चित्र का उद्घाटन संस्कार करने के लिए फीरोज़ाबाद पधारे थे और यह जीवनचरित्र भी भारत-भक्त एण्ड्र्यूज़ के ही अर्पित किया गया है। मुझे विश्वास है कि सत्यनारायण की स्वर्गीय आत्मा इससे सन्तुष्ट होगी।

चरित्र पर एक दृष्टि

इस विषय में सत्यनारायणजी के मित्र श्रीयुत गुलाबरायजी एम०ए०ने जो कुछ लिखकर भेजा है वह संक्षेप में सत्यनारायणजीके चरित्र पर अच्छा प्रकाश डालता है। इसलिये उसे हम यहाँ उद्धृत किये देते हैं।

"यशेच्छा महानपुरुषों की अन्तिम कमज़ोरी है। काव्य के उद्देश्यों में यश पहला स्थान पाता है। 'काव्यं यशसे अर्थ कृते' इत्यादि)। प०सत्यनारायणजी में न यशेच्छा थी और न धनेप्सा। इस-लिए वे वर्तमान कवियों में रत्न-रूप थे। उन्होंने जो कुछ लिखा 'स्वान्तः सुखाय' लिखा। सच्ची कला का उदय तभी होता है जब उसका अनुशीलन किसी बाहरी अर्थ वा प्रयोजन से नहीं होता। परीक्षा-काल में विद्यार्थियों की सारी शक्तियाँ पाठय-पुस्तकों में केन्द्र-स्थ हो जाती हैं; किन्तु कविरत्नजी को "धोये-धोये पातन की" शोभा-वर्णन में परीक्षा की भी ख़बर न रही! इससे अधिक और कविता

का प्रेम क्या हो सकता है ? पंडितजी ने विश्व-विद्यालय की परीक्षा में फ़ेल होकर कविता की सच्ची परीक्षा में उच्च पद पाया।

उनके चहरे पर सन्तोष और शान्ति की एक अलौकिक छटा रहती थी। वास्तव में वह इस कठोर संसार के योग्य न थे। इसीलिये वह मृत्यु के छाया-पथ द्वारा शीघ्र ही अनन्त सुख और शान्ति के लोक को प्रयाणकर गये। जितने दिन रहे, उतने दिन इस संघर्षणशील संसार को शान्ति-पाठ पढ़ाते रहे। यद्यपि उनका जीवन कष्टमय था, तथापि वे सहनशीलता के माधुर्य्यसे निकटस्थ लोगों के माधुर्य्य में आनन्द की झलक डालते रहे। आपने फ़ैशन के केन्द्र में, सादगीके जीवन का, अपने उदाहरण से, प्रतिपादन किया। दूसरों के अनादर से कभी रुष्ट नहीं हुए। यदि कभी किसी ने उपहास किया तो स्वयं ही उस उपहास में शामिल हो गये! रोष को अपने हृदय में स्थान नहीं दिया। दुखने कभी उन पर जय नहीं पायी। बढ़ती हुई यश की लहर ने उन्हें कभी मदोन्मत्त नहीं किया। कविता से नितान्त अनभिज्ञों को भी गुरुपद देने को तैयार रहते थे। अरसिकों तक को कविता सुनाने में संकोच न था। वह सबको अपने से बड़ा ही समझते थे। आगरे में कोई ऐसी सभा न होती जिसका मूल्य उनकी कविता द्वारा न बढ़ जाता हो। ऐसा कोई पत्र न था जिसके सम्पादक को उन्होंने अपनी कविता से आभारी न किया हो। नगर में ऐसा कोई विद्यार्थी न था जो उनका मित्र न हो। उन्होंने अपनी विद्या और कवित्व शक्ति को विनयगुण से गौरवान्वित किया था। सत्यनारायणजी विनयशीलता, निरभिमानता

और हास्य तथा माधुर्य्यमय करुणा की जीवित मूर्ति थे। विशेषतः करुणरस की कविता सुनाते समय कविता के भाव उनके मुख पर व्यंजित हो जाते थे और वे करुण-रस की साक्षात मूर्ति बन जाते थे। समय की अनन्तता में उनको पूर्ण विश्वास था। उनके जीवनादर्श ने महात्मा तुलसीदासजी के निम्नलिखित पद को अपनाया था।

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपाल कृपा ते सन्त सुभाव गहौंगो॥
यथा लाभ सन्तोष सदा काहू सौं कछु न चहौंगो।
परहित निरत निरन्तर मन क्रम बचन नेम निबहौंगो॥
परुष वचन अति दुसह श्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
बिगत मान सम शीतल मन परगुन नहिं दोष कहौंगो॥
परिहरि देह-जनित चिन्ता दुख सुख-सम बुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अबिचल हरि-भक्ति लहौंगो॥"

श्रीयुत गुलाबरायजी के कथन से मैं भी पूर्णतया सहमत हूँ। यहाँ पर मैं यह कह देना चाहता हूँ कि सत्यनारायणजी की विद्वत्ता व कवित्व शक्ति ने मेरे हृदय को उतना आकर्षित नहीं किया जितना उनके सरल स्वभाव, निष्कपट व्यवहार और सहृदयता ने। शान्ति-आश्रम मथुरा में स्वामी रामतीर्थ के सामने अपनी कविता पढ़ते हुए सत्यनारायण मेरे हृदय को उतना आकर्षित नहीं करते जितने भिढ़ाखुर के मदर्से में —

"देखौ अँगरेजन कौ खेल, निकारयो माटी में ते तेल।
जरै जैसे घिय कैसौ दिवला!"

गाते हुए सत्यनारायण। 'कुली प्रथा' या 'कामागाटामारू-दुर्घटना' के लिये शोकोत्पादक कविता पढ़नेवाले सत्यनारायण के स्वर से मेरी हृदय तंत्री उतनी प्रतिध्वनित नहीं होती, जितनी गृहजीवन से पीड़ित "भयो क्यों अनचाहत को संग" गानेवाले साश्रुनयन सत्यनारायण के करुणोत्पादक शब्दों से होती है। सत्यनारायण की वह मूर्त्ति, जब कि वे आगरा प्रान्तीय-सम्मेलन की स्वागत-कारिणी सभा के प्रधान की हैसियत से अपनी विद्वतापूर्ण स्पीच पढ़ रहे थे, मुझे स्मरण नहीं आतीं, लेकिन मधुर मुसक्यान के साथ ठेठ ब्रजभाषा बोलने वाले सत्यनारायण की स्मृति में मैंने कई बार आँसू बहाये हैं। इसी प्रकार सर्वसाधारण द्वारा प्रशंसित उनकी "श्रीसरोजिनी षटपदी" ने मेरे मनको उतना प्रफुल्लित नहीं किया जितना "कली री अब तू फूल भई" नामक उस कविता ने किया है जो एक प्राइवेट पत्र में किसी को भेजी गई थी। लोग कहते हैं कि करुणा रस की कविता करने में सत्यनारायण सिद्धहस्त थे, उत्तर रामचरित्र के करुणामय दृश्यों का अनुवाद उन्होंने बड़ी सफलता के साथ किया है; लेकिन मुझे उनका कोई भी पद्य इतना करुणा-जनक नहीं दीख पड़ता जितना उनके दुःखान्त जीवन-नाटक का अन्तिम पट! बात तो असल में यह है कि Satyanaryan was much greater as a man than as a poet. सत्यनारायण जिस कोटि के कवि थे, उससे कहीं अधिक ऊँचे दर्जे के वे मनुष्य थे।

ग्रामीण मित्र क्या कहत हैं ?

सत्यनारायणजी का एक छोटा सा फ़ोटो लेकर मैं धांधूपुर गया था। उसे मैंने वहाँ के गँवार किसानों को दिखलाया। देखकर उनकी आँखों में आँसू झलक आये। वे कहने लगे—"हाँ, महाराज जे तो ऐन मैन सत्यनारायण ही बैठे हैं!" एक ने कहा—"का कहैं महाराज! हम चारि आदमी बड़े मित्र हैं सो हमारी तो मानों एक भुजाई टूटि गई।" दूसरा बोला—"हल चलाउते वखत कुअन पै राम लेत भये, खेत पै, खलिहान में, वे हमेस हमारे ई साथ रहते!' तीसरा कहने लगा—"सत्यनारायण पैलें हमको अपनी कविता सुनाइ देते और जब हम कहि देते कि ठीक है तब वे बाइ छपावइबे भेजते। वाकी तो रहि-रहि कें यादि आवति है!" चौथे ने कहा—"हम कैसें भूलें। जब सावन आवते, तब सत्यनारायण 'अहा' कहिकें "घिरि आउरी बदरिया कारी बरसन वारी" गाइबे करते। खेत में बैठे कविक्त बनाइबे करते।"

पाँचवाँ बोला—"हम का कहैं, धांधूपुर को तो भाग ई फूट गयौ। बड़ौ साहिर (शायर) आदमी हो, ताई तें बाकौ नाम दूरि-दूरि फैलि गयौ।"

कायर कूर अनिष्टा नारी चुगल मरौ।काऊ जानी ना।
अरु कौआ कुत्ता किरिमि गिजाई इनकी मौत बखानी ना ॥
मरिवौ जगह सराहैं राजा साहिर सूर सती कौ।
रन देखौ करन जती कौ ॥

सो महाराज बु तौ साहिर* आदमी रहौ।"

सत्यनारायण का चरित्र-चित्रण इससे उत्तमतर रीति से भला कौन कर सकता है?



* शायर—कवि

सत्यनारायणजी की कुछ स्मृतियाँ



युत भगवन्नारायणजी भार्गव, वकील (झाँसी) लिखते हैं :—

"मैं सन् १६१० की जुलाई में सेन्टजान्स कालिज में शिक्षा प्राप्त करने गया था। वहीं पर सत्यनारायणजी का प्रथम दर्शन हुआ था। एक स्वदेशी बंडी पहने, गले में अरुण डुपट्टा, देशी टोपी और देशी धाती । वाह ! कैसी मनोहारिणी स्वदेशभक्ति की मूर्ति थी ! मैं भार्गव बोर्डिङ्ग-हाउस में रहता था। सप्ताह में एक बार तो अवश्य ही दर्शन दिया करते थे। जब हमलोग भोजन करने बैठते थे तब वे अपनी पुरानी गाथा सुनाया करते थे। भोजन करते समय यह अवश्य कह लेते थे कि भाई हम तो आधे भार्गव हो गये। × × × आप कृष्ण के भक्त थे। प्राय: अपनी कविताओं द्वारा उनको बड़े गहरे उलाहने दिया करते थे। मेरी ईश्वर-प्रार्थना आदि देखकर कहा करते थे कि तुम ईश्वर का पीछा छोड़ो और जो उनसे न बनती हो तो माखन-मिश्री चुराने और खानेवाले की वचनावली सुनावो। × × आप मुझको पत्र भी कविता में लिखते थे। उनमें बातें यद्यपि साधारण होती थीं पर कभी कभी उनमें नवीन भाव भी आ जाता

था। एक बार मैंने पत्र भेजा; परन्तु जिस दिन धाँधूपुर डाक जाती थी उसके एक दिन बाद मैंने उसे डाक में डाला, इस कारण एक सप्ताह में मिला। आपने प्रत्युत्तर दिया—

''प्रियवर पायो पत्र तुम्हारो सब प्रकार सुख-मूल।
किन्तु मिल्यो छै दिना पिछारी डाक भई प्रतिकूल॥''

आप प्राय: गणागण शुभाशुभ शब्द का भी विचार रखते थे और यह भी आपका विश्वास था कि कविता के भाव का प्रभाव कवि पर भी पड़ता है। जब आपके गुरु बाबा रघुबरदास का सहसा देहान्त होगया तो आपने मुझसे कहा—"मुझको यह आशंका न थी कि गुरुजी का देहान्त अभी हो जायगा। कदाचित यह उस छन्द का प्रभाव है जो मैंने उत्तर-रामचरित्र के अनुवाद में लिखा है। रामचन्द्रजी सीताजी के प्रति कहते हैं—"हा हा दैवी फटत हृदय यह जगत शून्य दरसावे"। आप कहते थे कि गुरूजी बिन जगत् शून्य सा ही हो गया। एकबार "सरस्वती" में बाबू मैथिलीशरण जी गुप्त की एक कविता निकली। उसका पहला पद यह था—"नर हो न निराश करो मन को" कविरत्नजी बोले कि ऐसा लिखना ठीक नहीं; क्योंकि पढ़ने में यह पद ऐसा भी आ सकता है. न रहो न निराश करो मनको!"

जब आपको राजयक्ष्मा का रोग हो गया था और बहुत कष्ट था तब भी आपकी काव्यस्फूर्ति जैसी की तैसी बनी थी। उन्हीं दिनों आपने लिखा था—

"बस अब नहिं जात सही।
बिपुल बेदना बिविध भाँति जो तन मन व्यापि रही ॥"

एक बार आप संक्रान्ति पर गंगा-स्नान करके इक्के में में लौट रहे थे। सड़क की ऊँचाई निचाई के कारण इक्के में बहुत दचके लगते जाते थे। उसी समय इक्के में बैठे-बैठे आपने यह पद्य लिखा था—

"दया ऐसी कीजै भगवान।
जासों हिन्दू जाति करै यह प्रेम-गङ्ग असनान ॥

मैंने आपसे कई बार झाँसी पधारने को कहा था। पर आप यही कह दिया करते थे—"जब झाँसी के झाँसे में आजाऊँगा तब वहाँ भी पहुँच जाऊँगा। परन्तु आप तो किसी दूसरे के ही झाँसे में आगये और निष्ठुर होकर चल दिये! किसी की परवाह भी न की!"

श्रीयुत केदारनाथजी भट्ट एम० ए० एल०-एल्० बी० (आगरा)

लिखते हैं:—

"सत्यनारायण से मैं प्रायः सिड़ी कहा करता था और जिस भाव से मैं कहता था उसी भाव से इस उपाधि को वह ग्रहण कर लेता था। अब ऐसा शुद्ध-हृदय, जो दर्पण के दर्प को लज्जित करने वाला था, कहाँ मिल सकता है, यह मैं नहीं जानता, ईश्वर ही जाने। उसका पूरा जीवन मनुष्य रूपी सेवा-समिति का

आदर्श था। उसके गुण मैं आपसे क्या कहूँ। आप तो स्वयं उससे मिले थे। मेरा जी भर आया है, आखें तर हो आई हैं! लीजिये इस कागज़ पर भी एक बूंद आंसू गिरा! यही आप को इस समय उसकी स्मृति में भेजता हूँ!!

श्रीमान पूज्य पं० श्रीधर पाठक (प्रयाग)

ने मुझे अपने एक पत्र में लिखा था—

"प्रियवर सत्यनारायण की असामयिक मृत्यु से मुझे जो आन्तरिक दुःख हुआ है भाषा द्वारा पूर्णतया प्रकट नहीं किया जा सकता। मैं उनको उनकी १७-१८ वर्ष की वयस से जानता था। प्रथम परिचय पत्रालाप द्वारा हुआ था। कुछ काल के अनन्तर प्रत्यक्ष संलाप और समागम से वह पुष्टतर हुआ और फिर स्वतः अधिकाधिक प्रगाढ़ता प्राप्त करता गया। यद्यपि अभिन्न मैत्री के एकान्त तट तक कभी नहीं पहुँचा। समागम भी लम्बे लम्बे अन्तर से हुआ था, अतः मुझे उनकी मानसिक अन्तर्वृत्तियों का पूरा पता न लग सका। मुझे सत्यनारायणजी की कवित्वशक्ति की उत्तरोत्तर उन्नति देख हार्दिक आनन्द होता था। वह एक बड़े होनहार पुरुष-पुंगव थे और यदि पूर्ण "पुरुषायुष जीविता" प्राप्त करते तो अपनी असाधारण शक्ति द्वारा स्वदेश की अनेक प्रकार से सेवा कर जाते। मेरी बातों को वह ध्यान से सुनते थे और सलाहों को प्रायः काम में लाते थे। उनकी स्वाभाविक शालीनता उन्हें सदा सुजनोचित सौम्यता से

भूषित रखती थी। उनकी प्रतिभा उनसे साहित्य-सेवा का उत्कृष्ट काम लेती थी। उन्हें मैं अपने आत्मीयों में समझता था। गत हेमन्त में जब उनका प्रयाग आगमन हुआ था, उनके "मालतीमाधव" के कुछ अंश के श्रवण का मुझे सुअवसर प्राप्त हुआ था। उनका उच्च कोटि का कवि होना उनकी रसीली रचनाओं से निर्विवाद निर्धारित है। जब तक संसार में हिन्दी भाषा का अस्तित्व है, सत्यनारायणजी की कविता का शिष्ट समाज में दूसरे सत्कवियों की कविता के समान ही समादर रहेगा।

श्रीयुत लोचनप्रसादजी पांडेय (बालपुर)

लिखते हैं -"आगरा पहुँचकर हम बड़ी कठिनाई से श्रीयुत कुंवर हनुमन्तसिंहजी रघुवशी के निवासस्थल का पता लगा पाये। पहुँचतेही हमने प्रार्थना की कि कविरत्नजी के पुन्यदर्शन कराने की व्यवस्था होनी चाहिये। कुँवरजी महोदय ने हमारी विनती पर उचित ध्यान दिया। रात्रि को कोई सात बजे के समय कविरत्नजी ने हमारे डेरे पर पधारकर हमें कृतार्थ किया। दिव्य दर्शन हुए–.खूब दर्शन हुए! नेत्र शीतल और पवित्र हुए। उनकी सादगी, सरलता, सहृदयता और शीलता देखकर हम आश्चर्य्य और हर्ष-मुग्ध होरहे।

जब जबलपुर-सम्मेलन में कविरत्नजी के दर्शन न हुए थे तब हम बड़े निराश हुए थे कि अब उनके कोकिलकलकंठ के कलित गान-श्रवण का सुयोग प्राप्त करना कठिन है। पर वह हमारी निराशा जाती रही। किंचित काल सामान्य शिष्टाचारकी बातें होती

रहीं। फिर तो हमें अर्धनिमीलित नेत्र, चित्ताकर्षक मुखाकृति एवं हर्ष मुद्रा-संयुक्त एक नितान्त हिन्दू-वेशभूषाधर सज्जन की स्वर माधुरी ने मंत्रमुग्ध सा बना दिया। उस विविध भाव परिपूरित उदात्त सरस काव्यामृत के सहित आल्हाददायिनी नाद लहरी हृदय एवं कर्णकुहर को एक साथ झंकारित करती हुई अभूतपूर्व सुखानुभव कराने लगी। हमने अपने को धन्य एवं भाग्यवान जाना। स्वरचित सङ्गीत को ऐसे सुस्वर एवं सफलता से गायन कर सकने की कला प्राप्त करने पर हमने कविरत्नजी को बधाई दी; क्योंकि यह बात किसी विरले भाग्यधर के भाग्य में घटित होती है। अस्तु,दोघंटे का समय कहते-कहते बीत गया। हम बाहर फाटक तक कविरत्न को पहुँचाने गये। उनका वह अमृतमय मधुर व्रजभाषा-भाषण तथा गाढ़तर स्नेहालिङ्गन आजन्म हम नहीं भूलसकते। × × ×

दूसरे दिन कोई ६ बजे के समय हम लोगों का पुनर्मिलन हुआ। नाना प्रकार की साहित्य-चर्चा हुई। खड़ीबोली, व्रजभाषा, आधुनिक गद्य-साहित्य, पद्य-साहित्य, सुरुचिपूर्ण सङ्गीत आदि पर बातें होती रहीं। फिर कविरत्नजी हमलोगों को अपने आगरे के "विश्राम-निलय' के दर्शन कराने ले चले। वहाँ भी अमित आनन्द रहा। कविता-पाठ, सङ्गीत-गान, काव्य-समालोचना क्रम-क्रम से सब का आदर हुआ। स्वअनुवादित "मालतीमाधव" नाटक के उत्तम उत्तम स्थलों के अनुवाद आपने पढ़कर हमें सुनाये। स्वरचित पुस्तक तथा "चतुर्वेदी" की एक जिल्द और कुछ प्रतियाँ उपहार में प्रदान करने की कृपा की। हमारे लिये स्नान का समय टालदिया,

"भोजन पीछे होता रहेगा" यह कहकर हमें कथारस में प्लावित रखा। कहाँ तक कहें, हमारे जैसे समान्य व्यक्ति के प्रति प्रथम साक्षात के समय ही जैसी आत्मीयता और विमल बन्धुतापूर्ण-प्रेम भाव का परिचय उन महान आत्मा ने दिया वह उनके स्वर्ग-सुलभ मानव-दुर्लभ स्वभाव एवं देवत्व का पूर्ण परिचायक है।

उनसे विदा होकर हम लोग अपने वास स्थलपर तो आगये पर मन यही चाहता था कि कविरत्नजी के साथ हम कुछ काल और रहते एवं उनके 'धांधूपुरा' तथा कालिन्दी-कूलस्थ, कीर-कोकिल केका केकी के कलगान से मुखरित सुरम्य कुंज-पुंज तथा वनकानन के दर्शन से अपूर्व आल्हाद लहते। पर वह सुयोग अब कहाँ!"

श्रीयुत भवानीशंकरजी याज्ञिक, भरतपुर

लिखते हैं:—

कविरत्नजी साँस के रोग से पीड़ित थे और अपनी चिकित्सा कराने के लिये ही काकाजी (पूज्यपाद पंडित गयाशङ्करजी बी० ए०) के आग्रह से भरतपुर आये थे। उन दिनों उनकी दशा बहुत शोचनीय थी। महीनों से खांसी के कारण रात को सोये नहीं थे। कविरत्नजी नींद न आने के कारण अपना मन कविता गानमें लगाया करते थे। उनका लगभग रातभर जागरण सा हुआ करता था। इस जागरण को कविरत्नजी 'नाइट-स्कूल' कहा करते थे। उनका इलाज भरतपुर में वैद्य बिहारीलालजी तथा डा० ओंकारसिंहजी ने किया था। परन्तु फल सन्तोषजनक नहीं हुआ। अन्त में एक महात्मा ने कविरत्नजी को बबूल की छाल तथा उसके गोंद की एक दवाई बताई

जिससे उन्हें शीघ्र ही आश्चर्यजनक लाभ हुआ। इस ओषधि की कविरत्नजी बहुत बड़ाई किया करते थे। यहां तक कि इसे उन्होंने प्रयाग से प्रकाशित होनेवाले 'विज्ञान' पत्र में भी छपवा दिया था। एक दिवस तो बबूल के गुण-गान में निम्नलिखित दोहा भी बनाकर मुझे दिया था।

कीकरतू कण्टक सहित, पर गुन गन भरपूर!
निज पञ्चाङ्ग प्रभावसों, करत रोग सब दूर॥

उनको गुजराती भाषा और भोजन बहुत रुचिकर था। जब हममें से कोई उनसे व्रजभाषा में बोलता तो कविरत्नजी हमको गुजराती बोलने को बाध्य करते थे। उन्होंने गुजराती बोलना कुछ कुछ सीख भी लिया था। मेरे एक गुजराती पत्र का उत्तर कविरत्नजी ने गुजराती-मिश्रित खड़ी बोली में दिया था। सेन्टजान्स कालिज के प्रोफ़ेसर श्रीयुत कान्तिलाल छगनलाल पाण्ड्या ने उन्हें उत्तर-रामचरित का द्विवेदी मणिभाई नमुभाई बी० ए० कृत गुजराती भाषान्तर भेंट किया था, जिसको उन्होंने गुजराती भाषा सीखने के लिये भरतपुर में कई बार पढ़ा था। नागरी लिपि में प्रत्येक अक्षर पर एक आड़ी लाइन लिखनी पड़ती है जिससे कविरत्नजी बहुत घबड़ाते थे। इसी कारण उन्होंने गुजराती लिपि सीखी। "मालतीमाधव" के अनुवाद के छन्द उन्होंने संस्कृत "मालतीमाधव" की पुस्तक के कोने पर लिखे हैं उसकी लिपि गुजराती मिश्रित नागरी है।

आप को ज्ञात होगा कि पूज्यपाद काकाजी उनके विवाह से सन्तुष्ट न थे। काकाजी ने कविरत्नजी के अन्य मित्रों को भी इस

सम्बन्ध को तोड़ने के लिये बाध्य किया था; परन्तु सब व्यर्थ हुआ। जब सम्बन्ध पक्का हो गया था तब काकाजी ने उन्हें पत्र द्वारा यह दोहा लिख भेजा था कि—

जान-बूझ अजुगत करे, तासों कहा बसाय।
जागत ही सोवत रहे, कैसे ताहि जगाय!।

(वृन्द)

इसके उत्तर में कविरत्नजी ने केवल यही लिखा—'आप सकुटुम्ब पधारकर विवाह की शोभा बढ़ावें और जान-बूझ अजुगत का स्वाभाविक परिणाम आप स्वयम् देखें। (शब्दान्तर सम्भव है, पर अर्थान्तर नहीं) यह लिखना व्यर्थ है कि वह अपने विवाह से सुखी नहीं हुए। एक बार उन्होंने आगरे में मुझसे कहा था कि अब मैं भरतपुर जाने में सकुचाता हूँ। इसके पश्चात् एक दिवस दीग में अचानक काकाजी से उनकी भेंट हो गई।

विवाह हो जाने के बाद वे श्री गिरिराज की परिक्रमा को हर पूर्णिमा को जाया करते थे। यह उनको बीमारी की मनौती के लिये करना पड़ा था। काकाजी से मुँह छिपाते थे। परन्तु एक बार गोवर्धन से सत्यनारायण दीग पहुँचे। मेरे काकाजी उन दिनों वहीं पर नाज़िम थे। मिलना पड़ा। काकाजी को देखते ही लज्जा, पश्चात्ताप आदि के कारण वे एकदम रोपड़े।

भरतपुर में राज्य भर में सर्वत्र हिन्दी-पुस्तकों की खोज की गई थी। उनमें कई नवीन और अलभ्य पुस्तकों का पता चला भी। इसमें काकाजी को कविरत्नजी से बहुत सहायता मिली। यथार्थ में

उन ग्रन्थों के पढ़ने से उनकी कविता-शक्ति बहुत बढ़ गई थी। इस बात को उन्होंने कई बार स्वीकार भी किया था। काकाजी की इच्छा थी कि 'भरतपुर-राज के कवि' नामक एक पुस्तिका कविरत्नजी की सहायतासे बनाई जाय। उन्होंने "मालतीमाधव"का अनुवाद मुख्यतः भरतपुर ही में किया। कभी कभी किसी श्लोक में जो कठिनता प्रतीत होती थी वह राज-पण्डित श्रीयुत गिरिधारीलालजी से पूँछ लिया करते थे। 'मालतीमाधव' के अनुवाद हमें उन्हें कविवर सोमनाथ कृत 'माधव-विनोद' से बहुत सहायता मिली थी। इस बात को कविरत्न जी ने स्वयम् "मालतीमाधव' की भूमिका में लिखा है। शोक की बात है कि राज कवि सोमनाथ कृत "माधव-विनोद" का कविरत्नजी की मृत्यु के बाद से पता नहीं! यह अलभ्य ग्रन्थ पंडितजी की निजी पुस्तकों के साथ था और वहीं से लापता है! उनकी अकाल मृत्यु के कारण 'भरतपुर-राज्य के कवि' शीर्षक पुस्तक अधूरी ही रह गई है।

एक बार हम लोग कविरत्नजी को यज्ञोपबीतके एक उत्सव में अनूप-शहर (ज़िला बुलन्दशहर) में गङ्गा-तट पर एक रम्य स्थान में ले गये थे। यह बात १९१५ ई० (फ़र्वरी) की है। वहाँ अतिथि-स्वागतार्थ निम्नलिखित अड़िल्ल छन्द की गुजराती कविता पढ़ी गई थी।

महमानो ओ व्हाला पुनः पधार जो।
तम चरणे अम सदन सदैव सुहायजो॥
करजो माफ हजारों पामर पाप जो।
दिनचर्य्या-माँ प्रभु पासे पण थाय जो॥

उन्नति-गिरिश्रृङ्गोना बसनारात में।
उतस्या रङ्क ग्रहेशो पुण्य प्रभाव जो॥
शुश्रूषा सारी ना हमने आवडी।
लेश न लीधो लज्जित उरों नो लाभ जो॥

इसके उत्तर के लिये उनसे आग्रह-पूर्वक प्रार्थना की गई। कविरत्नजी ने इसका उत्तर इसी छन्द में बनाकर गुजराती की गरबी चाल पर गाया। उनका उत्तर सरसता तथा मधुरता से पूर्ण है।

सुजन सदाहीं दया स्वजन पर कीजियो।
जोरि जुगल कर माँगत यह वर दीजियो॥
प्रिय प्रेमीसे बड़े आप सरदार हो।
उच्च विचार सुसज्जित परम उदार हो॥
करी हमारो जो शुश्रूषा है घनो।
किन्तु तुम्हारी हम पै नहिं सेवा बनी॥
लहि गङ्गा को तीर भुवन मन मोहिनो।
प्रकृति छटा मन भावन पावन सोहिनो॥
बड़ी असुविधाएँ जो जो तुम्हने सहीं।
दें कोटिन धनवाद उऋण तोऊ नहीं॥
हम लोगन की लोला चित न बिचारियो।
आप बड़े सत अपनी ओर निहारियो॥

इसका उन्होंने गुजराती-अनुवाद भी कर दिया था जो बहुत कुछ अशुद्ध था। आप के जानने के लिये दो-चार शुद्ध चरण, जो मुझे याद हैं, लिखे देता हूँ।

प्रिय प्रेमीला पूज्य आप सरदार छो"
उच्च विचार सुसज्जित परम उदार छो।
आज हमारी कीधो शुश्रूषा घणी।
किन्तु न हम थी किंचित तम सेवा बणी॥

मुझको भी कविता से कुछ रुचि है और मैंने सत्यनारायणजी से कई बार कविता सिखाने के लिये प्रार्थना की ; किन्तु उन्होंने मुझसे यही कहा कि कविता के कुचक्र में पड़ने से कालिज की पढ़ाई को बहुत क्षति पहुँचती है। वे अपने बी० ए० की परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने का यही कारण बताया करते थे।

अधिक क्या लिखूँ ?

कविता कानन ललित कुंजकी कोकिल प्यारी।
कलित कंठ की कल कल कूक सुकवि मुदकारी॥
ललित कबित की लता लहलही नित लहराती।
रचना चारु विचित्र महक मंजुल महकाती॥
ब्रज भाषा मधु मधुर मत्त मधुकर सुखदाई।
नवजीवन की जग में जगमग ज्योति जगाई॥
हिन्द भाल की बिन्दी हिन्दी मात दुलारे।
काव्य रतन-गर्भा के शुचि कविरतन पियारे॥
जाहि 'सूर' ने नवरस जलसों स्नान करायो।
'हरिश्चन्द्र' जहि रुचिकर चन्दनचारु लगायो॥
गङ्ग नीर को अर्घ्य देय जहि 'गङ्ग' रिझायो।
जाको षोड़श पूजा करि 'केशव' सुख पायो॥

'नन्द' 'बिहारी' 'भूषण' भूषण साज सजायो।
जिन पद पदमनि 'तुलसी' तुलसी दलहिं चढ़ायो॥
जिह कर 'पदमाकर' निजकर आरतो उतारी।
ता ब्रजवाणी देवी के तुम गुणी पुजारी॥
सुन्दर सरल सुभाव सुधासम रस बरसायो।
कपट कुटिलता-हीन प्रेम-पूरित मन पायो॥
हिन्दी हित निष्कपट कठिन शुभ काज तिहारो।
प्रेरत हिन्दी प्रति नित चञ्चल चित्त हमारो॥
शुचि आदर्श तुम्हारो काज हमारे सारें।
हिन्दो प्रति हमहूँ निज तन मन धन सब वारें॥
जगव्यापो जीवन-रण महँ हम विजयी होवें।
दुखित दीन बल-हीन छीन हिन्दो दुख खोवें॥

श्रीरामनारायणजी चतुर्वेदी बी० ए० (प्रयाग)

लिखते हैं :—

"मुझे सत्यनारायणजी का दर्शन बन्धुवर श्रीअयोध्याप्रसादजी की कृपा से हुआ था। माई स्थान नामक मुहल्ले में एक बड़े योग्य महात्मा सारस्वत ब्राह्मण, जिनका नाम सोहनजी था, रहा करते थे। उनके पौत्र पं० ब्रजनाथ शर्मा सत्यनारायणजी के परम सुहृद थे। सोहनजी एक तरह के त्यागीजन थे। उनपर लोगों का बड़ा विश्वास था। आदमी गम्भीर और विचारवान थे। उनके दर्शन के हेतु मैं प्राय: जाया करता था। वहाँ सत्यनारायणजी की भेंट हो जाया करती थी। सत्यनारायणजी का काव्य-प्रेम देखकर उनसे

मेरी विशेष प्रीति उत्पन्न हो चली। जब कालेज से उनको अवकाश मिलता वे कृपा किया करते थे और वार्तालाप का आनन्द रहता था। जब कभी वे आते, कविता-सम्बन्धी विषयों पर वार्ता करते थे। पं०श्रीधर पाठक के "ऊजड़ग्राम" और एकान्तवासी योगी की जो प्रशंसा फ्रैडरिक पिनकाट ने की थी, उसपर हँसते थे और उनके निर्मित 'घन विनय' की बड़ाई करते थे। सत्यनारायणजी ने "ऊजड़ ग्राम" को अँग्रेज़ी पंक्तियोंका थोड़ा सा अनुवाद करके मुझे सुनाया भी था जो किसी प्रकार न्यून न था। तब हमने उनसे निवेदन किया कि जिसका एक अनुवाद हो चुका है उसमें श्रम न करके मेकाले के Lays of ancient Rome का अनुवाद कीजिये। सत्यनारायणजी ने यह संकल्प ठाना और उसे पूर्ण भी किया। वह इस समय एफ़० ए० में पढ़ते थे और मेकाले की 'हारेशस' नामक पुस्तक उनके पद्य-प्रकरणों में थी। उसी का अनुवाद उन्होंने किया था। उनके संस्कृत के कोर्स में कालिदास का रघुवंश भी था। उसके द्वितीय सर्ग के कुछ पद्यों का अनुवाद उन्होंने मुझे सुनाया था जो अच्छा था। "श्यामाद्य मानानि वनानि पश्यन" वाले श्लोक का अनुवाद जो उन्होंने किया था, ठीक न था। उसपर मैंने तीव्र आलोचना की। तब उन्होंने दूसरे प्रकार से यथार्थ अनुवाद किया। × × एक पुस्तक मैंने लिखी थी जिसका नाम था—'कामिनी क्रन्दन' उसकी इस पंक्ति पर वह बहुत प्रसन्न हुए थे।

> ''रूपवती, पर्वती, सती युवती एक नागर।
> नेहनटी पतिहटी, लठी, झटपटी मिटी मर॥''

इसमें एक पंक्ति का अनुवाद उक्त कवि ने इस प्रकार किया था—

> का तोऊ सों अधिक होति, उर ज्वाल हमारे ।"

सत्यनारायणजी के अवसान पर क्या कहा जाय ?

> "बागे अलम में उगा था,
> कोई नखले उम्मेद ।
> और यास ने काट दिया
> फूलने फलने न दिया ॥'

स्वर्गीय पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी

ने अपने १२।८।१६ के पत्र में मुझे लिखा था:—

"मेरा सत्यनारायणजी का परिचय पहले पहल सन् १६०६ में किसी समय हुआ था। एक दिन जब मैं प्रयाग में था, घूम कर. सायंकाल के समय, गृह पर आया तो निम्नलिखित शब्द एक स्लिप पर लिखे हुए मिले—

> "निरत नागरी नेह रत रसिकन ढिंग विश्राम ।
> आयो तुव दरसन करन सत्यनारायण नाम ॥

रात भर दर्शन की बड़ी अभिलाषा रही। प्रातःकाल आप फिर पधारे, तबसे अन्तकाल तक उनकी कृपा मुझ पर बनी रही। इतना अधिक माधुर्य्य किसी भी आधुनिक कवि की रचना में मैंने नहीं पाया और न इतनी शीघ्रता से इतनी अच्छी कविता करते मैंने और किसी को देखा है। × × × ब्रजभाषा का इतना प्रतिभा

शाली कवि शीघ्र फिर कोई होगा इसमें सन्देह मालूम होता है। जब कभी आप खड़ीबोली की ओर झुकते थे मुझे बड़ा बुरा मालूम होता था। कारण यह था कि खड़ीबोली के अनेक तुकबन्द हैं लेकिन व्रजभाषा के वे ही अकेले आधार और कर्णधार थे"।

श्रीयुत कन्नोमलजी एम्० ए० जज (धौलपुर) ने १। १२। १८ के पत्र में लिखा था—

"सत्यनारायणजी से मेरा ख़ूब परिचय था। वह मुझ पर बड़ी कृपा करते थे। जब कभी नयी कविता तैयार करते थे तो मुझे सुना देते थे। कभी-कभी तो सुनाने के लिये धौलपुर तक आने का कष्ट उठाते थे! पंडितजी बड़े सज्जन थे। उनकी सादगी पर सभी मोहित थे। उनकी कविता बड़ी सरस और मनोहर होती थी। उनके सुनाने का ढङ्ग निराला ही था। आप ऐसे शान्त स्वभाव और उदारचित्त थे कि कभी किसी की बात पर नाराज़ नहीं होते थे और न आपको कभी किसी की शिकायत करते सुनागया। आप सदैव प्रसन्नचित्त रहते थे और जिस समय किसी के समीप जाते थे तो उसको आनन्दमय कर देते थे। देहावसान के थोड़े दिन पहले पंडितजी एक प्रिय मित्र के साथ आये थे। "मालती-माधव" नाटक के अनुवाद करने में उन्हें जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था उनका हाल कहते थे। मैं उस समय अंग्रेज़ी के प्रसिद्धकवि शेली Adonis नाम की कविता पढ़ रहा था, जो बड़ी प्रभावशाली और सारगर्भित है। मैंने पंडितजी का ध्यान इस कविता की तरफ़ दिलाया और कहा

कि यदि आपको समय मिले तो इस कविता का हिन्दी-अनुवाद कर दें। पंडितजी ने बड़े प्रेम से कहा कि मैं इसके अनुवाद करने की यथाशक्ति चेष्टा करूँगा। मैंने आपको वह पुस्तक दे दी और पूर्ण आशा थी कि पंडितजी उसका थोड़े काल में ही अच्छा छन्दोबद्ध अनुवाद करके हिन्दी-साहित्य के भण्डार की वृद्धि करेंगे; पर दैव से किसी का वश नहीं है। पंडितजी का शरीर ही नहीं रहा!"

श्रीयुत जगन्नाथप्रसादजी शुक्ल, आयुर्वेद-पंचानन सम्पादक-सुधानिधि (प्रयाग)

ने आपने श्रावण कृ० १२ सं० ७६ के पत्र में लिखा था—

"पण्डित सत्यनारायणजी का मेरा प्रथम परिचय कदाचित सम्वत् १९६७ में हुआ था। पण्डित केदारनाथजी भट्ट यहाँ बी० ए० की परीक्षा देने आये थे, सत्यनारायणजी भी उन्हीं के साथ थे। उस समय वे कदाचित एफ़० ए० में पढ़ते थे। उनके सादे वेष को देखकर मुझे अनुमान भी नहीं हुआ कि ये अंग्रेज़ी पढ़ते अथवा जानते होंगे। केदारनाथजी ने आपका परिचय कराया और आपने भी अपना "भ्रमरदूत" और कुछ स्फुट कविताएँ सुनाकर आल्हादित किया। तभी से उनके साथ मेरा मैत्रीभाव और स्नेह-सम्बन्ध दृढ़ हो गया। इसके बाद एक बार वे अकेले उसी वर्ष में मिले। उस समय मैं मकान के ऊपरी भाग में था। यह दोहा लिखकर आपने अपने आगमन की सूचना दी।

"निरत नागरी नेह रत, रसिकन ढिंग विश्राम।
आयो हौं तव मिलन कों सत्यनरायण नाम॥"

प्रयाग में द्वितीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के समय वे प्रयाग पधारे और अपने साथ के मित्रों के अनुराध से उन्होंने सम्मेलन के सम्बन्ध में पिछली रात में ही कुछ कविता तैयार की थी। दूसरे सम्मेलन के कार्य्यकर्ताओं ने उसे पढ़ा न था और न पढ़ सकने का अवसर था। कविता पेंसिल से काट-कूट के साथ ऐसी लिखी हुई थी कि वे ही उसे पढ़ सकते थे। इसीलिये सम्मेलन के कुछ कार्य्य-कर्ता उसे पढ़ने देने पर सहमत न थे; क्योंकि उस समय तक आपका नाम भी सभी लोगों पर प्रभाव के साथ परिचित न था। उस समय मैंने अपने उत्तर-दायित्व पर बाबू पुरुषोत्तमदासजी से आग्रह कर कविता पढ़ने की आज्ञा दिलायी। कविता आरम्भ करते ही सबका सन्देह दूर हो गया। पहले कविता के सम्बन्ध में जिन्हें सन्देह था वे तथा अन्य उपस्थित सज्जन वाह वाह करने लगे! फिर तो धीरे धीरे आपकी कविताका आदर इतना बढ़ा कि आप राष्ट्रीय कवि माने जाने लगे।

द्वितीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के साथ ही २६ सितम्बर से प्रयाग में तृतीय वैद्य-सम्मेलन हुआ था। उसमें भी आपने स्वयं स्वागत सम्बन्धी कविता पढ़ी थी। कौशल से उसमें सभापति कविराज गणनाथ सेन, स्वागत-सभापति पण्डित शिवराम पाण्डे और मंत्री पं०जगन्नाथप्रसाद शुक्ल का नाम सन्निवेशित कर दिया था। कविता लोगों को बहुत प्रिय हुई। आपके नाम के साथ कविरत्न शब्द लगे

रहने से बहुतों को यह बोध हुआ कि आप बंगाल के कविराजों के समान 'कविरत्न' उपाधिधारी वैद्य हैं! इसलिये आपके लिये सभापति बनाने के लिये कई सज्जनों की चिट्ठियाँ अगले वर्षों में आईं। मथुरा के पंचम वैद्य-सम्मेलन के समय जब मैंने आपसे इस बात का ज़िक्र किया तब आप बहुत हँसे। प्रयाग के वैद्य-सम्मेलन के समय की एक बात मुझे अब तक नहीं भूली है। यद्यपि उस पर आजकल के लोग हँसेंगे; किन्तु मैं उसे लिख देना आवश्यक समझता हूँ। जिस समय आप अपनी स्वागत की कविता पढ़ रहे थे और लोग तन्मय होकर सुन रहे थे उसी समय जब इस पद का आरम्भ हुआ कि "शंकर दाजी शास्त्रि पदे की मुदित आतमा प्यारी। देखहु वह आशीश देति है पुलकित तन बलिहारी" और लोगों ने इसे फिर दुहराने के लिये कहा, उसी समय सभा में एक सर्प निकल पड़ा। उसके निकलते ही खलबली मचगई। किन्तु सर्प एक ओर गोंडरी मार कर स्थिर भाव से फन निकाल बैठ गया। किसी ने कहा स्वयं स्वर्गवासी शंकरदाजी शास्त्री पदे हैं, किसी ने कहा चरक भगवान हैं। जो हो, किन्तु जब तक यह पूरी कविता समाप्त नहीं हुई तब तक वह सर्प वहीं स्थित रहा और ज्योंही कविता समाप्त होगई त्योंही वह भी एक ओर खिसक गया! मथुरा के वैद्य-सम्मेलन के समय हिन्दी-साहित्य के प्रेमियों और सेवकों का भी एक छोटा दल उपस्थित होगया था। कविरत्न सत्यनारायणजी, नवरत्न पं० गिरिधर शर्मा झालरापाटन, अधिकारी जगन्नाथदास विशारद, गोस्वामी लक्ष्मणाचार्य्य, पं० नन्दकुमारदेव शर्मा तथा पंडित लक्ष्मीधर वाजपेयी

प्रभृति मुझ पर कृपा कर उपस्थित हुए थे। इन सबों के कारण एक दिन दो घंटे के लिये यह मालूम होने लगा कि यह वैद्य-सम्मेलन नहीं बल्कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन हो रहा है। × × × उस समय आप का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ा हुआ था। अपने गुरू की सम्पत्ति के अधिकारी होने के सम्बन्ध में आप जो मुक़द्दमा लड़ रहे थे उसकी दौड़-धूप के कारण आप को स्वास्थ्य से हाथ धोना पड़ा था। मैंने उस समय उन्हें सम्मति दी थी कि आप यदि विवाह करलें तो आपके स्वास्थ्य में उन्नति हो सकती है। उस समय तो यह बात हँसी में उड़ा दी थी किन्तु एकाध पत्र में भी जब मैंने यही बात लिखी तब आपने मुझ से कहा था कि एक बार स्वास्थ्य-सम्पन्न होजाने पर यह होसकता है। मैं नहीं कह सकता कि विवाह करने के सम्बन्ध में मेरा कथन भी किसी अंश में कारणीभूत हुआ था या नहीं। विवाह के पश्चात्, केवल एक बार मेरी उनसे मुलाक़ात हुई थी। इन्दौर के साहित्य-सम्मेलन में न पहुँच सकने के कारण उनकी अन्तिम कविता उन्हीं के मुखसे सुनने का सौभाग्य प्राप्त न हो सका। उनका स्वभाव जो सर्वश्रुत है,उसका मुझे भी अनुभव है। उनका स्वभाव सरल था, वर्ताव पूर्णसभ्यता-युक्त था। बात करने का ढङ्ग मनोहारी था और मित्रों के साथ वे निष्कपट प्रेम करते थे। साधारणतः हँसी-मज़ाक करने पर आप केवल मुस्करा देते थे और कभी-कभी मीठी चुटीली बात उत्तर में सुना कर चुप हो जाते थे। किन्तु काव्य की आलोचना होने पर, विशेषकर ब्रजभाषा पर कुटिल आक्षेप होने पर, आप क्रोध के मारे आपे से बाहर भी

हो जाते थे; किन्तु अपने आलोचक से कभी अभद्र व्यवहार नहीं करते थे। कविता आपकी मधुर, रसीली चुटीली, भावपूर्ण और ऊँचे तथा सरल हृदय के उद्गारों से पूर्ण रहती थी। ब्रजभाषा में होने से वह अधिक कर्ण सुखद हो जाती थी। किन्तु सबसे बढ़-कर आपका कविता पढ़ने का ढंग अपने निज का और आकर्षक था। आपकी कविता आपके मुख से ही सुनने पर उसका आनन्द कई गुणा अधिक हो जाता था। आपकी कविता सच्चे हृदय से निकलती थी, इसीलिये हृदय में स्थान कर लेती थी।"

श्रीयुत शालिग्रामजी वर्म्मा (अलीगढ)

लिखते हैं:—

'कविरत्न पंडित सत्यनारायणजी से कई अवसरों पर साक्षात्-कार होजाने के पश्चात् १६११ मे एक बार पं० बदरीनाथ भट्ट के यहाँ मेरा उनसे पूर्ण परिचय हुआ। इसी दिन से हम लोग एक-दूसरे को अधिक जाननेकी चेष्टा करने लगे। प्रायः शाम को जब मैं, कुँवर नारायणसिंह तथा बदरीनाथ भट्ट टहलने जाते तो पंडितजी की तथा ब्रजभाषा के अन्य कवियों की कविताओं की हास्योत्पादक समालोचना किया करते थे। पर जैसे-जैसे पंडितजी की कविताएँ मैं अधिक सुनने लगा मैं उस ओर आकर्षित होने लगा और कुछ दिनों में इस ठठोल-मंडली का उदासीन मेम्बर रहा। अब भट्टजी की वर्षा मुझ पर भी होने लगी और मैं सत्यनारायणजी का साथी बताया जाने लगा। इसी प्रकार कुछ दिन हुए थे कि पंडितजी को दमा का

रोग हो गया और वह बड़ी भयानक अवस्था पर पहुँच गया। कभी-कभी हम लोग धांधूपुर भी जाते थे। पंडितजी के अच्छे होजाने पर हम लोगों ने धाँधूपुर जाना कम कर दिया। इसके पश्चात् जब उनका उत्तर-रामचरित भट्टजी के प्रेस में छपने लगा तो स्वयं दोपहर को भट्टजी के यहाँ आने लगे।

इन दिनों वे प्राय: घोड़े पर छाता लगाकर आया करते थे और हम लोग उनके घोड़े पर अनेक हास्योत्पादक तुकबन्दियाँ किया करते थे। 'खड़ी बोली' और 'पड़ी बोली' की ख़ूब भरमार होती थी।

भैया सत्यनारायण की सौम्यमूर्ति छोटे से लाल टट्टू पर बिराजमान तथा सफेद कपड़ा चढा पुराने ढँगका छाता लगाये हुए इस समय भी मेरे नेत्रों के सामने है। हम लोग इस विषय में उन्हें बहुत कुछ कहते थे, पर वे तो सरलता की मूर्ति थे, हँसकर चुप हो जाया करते थे। वे बेहद भोले थे और हम लोगों पर पूर्ण विश्वास रखते थे। प्राय: धूप में गाँव से चलकर आने से उनके सिर में पीड़ा हो जाती थी। इस अवसर पर जब हम लोग भट्टजी की बैठक में लेटे होते थे तो भट्टजी सिर का दर्द दूर करने के बहाने उनसे तरह-तरह की क़वायद कराया करते थे और पंडितजी भी, जैसा उनसे कहा जाता, वैसा करने के लिये तैयार हो जाते थे। कभी उन्हें आँख मींचकर लेटाया जाता था तथा उनके माथे पर हाथ फेरकर भट्टजी बड़ी गम्भीरता से "छू-मतर" पढ़ते थे! कभी मेस्मरेज़म द्वारा उनका दर्द दूर किया जाता था! पर थोड़ी देर इन सब क्रियाओं के हो

जाने के बाद उनसे जब पूँछा जाता—"अब आपके सिर का दर्द कैसा है ?" तो उनका यही उत्तर होता था—"अब तो नहीं मालूम होता है !" उनकी सरलता के अनेकों उदाहरण हैं। जिसने उन्हें एक बार देखा वह उनकी सरलता तथा निष्कपट भाव से बिना आकर्षित हुए नहीं रह सका। उनके सारे जीवन का रहस्य उनकी सरलता तथा प्रेम था।

भरतपुर में जब वहाँ की हिन्दी-साहित्य सभा का वार्षिक अधिवेशन हुआ था, मैं तथा कुँवर नारायणसिंह पण्डितजी के साथ थे। हम लोग एक ही जगह रहे और रात को उनके बहुत हठ करने पर भी उन्हीं के पास सोये। इस समय भी उनको दमे से कष्ट था और वे रात को पेट के बल सोया करते थे तथा प्रायः सारी रात उन्हें खाँसते बीतती थी। इसी कारण उन्होंने हम लोगों से अपने पास न लेटने देने की हठ की थी। इसी रात को एक घटना यह हुई कि पण्डितजी के बार-बार खाँसने से ग्वालियर से आये हुए कुछ प्रतिनिधियों की नींद में ख़लल पड़ा और जब वे इस विषय की शिकायत आपस में करने लगे और पण्डितजी के भी कानों में यह भनक पड़ गई तो आपने कविता सुनाना शुरू किया। इस पर वे लोग सोना भूलकर हम लोगों के बिस्तरे पर उठ आये और पंडितजी से और भी कविता सुनाने के लिये प्रार्थना की। इसके पूर्व हम लोग सो रहे थे। जब कविता पाठ होने लगा तो हम भी जाग गये। उन प्रतिनिधियों के चले जाने के बाद पंडितजी ने हँसते हुए 'कविता कुत्ती' को फटकारने की यह घटना हमें सुनाई।

एक बार आषाढ़ की पूर्णिमा पर मैंने उनसे बहुत आग्रह किया कि आप गोबर्धन में गङ्गा स्नान के लिये मेरे साथ चलिये। अधिकारी जगन्नाथदास भी हमारे साथ जाने को राज़ी हुए; पर अन्त में ये किसी कारण से न जा सके और मैं तथा पंडितजी ही चल पड़े। उस समय आपने अधिकारीजी के विषय में एक मज़ेदार पद्य लिखा था। वह यह था :—

"तुम्हें शतशः धिकार।
तिरस्कार के योग्य आप हो अबसे सकल प्रकार॥
इक्के को छुड़वाया हमसे देकरधोखा भारी।
प्रण पूरा न किया पुनि तुमने इसी योग्य अधिकारी॥
देकर हमको धोखा ऐसा क्या फ़ाइदा उठाया।
वहाँ ठहर क्या अंडा सेया कैसा चित भरमाया!!
पुण्यतीर्थ को छोड़ वृथा ही कोरा क्लेश कमाया।
चमचीचड़ चमगद्दड़ तुमने इसको वृथा सताया॥
कारण लिखिये ठीक अगर हो क्षमा-प्राप्ति की आशा।
नहिं तो रसिया गाते फिरिये लिये हाथ में ताशा॥"

हम लोग रात को मथुरा में भरतपुर की विकालत में ठहरे और सबेरे ही स्नानकर गोबर्द्धन चल दिये। वहाँ पहुँचकर पंडितजी ने पुनः स्नान किया और परिक्रमा करने के पश्चात् हम लोगों ने गिरिराज के दर्शन किये। मेरे पिताजी ने पंडितजी से कहा था कि वे गिरिराज महाराज से प्रार्थना करें तथा इस अवसर पर प्रतिवर्ष वहाँ आकर दर्शन और परिक्रमा करें तो उनका दमा जाता रहेगा।

पंडितजी ने बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ गिरिराज के दर्शन कर यही प्रार्थना की और इसके बाद हम लोग घर लौटे। घर जाकर मेरी माताजी के बड़े आग्रह पर पंडितजी ने डरते-डरते कलाकन्द और कलमी आम खाये। इसके पश्चात् दोपहर को भी बहुत कुछ डरते हुए भोजन किया। भोजन करने के पश्चात् वे सिर के दर्द की शिकायत करने लगे। मैंने उन्हें सो जाने की सलाह दी। प्रायः १ बजे पंडितजी सो गये और ऐसे बेहोश सोये कि ५ बजे बाद उनकी नींद खुली। दमा होने के बाद उन्हें यह पहला ही अवसर था कि वे इस प्रकार बेहोश सोये हों। मुझे भी तथा उनको भी इस पर बड़ा आश्चर्य्य हुआ। इस समय गज और ग्राह की लड़ाई समाप्त हो चुकी थी। पंडितजी को जब यह मालूम हुआ कि सो जाने के कारण उन्होंने गज और ग्राह की लड़ाई नहीं दीख पाई तो उन्हें खेदहुआ, पर जब उन्हें समझाया गया कि वास्तव में आज भगवानने उन्हें दमा रूपी ग्राह से उबारा है तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। इसके बाद हम लोग गोबर्धन की परिक्रमा को गये और रात को ब्यालू करके सो गये। उस दिन रात को भी पंडितजी ऐसे बेख़बर सोये कि सबेरे ही उनकी आँख खुली। परमात्मा की कृपा से उनकी दमा की बीमारी दूर हो गई और पंडितजी को यह विश्वास हो गया कि गिरिराज महाराज की कृपा से ही उन्हें आरोग्य प्राप्त हुआ इस घटना के पश्चात् सत्यनारायणजी प्रतिवर्ष आषाढ़ की पूर्णिमा पर गोबर्द्धन जाकर स्नान-दर्शन तथा परिक्रमा किया करते थे।

अब कुछ मित्रों के आग्रह से सत्यनारायणजी विवाह के प्रश्न

पर भी विचार करने लगे थे। आगरे में गोस्वामी व्रजनाथ शर्मा तथा चौबे अयोध्याप्रसादजी पाठक ने उन्हें इस विषय में बहुत कुछ समझाया-बुझाया और हर तरह पर अकाट्य तर्कों द्वारा उन्हें निर्वाक करना आरम्भ किया। उधर श्रीयुत मुकुन्दराम (पंडितजी के श्वसुर) के चित्ताकर्षक पत्रों तथा कन्या के मनोमुग्धकारी गुणों के वर्णन ने पंडितजी का भी चित्त स्थिर नहीं रहने दिया। पंडितजी की स्वाभाविक सरलता तथा निष्कपट व्यवहार ने अब उन्हें धोखा देना शुरू किया और वे इस समय डावाँडोल अवस्था में रहने लगे। उनकी शारीरिक अवस्था के विचार से पंडित बदरीनाथ भट्ट, पं० मयाशङ्कर दुबे तथा मैं उनके विवाह-सम्बन्धी प्रस्ताव से असन्तुष्ट थे। गोवर्द्धन के निकट श्री स्वामी हरिचरणदासजी एक महात्मा रहते हैं। यह भी पंडितजी से बड़ा प्रेम करते थे। पंडितजी जब गोवर्द्धन जाते तो अवश्य उनके दर्शन करते और अपनी कविता उन्हें सुनाया करते थे। एक बार मैंने पंडितजी के सामने ही उनके विवाह सम्बन्धी विचार स्वामीजी पर प्रकट कर दिये। स्वामीजी ने भी उन्हें विवाह करने से मना किया। दैवगति बड़ी प्रबल है। भोले-भाले सत्यनारायणजी विमुग्ध हो गये और हम लोगों के बहुत कुछ समझाने पर भी न माने। इस पर असन्तुष्ट हो हम लोगों ने उनके विवाह में न जाने की धमकी दी पर कुछ बस न चलते देख हम लोगों ने मौन धारण कर लिया। इस अवसर पर सत्यनारायणजी ने जिन शब्दों में हम लोगों से क्षमा चाही वे

बड़े ही हृदयग्राही तथा कारुणिक थे और हमको विवश हो, दुःखित हृदय से, उन्हें विवाह कर लेने को अनुमति देनी पड़ी।

सत्यनारायणजी का विवाह हुआ ; पर हम लोग अपने विचारानुकूल उसमें सम्मिलित नहीं हुए। मैंने उन्हें जो बधाई सूचक तार भेजा था, वह यह है -

"Fair luck and fortune may on you attend I is the sincerest good wish of your loving friend"

विवाह से लौटने पर पंडितजी ने जो पत्र मुझे भेजा था उसकी नक़ल यह है—

भैया,

छमवहु सब अपराध हमारे।
हम हैं सदा कृतज्ञ तुम्हारे॥

"सत्य"

इससे पश्चात् मैंने कभी विवाह-सम्बन्धी विषय में सत्यनारायणजी से बातचीत नहीं की तथा इसके बाद, खेद है कि, मैंने धाँधूपुर के भी दर्शन नहीं किये। एक बार अपनी स्त्री के बहुत आग्रह करने पर मैंने पंडितजी से उनके विवाह के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न किये थे जिनका उत्तर उन्होंने सन्तोष-प्रद दिया था। उस समय उनकी धर्मपत्नीजी को हिस्टीरिया के दौरे होते थे। पंडितजी जानते थे कि मुझे इस बात से रंज हुआ है कि उन्होंने मेरा कहना नहीं माना, अतः कई बार आगरे में उन्होंने मुझे इस विषय में बहुत कुछ समझाया।

मैंने उनसे कहा कि मेरे हृदय में इस विषय में उनके प्रति कुछ भी ग्लानि नहीं है; पर मेरे इस कहने से उन्हें सन्तोष नहीं हुआ।

पंडितजी ने मुझसे एक दिन गाँव चलने को कहा। मैं उस समय एक निजी कार्यवश उन्हीं के बुलाने पर आगरे गया हुआ था। चौबे अयोध्याप्रसादजी के यहाँ दो दिन इस अवसर पर मैं रहा। जब मैंने गाँव जाने से मना किया तो पंडितजी ने कहा--"अवश्य ही तुम मुझसे रूठे हुए हो जो गाँव नहीं चलते।"

अन्त में इस विषय में मुझे केवल यही लिखना पड़ता है कि भावी प्रबल होने के कारण ही पंडितजी ने हम लोगों की सम्मति कि अवहेलना की। इस विषय में मुझे कोई ग्लानि नहीं है। हाँ, पश्चात्ताप अवश्य है और रहेगा भी।

मुझे कई एक ऐसे अवसरों का स्मरण है जब उन्हें कई सज्जनों की दो-एक बातों से क्षोभ हुआ था। परन्तु जब मैंने उनसे इस विषय में कहा तथा उन सज्जनों की कड़ी आलोचना की तो उन्होंने बड़े मधुर तथा विनम्र शब्दों में मुझे समझाया; पर मुझे उससे सन्तोष नहीं हुआ। परन्तु पंडितजी के उदार हृदय ने उन सज्जनों को तुरन्त क्षमा कर दिया और उन लोगों पर कभी यह प्रकट नहीं होने दिया कि उन लोगों ने पंडितजी की आत्मा को दुःखित किया था। इस अवसर पर मैं यह लिखे बिना नहीं रह सकता कि पंडितजी के मित्र कहलानेवाले कुछ सज्जनों ने अपनी संकीर्णता तथा क्षुद्रता का ऐसा परिचय दिया कि जिसका बड़ा भारी परोक्ष प्रभाव पंडितजी

पर पड़ा। अपने स्वर्गवास के कुछ मास पूर्व से ही उनको एक प्रकार का विराग सा हो चला था। मैंने अपने पत्रों में उन्हें इस विषय में समझाते हुए उनकी इस अवस्था को प्राय: "स्मशान-वैराग्य" लिखा था! इसके उत्तर में पंडितजी ने एक बार लिखा था—'संभव है हमारा यह वैराग्य स्मशान में ही समाप्त हो'। मुझे खेद है कि इस अवसर पर मैं उनसे बहुत दूर था और भट्टजी भी प्रयाग में थे, इसलिये हम लोग पंडितजी के विचारों को पूर्णतया जानने में असमर्थ रहे। पत्रों में उन्होंने इस विषय पर स्पष्टतया कुछ नहीं लिखा। इस विषय में उनकी भाषा सांकेतिक तथा मार्मिक हुआ करती थी जिसका गूढ़ अर्थ समझना मेरे लिये प्राय: असम्भव था। इन पत्रों से यह अवश्य भासित होता था कि उनके हृदय पर किसी प्रकार का रंज है। पर कई बार लिखने पर भी मैं इस रहस्य का उद्घाटन नहीं कर सका।

सत्यनारायणजी जहाँ अपने मुग्धकारी गुणों द्वारा जन-साधारण के श्रद्धाभाजन और प्रिय थे वहाँ उसके साथ ही उनकी कविता के माधुर्य्य और लालित्य ने भी उन्हें इस कीर्ति के प्राप्त करने में कम सहायता नहीं दी थी। सम्भव है कि मेरा लिखना इस विषय में पक्षपातपूर्ण समझा जाय पर मैं यह लिखे बिना नहीं रह सकता कि हिन्दी के वर्तमान कवियों में स्वाभाविक कवि होने का गौरव उन्हें ही प्राप्त था।

सर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के आगरे पधारने के अवसर पर जो

कविता पंडितजी ने लिखी थी और उसे सुनकर कवीन्द्र रवीन्द्र ने जिन शब्दों द्वारा पंडितजी की रचना की प्रशंसा की थी वे शब्द किसी भी कवि के हृदय में गुदगुदी पैदा कर देते—और ख़ासकर ऐसे अवसर पर, जब कि वे एक जगद्विख्यात कवि के हृदय से निकले हों।

कविरत्नजी ब्रजभाषा में ही कविता नहीं करते थे, पर खड़ी बोली में भी लिखा करते थे। उनकी कविता में वह रस मौजूद है जिसे पढ़कर प्रत्येक कविता-प्रेमी के हृदय में उनके लिये श्रद्धा उत्पन्न होजाती है और उनके काव्य का मनन करने पर वह श्रद्धा बढ़ती ही जाती है। पंडितजी का काव्य सर्वथा निर्दोष न होने पर भी उच्च कोटि का है। खेद है कि उनके सब बड़े ग्रन्थ अनुवाद-ग्रंथ हैं। पर तो भी इस त्रुटि तथा परिमित अवस्था का विचार करते हुए यह कहने में कोई अत्युक्ति नहीं कि पंडितजी ने अपने कवित्व द्वारा अनुवाद-नीरसता की बहुत कम झलक अपने ग्रन्थों में आने दी है।

उनकी कविता हृदयग्राही, ओजस्विनी तथा अलंकार-युक्त होने पर भी स्वाभाविकता से कम गिरने पाती थी। उनके भाव-वैचित्र्य तथा वर्णन-शैली का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता था। उनके लेखों में व्यक्तित्व का आभास मौजूद है। पंडितजी के गद्य लेख भी अपने ढङ्ग के निराले होते थे। उन्हें पद्यमय गद्य कहना उचित होगा। आपके व्याख्यान सुनने में भी बड़ा आनन्द आता था। गद्य-पद्य का उचित समावेश कर आप उन्हें बड़ा मनोहर तथा ललित बना दिया करते थे।

मैं पंडितजी से उनकी छोटी छोटी त्रुटि और विशिष्ट गुण दोनों ही के कारण प्रेम रखता था। उनकी बुद्धिमत्ता तथा सरलता दोनों ही पर मैं मुग्ध था। उनके निश्चल देश प्रेम तथा उनकी अहर्निश निस्स्वार्थ साहित्य-सेवा के लिए मैं उनकी प्रशंसा करता था। ६ वर्ष तक पंडितजी के संसर्ग का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। इस बीच में मुझे जो अनुभव हुए उन्हीं को मैंने संक्षेप में लिख दिया है। ऐसा करने में मुझे मजबूर होकर कुछ निजी बातें भी लिखनी पड़ी हैं। आशा है कि उनके लिये विज्ञ पाठक मुझे क्षमा करेंगे।"

श्रीयुत नन्दकुमारदेव शर्म्मा

लिखते हैं—

लगभग १०-११ वर्ष तक मुझे भी सत्यनारायणजी के मित्र होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनसे मेरा परिचय सन् १६०८ में प्रिय-बन्धु श्रीयुत बदरीनाथजी भट्ट द्वारा हुआ था। उन दिनों मैं "आर्य्यमित्र' का सम्पादक था। भट्टजी आगरा-कालेज के विद्यार्थी थे। वे एफ़० ए० क्लास में पढ़ते थे। जून मास सा गर्मी का विशेष प्रकोप था। प्रोफ़ेसर राममूर्ति कई स्थानों में अपने अद्भुत खेल दिखलाते हुए आगरे पहुँचे थे। बदरीनाथजी और मेरी दोनों की इच्छा राममूर्ति के खेल देखने की हुई। भट्टजी मुझसे कुछ पहले ही खेल देखने पहुँच गये और चार आने का टिकट लिया। मैंने आठ आने का टिकट लिया; पर चार आने और आठ आने के स्थान

में कुछ अन्तर न था। दोनों स्थान एक से थे। उसपर भट्टजी ने स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्त के इस पद्य के आधार पर—

"बढ़े दिल की क्यों कर न अब बेक़रारी।
जो मर जाय यों भैंस लाला तुम्हारी!"

यह कविता पढ़ी—

"बढ़े दिल को क्योंकर न अब बेक़रारी।
जो यों ख़र्च होवे चवन्नी हमारी!"

भट्टजी की इस कविता पर बड़ी हँसी आई। खेल समाप्त हो जाने पर भट्टजी ने मेरा परिचय सत्यनारायणजी से कराया। साथ ही उन्होंने ऊपरवाला वाक्य पढ़ा। इसके पीछे चवन्नी अधिक ख़र्च हो जाने के विषय में सत्यनारायणजी ने भी कुछ कविता की थी जो पूरी आज तक मेरे देखने में नहीं आई। उसका एकाध पद्य पण्डित बदरीनाथजी भट्ट ने मुझे सुनाया था और मुझसे कहा था—"पूरी कविता सुनाई जायगी तो आप नाराज़ हो जाँयगे।" बस उस दिन से ही मेरी सत्यनारायणजी से मित्रता हुई। आगरे में रहते समय वे प्रायः मुझसे मिला करते थे। "आर्य्यमित्र" छोड़ने के बाद मैं विहार प्रान्त के पुराने अख़बार "विहार-बन्धु" में चला गया। वहाँ से मेरा सत्यनारायणजी का पत्र-व्यवहार नहीं हुआ। हाँ, भट्टजी प्रायः अपने पत्र में कोई न कोई बात सत्यनारायणजी के विषय में लिखा करते थे और उसमें राममूर्ति के तमाशे में चवन्नी अधिक ख़र्च हो जाने की चर्चा प्रायः रहती थी।"

१९०८ से लेकर सन् १९१० के दिसम्बर तक सत्यनारायणजी से मेरी भेंट नहीं हुई। सन् १९१० में प्रयाग में बहुत भारी प्रदर्शिनी हुई और साथ ही कांग्रेस का अधिवेशन भी हुआ। मैं बांकीपुर से कांग्रेस और प्रदर्शिनी देखने के लिये प्रयाग पहुँचा और उधर सत्यनारायणजी भी आगरे से आये। कांग्रेस पण्डाल में, कांग्रेस के अधिवेशन से एक दिन पहले,मैं एक बंगाली सज्जन से बातें कर रहा था। बातें समाप्त होने पर उक्त बंगाली सज्जन ने मुझसे मेरा पता माँगा! मैंने अपना एक कार्ड उक्त बंगाली सज्जन को दिया। मेरे पीछे सत्यनारायणजी खड़े हुए थे, पर मुझे इसकी कुछ ख़बर न थी। बङ्गाली सज्जन के चले जाने के पीछे सत्यनारायणजी धीरे से सामने आकर खड़े हो गये और झुककर मुझे नमस्कार किया। मेरी स्मरण-शक्ति में एक बड़ा भारी दोष है। वह यह कि मनुष्य के पहचानने में वह मुझे सदैव धोखा देती है जिसके कारण एक दिन मैं अपने प्यारे बन्धु बदरीनाथजी तक को नहीं पहचान सका था! सत्यनारायणजी को भी मैं नहीं पहचान सका था। सत्यनारायणजी ने पहले जो नमस्कार किया वह भी व्यङ्ग-पूर्ण था पर अब तो उनकी व्यङ्गोक्ति का कुछ ठिकाना ही न रहा। उन्होंने मज़ाक करते हुए ब्रज-भाषा-मिश्रित देहाती बोली में मुझसे कहा—"हम तौ गमार आदमी हैं, हमारे पास विज़िटिङ्ग-फ़िज़िटिङ्ग कार्ड नाँय।" उनके मुख से इस प्रकार के शब्दों की लड़ी निकलती हुई देखकर मैं पहचान गया कि ये और कोई नहीं, सत्यनारायणजी हैं। हाथ जोड़कर मैंने उनसे क्षमा माँगी, पर वहाँ तो बुरा मानने से कुछ सरोकार न था। वहाँ तो

'विज़िटिङ्ग कार्ड' और वर्तमान सभ्यता की दिल्लगी थी—और ख़ासी दिल्लगी थी। × × × जब-जब सत्यनारायणजी से मिलना होता था तब-तब साहित्य-समाज, काव्य और देश-सम्बन्धी बातें होती थीं। जब बातें समाप्त हो जातीं और बिछुड़ने का समय होता तब वे मुझसे व्यङ्ग-पूर्ण शब्दों में कहते:—"अजी आप एडीटर हैं, हम गमार देहाती आदमी ठहरे। आप इसकी आलोचना अच्छी कर सकते हैं।"

सत्यनारायणजी की अनेक बातें इन पंक्तियों के लिखते समय याद आ रही हैं और उनकी मधुर मूर्ति आँखों के सामने नाच रही है। क्या कहूँ? अधिक कहने-सुनने की अपने में सामर्थ्य भी नहीं है।"

श्रीयुत गोस्वामी लक्ष्मणाचार्य्यज़ी

लिखते हैं—

"कविरत्नजी का मेरा साक्षात् संवत् १९६६ में ब्रज-यात्रा में हुआ था। मथुरा की स्टेशन पर हम लोगों ने एक-दूसरे को अपनी अपनी कविता सुनाई थी और इस प्रकार हम लोगों का प्रेम-मिलन हुआ। यद्यपि समय की कमी के कारण विशेष बातचीत न हो सकी; पर पारस्परिक स्नेह की डोर से मन बँध गये थे इसलिये जब-तब पत्र व्यवहार होता रहा। जब कविरत्नजी उत्तर-रामचरित्र का अनुवाद करने लगे तब उन्होंने मुझे सूचना दी थी कि 'ब्रजभाषा में उत्तर-रामचरित्र उदय हो रहा है। देखें आप प्रेमियों तक उसका कैसा प्रकाश पड़ता है'। मैंने हर्ष प्रकट करते हुए लिखा कि सत्य पर

भगवान भी रीझते हैं ; फिर मनुष्य क्यों न रीझेंगे ! इसके पश्चात् छपा हुआ रामचरित्र अवलोकन किया । जिधर देखें उधर ही उस की सुगन्ध फैलती हुई दीख पड़ी । यहाँ तक कि खड़ीबोली के आचार्य्य मान्यवर द्विवेदीजी ने कविरत्नजी के उत्तर-रामचरित्र के विषय में सन्तोष प्रकट करते हुए यह कह दिया कि भाषा रसीली है । इस पर मैंने भी कविरत्नजी को बधाई दी । इसके उत्तर में उन्होंने लिखा कि भवभूति के उत्तर-रामचरित्र में मैंने कौन सी भलमनसी की ? उल्टा मक्षिका के ठौर मक्षिका कर दी । इस प्रकार विनोद-पूर्ण उत्तर दे उन्होंने अपनी निरभिमानता दर्साई थी ।

जब आपने सुना कि लखनऊ के पंचम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति श्रीयुत श्रीधर पाठक जी होंगे तब आप बड़े चाव से लखनऊ जाने के लिए तैयार हुए और मुझसे भी कहा – चलोगे ? मैंने कहा कि मैं तो गोबर्धन में विचरने जाता हूँ । यदि हरि इच्छा हुई तो पहुँचूँगा । विशेष तो व्रजविहार की ही इच्छा है । तब आपने कहा—"मैं तो व्रजभाषा की,पुकार लैके जरूर जाँऊगो । और कछू नाँय तो व्रजभाषा सुर-सरी की हिलोर में सबको भिँजाय तो आऊँगो ।"

भरतपुर की हिन्दी-साहित्य-समिति के द्वितीय अधिवेशन में नवरत्न श्रीयुत गिरिधर शर्मा, कविरत्नजी और अनेक सज्जन तथा मैं भी सम्मिलित हुआ था । समिति के उत्साही सभासद श्री जगन्नाथदासजी विशारद के उद्योग से एक दिन कवि-सम्मेलन हुआ था, जिसमें पुराने ढङ्ग के उत्तम उत्तम कवि भी सम्मिलित थे । इस दिन बड़ा ही आनन्द आया । मैंने 'सुमित्रा का लक्ष्मण को उपदेश'

शीर्षक कविता पढ़ी। उस पर गिरिधरशर्मा नवरत्नजी ने कहा कि जबलपुर के सम्मेलन में यह कविता फिर अवश्य पढ़ी जावे। तत्पश्चात् गिरिधर शर्माजी को "सुकन्या" नाम्नी कविता पढ़ी गई। ये खड़ीबोली की कविताएँ थीं। इनके बाद कविरत्नजी ने "माधव तुमहुँ भये बैसाख" और "माधव आप सदा के कोरे" इन पद्यों को बड़े मधुर स्वर में पढ़ा। इसका ज़िक्र करते हुए श्रीयुत अधिकारी जगन्नाथदासजी ने मुझसे कहा था :—

"उस वक्त मीटिङ्ग में अशान्ति थी और काम शुरू नहीं हुआ था। मैंने खड़े होकर कहा – 'व्रजभाषा के कविरत्न और खड़ीबोली के नवरत्न दोनों यहाँ मौजूद है। आशा है कि दोनों अपनी अपनी कविता का रसास्वादन करावेंगे।"

सत्यनारायणजी ने कहा – "नाय नाय, पंडितजी मेरे बड़े हैं, इनके सामने मैं नाय बोलुंगो।" फिर गिरिधर शर्माजी के अनुरोध करने पर सत्यनारायणजी ने "मानुष हौं तो वही रसखान" इत्यादि से कविता-पाठ प्रारम्भ किया। उपस्थित जनता ने उसे बड़े प्रेम पूर्वक सुना।" उस समय सभा प्रेम में निमग्न हो गई। उस समय भरतपुर के एक वृद्ध कविने भी अपने कवित्त सुनाये थे। उनके एक कवित्त का पिछला चरण मुझे स्मरण है। वह यह था—

"चन्द्र को चीर चारु राधिका बनायो है।"

वास्तव में वह कवि बड़े जानकार थे। जितने कवित्त उन्होंने कहे थे उन सबके अलङ्कार वे बतलाते गये थे। कविरत्नजी ने खड़े

होकर कहा था—"मृदुल काव्य के ऐसे-ऐसे प्रोफ़ेसरों से जब तक शिक्षा न ली जायगी तब तक प्रेम-रस बरसाने की गति नूतन कवियों में कैसे आ सकती है?"

कविरत्नजी विनोदी बड़े थे। गिरिधरशर्माजी की खड़ीबोली के कविता-पाठ के पश्चात् अपनी कविता पढ़ने के पूर्व कविरत्नजी ने कहा था—"सज्जनो, जाके मुँह में रसीली दाखें लग गई हैं वाइ कड़ुई निबौरी कैसे भावेंगी!" यह विनोद उन्होंने खड़ीबोली और ब्रजभाषा के पद्यों के विषय में किया था।

कविरत्नजी खड़ीबोली में भी कविता कर लेते थे; पर आप ब्रजभाषा के पूरे पक्षपाती थे। एक बार मैंने उनसे पूछा—"इस समय खड़ीबोली की कविता का प्रवाह इतना क्यों बह रहा है?" आपने उत्तर दिया—"पुरानी कविता में धड़क्के गड़क्के छड़क्के इत्यादि हैं इस कठिनता के कारण तथा पुरानी ब्रजभाषा में श्रृङ्गार के कारण"। मैंने कहा—"फिर आप पीछे क्यों लौटते हैं?" कविरत्नजी ने जवाब दिया—"जिसके लिये विश्वनाथ ब्रजनाथ हुए उस ब्रजभाषा से मुँह मोड़ना परमात्मा को रुठाना है। इस समय ब्रजभाषा में पद्य ऐसे होने चाहिए कि पुराना जटिलपन न रहे और भाषा ब्रज की होते हुए भाव नूतन हों"

इन्दौर के हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन में जब वे वहाँ गये थे तो मुझसे मिलते ही उन्होंने कहा था "लेउ जे "मालती-माधव" के प्रूफ़ देखौ, पर पैलें मोइ कछू खाइबे को देउ, मैं भूखन मर रह्यौ

हौं।" इसी तरह विनोद करते हुए कुछ फल खाकर कविरत्नजी ने कहा - 'यह सम्मेलन अच्छी सान कौ दीखि रह्यौ है। जा कौ कारण गान्धीजी कौ यश और यहाँ के कार्य्यकर्तन कौ प्रेम है।"

फिर आपने मुझसे कहा —'उत्तर रामचरित्र और "मालती-माधव" तो आपने देखई लयौ, पर भरतपुर की हिन्दी-साहित्य-समिति के मंत्री श्री अधिकारी जगन्नाथदास के पास मेरी "हृदय-तरंग" है। सो उनसे कहिके वाइ छपाइ डारियो; क्योंकि वा-में मेरे भावना भरे पद्य हैं।"

यह सुनकर मैंने कहा—"आप तो मेरे ऊपरऐसाभार डाल रहे हैं मानों आप कहीं जा रहे हों।" कविरत्नजी की आँखों में आँसू आ गये और वे कहने लगे—"मोइ तो ब्रज में ही छोड़कें अन्त कहूँ अच्छौ नाय लगैगौ। मैं तों ब्रज में ही आऊँगो क्योंकि मेरी ब्रज की ही वासना है।"

मेरी उनकी ये बातें श्री सेवाप्रसाद वकील के बँगले के बग़ीचे में हुई थीं। इतने में एक घोड़ा-गाड़ी आई जिसमें बैठकर हम दोनों प्रदर्शिनी देखने के लिये चले गये।

जब सत्यनारायणजी ने सम्मेलन के अवसर पर अपनी कविता पढ़ी तो उसके पूर्व रसखान के कवित्त पढ़े थे।

"जो खग हौं तो बसेरौ करौं वहि कालिन्दी कूल कदम्ब के डारन !"

कविता-पाठ करने के बाद आप मेरे पास आकर मेरी आधी कुर्सी पर बैठ गये। मैंने कहा— 'आपने रसखान के कवित्त क्यों पढ़े,

उनका यहाँ क्या अवसर था ?" कविरत्नजीने कहा – "मैंने सम्मेलन के भ्राताओं के सामने ये कवित्त इसलिये कहे हैं कि जिससे ये सब साक्षी हों कि चलती बार अवश्य, भगवान;से, सत्य ने, चाहे किसी रूप में हो, व्रजवास ही माँगा था' । मैंने कहा कि बस रहने दीजिये, मृत्यु का विनोद मुझे नहीं सुहाता ।" आपने कहा – "हरि इच्छा ।"

इन बातों से अब मुझे निश्चय हो रहा है कि जैसे कविरत्नजी विद्वान, सरल स्वभाव और अपने देश वेष भाव के दृढ़ भक्त थे वैसे भगवानके भी प्रेमी भक्त थे जो अपनी मृत्यु को जानकर सावधान हो गये थे ।"



मेरी तीर्थ-यात्रा

३० अगस्त १९२४



त: काल का सुहावना समय था। सवा छै बजे थे। बादल घिरे हुए थे। कभी-कभी दो-चार बूँद भी पड़ जाती थीं। मैं ताँगे में बैठा हुआ धाँधूपुर की ओर चला जारहा था। अकेला ही था।

सत्यनारायण की मृत्यु के बाद यह मेरी चतुर्थ धाँधूपुर-यात्रा थी। सत्यनारायण के कई मित्रों से मैंने धाँधूपुर चलने की प्रार्थना की थी पर उनके हृदय में वहाँ चलने के लिये कोई विशेष उत्साह या प्रेम नहीं पाया गया था। सत्यनारायणजी का एक Enlargement बड़ा चित्र मेरे साथ था और उनकी यह जीवनी तथा जीवन-चरित्र का मसाला भी मेरे साथ ही था। चित्र को मैं बड़ी सावधानी से लेजारहा था। ताँगेवाले से मैंने कह दिया था—"देखो भाई, ताँगा धीरे-धीरे चलाना, कहीं मेरी तसवीर टूट न जावे।" नगर के कोलाहल से दूर क़िले के पास होता हुआ मेरा ताँगा चला जारहा था और मैं सोच रहा था—"सत्यनारायणजी के कोई मित्र साथ क्यों नहीं आये? उसी समय मुझे कवि-सम्राट रवीन्द्रनाथ का एक पद्य याद आगया—

"एकला चलौ, एकला चलौ, एकला चलौरे।
यदि तोर डाक सुने केउना आसे,
तवे एकला चलौरे॥"*

मैं सोच रहा था—यह वही सड़क है जिसपर कई वर्ष पूर्व अपनी कविता पढ़ते हुए धुन में मस्त सत्यनारायण प्रायः दीख पड़ते थे। हाँ, कभी यही आकाश उस व्रज-कोकिल के मधुर स्वर से गुंजारित होता था। आगे मुझे वृक्षों के निकट एक प्याऊ दीख पड़ी। ग्रीष्म-ऋतु में धाँधूपुर से आते हुए सत्यनारायणजी यहाँ कभी-कभी पानी पिया करते थे। क्या इसी को ध्यान में रखते हुए उन्होंने ग्रीष्म-गरिमा में लिखा था -

ताप बस ह्वै अत्यन्त अधीर कहूं कुलिलत नहिं बछरा गाय।
द्रुमन तर पी प्याऊ कौ नीर, फिरत जिय जरति तऊ ना जाय॥

सड़क के दोनों ओर नीम वृक्ष थे जो सत्यनारायण के साथ ही साथ बड़े हुए थे। मैं कल्पना कर रहा था कि कहीं सत्यनारायण इन्हीं के पास से निकलकर यह कहने लगें—"क्यों भैया, मेरी ही कुटी पै चलतौ का? चलौ।"

मार्ग में कई बार मेरा हृदय भर आया और आखें डबडबा आईं। लगभग एक घंटे में धाँधूपुर पहुँचा।

* अर्थात्—यदि तुम्हारी पुकार सुनकर कोई न आवे तो अकेले ही चलो, अकेले ही चलो, अकेले ही चलो।

सत्यनारायण का चित्र और उनकी जीवनी का सामान उन्हीं के मन्दिर में जाकर रक्खा। उस समय मैं सोच रहा था—"अहा! क्या ही अच्छा होता यदि मैं कभी सत्यनारायणजी के सामने ही धाँधूपुर आता!"

ताँगा धाँधूपुर पहुँचा। गाँववालों को मैंने सत्यनारायणजी के मन्दिर पर बुलाया। गेंदालाल जाट, राधाकृष्ण, रामहेत, तुलाराम तथा अतरसिंह इत्यादि अनेक आदमी वहीं आये। जब मैंने सत्यनारायण के चित्र को वहाँ खोला तो गाँववाले बोले—"बस महाराज, जामें तो जान डारिबे की देर है। जे तौ मानों बोले इ देतें!" पर सत्यनारायण के बालसखा रामहेत की आँखों में आँसू थे! उन्हें देखकर मैंने कहा—"बस मेरा परिश्रम सफल है। सत्यनारायण के किसी मित्र का उनकी पवित्र स्मृति में दो आँसू बहाना, इससे अधिक मुझे चाहिए ही क्या?"

बड़ी देर तक बातचीत हुई। जब सत्यनारायण के प्रेमी साथी उनके गुणों का वर्णन अपनी मधुर ग्रामीण भाषा में कर रहे थे, कई बार उस करुणामय दृश्य से मेरा हृदय द्रवित होगया। लेकिन जब गेंदालाल जाट ने बड़े अभिमान से कहा—"महाराज नाम तौ सत्यनारायण कौ ई भयौ, वैसे काव्य तौ हमने मिलि-मिलि कैंई करी ही। आधी वाकी है, आधी मेरी।" मुझे हँसी आगई और मैंने कहा—"क्या आप भी कविता करते थे?" वह जाट बोला—"अरे महाराज, हम का करते, सरसुती करतो! सत्यनारायण ने बाईस जगह अपनी किताबन में मेरे नामकी छाप रक्खी है!"

बात यह थी कि सत्यनारायणजी अपनी कविता प्रायः गेंदालाल को सुनाया करते थे। कभी किसी ग्रामीण शब्द का अर्थ भी पूछ लेते थे। एक बार 'ढपान' शब्द का अर्थ उन्होंने पूँछा था। बस इसीसे गेंदालालजी भी अपने को "कविरत्न" समझने लगे हैं! हाँ, यह ठाकुर साहब की नम्रता है कि वे इस कीर्ति को स्वयं न लेकर अपनी 'सरसुती' को अर्पित करते हैं! अस्तु मैंने कहा—"अब मुझे—सत्यनारायणजी के स्थानों को दिखलाइए।" एक आदमी मेरे साथ हो लिया। उसने एक कोठरी को दिखलाकर कहा—"यह सत्यनारायण की कोठरी है। इसी में माता के साथ वे रहते थे।" मैंने सोचा क्या इसी में बैठकर, माता की मृत्यु के बाद, उन्होंने वह पद्य बनाया था—

"जो मैं जानतु ऐसो माता सेवा करत बनाई,
हाय हाय कहा करूँ मात तुव टहल नहीं कर पाई!"

मन्दिर की छतपर जाकर मैंने वह अटारी देखी जहाँ बैठकर सत्यनारायण कागज़-पेंसिल लिये हुए कविता किया करते थे। सामने अनेक वृक्षों के सुन्दर-सुन्दर पत्ते दीख पड़ते थे। यहीं बैठकर सत्यनारायण ने लिखा था—

"शीतल प्रभात बात खात हरखात गात
धोये-धोये पातनु की बात ही निराली है!"

कोठरी के सामने की छत पर पत्थर की दो पटियाँ बिछी हुई थीं। हरियाली ही हरियाली दीख पड़ती थी! सामने प्रेमपूर्ण कविता का साक्षात्स्वरूप—ताजबीबी का रोज़ा—दिखाई देता था। कवि की

प्रतिभा के विकास के लिए भला इससे अधिक उपयुक्त स्थान और कहाँ मिल सकता था ?

क्या इसी छत पर से वह ध्वनि कभी निकली थी ?--

"भयो क्यों अनचाहत को संग !"

फिर हम उस कमरे में गये जहाँ सत्यनारायण ने अपनी अन्तिम स्वास ली थी कमरा टूटा फूटा और गिरा हुआ था। राधाकृष्ण ने कहा—"मरते समय सावित्री सामने खड़ी थी। सत्यनारायण ने इशारे से उसे सामने से अलग करा दिया !"

श्रीमती सावित्री देवी ने अपने १६। १२। १८ के पत्र में लिखा था - "मैंने कई आवाज़ दीं, सब निष्फल। ज़ोर से घबराकर मैंने अपना हाथ सिरहाने की तरफ़ पट्टी परदे मारा। एकदम चौंककर मेरी ओर देखा और सदा के लिये हतभागिनी से विदा लेली !"

६ वर्ष बाद, उसी स्थान पर—स्थान नहीं, व्रजभाषा के अन्तिम कवि के तीर्थ स्थान पर—खड़े होकर मैं सोचने लगा—"सत्यनारायण को उस अन्तिम दृष्टि में क्या भाव भरे थे ?"

प्रिय पाठक ! क्या आप इस प्रश्न का उत्तर दे सकते हैं ? आप कल्पना कीजिए और मुझे विदाई दीजिए।



श्रीगांधी-स्तव

(१)

जय जय सदगुन सदन अखिल भारत के प्यारे।
जय जगमधि अनवधि कीरति कल विमल उज्यारे॥
जयति भुवन-विख्यात सहन-प्रतिरोध सुमूरति।
सज्जन समभ्रातृत्व शान्ति की सुखमय सूरति॥
जय कर्मवीर त्यागी परम आतम-त्यागि-विकास-कर।
जय यस-सुगंधि-बिरतन करन गांधी मोहनदास वर॥

(२)

जय परकाज निबाहन कृतबन्दी गृह पावन।
किन्तु मुदित मन वही भाव मंजुल मनभावन।
मातृभक्त जातीय भाव-रक्षण के नेमो।
हिन्दी हिन्दू हिन्द देश के साँचे नेमी।
निज रिपुहौं कौ अपराध नित छमत न कछु शंका धरत।
नव नवनीत समान अस मृदुलभाव जग-हिय हरत॥

(३)

जयति तनय अरु दार सकल परिवार मोह तजि।
एकहि व्रत पावन साधारन ताहि रहे भजि॥
जय स्वकार्य तत्परतारत अरु सहनशील अति।
उदाहरन करतव्य-परायनता के शुचमति॥

जय देशभक्ति-आदर्श प्रिय शुद्ध चरित अनुपम अमल।
जय जय जातीय तड़ाग के अभिनव अति कोमल कमल॥

(४)

जय बिपत्ति में धैर्य्य धरन अविकल अविचल मन।
दृढ़ व्रत शुच निष्कपट दीन दुखियन आस्वासन॥
जय निस्स्वारथ दिव्य जोति पावन उज्जलतर।
परमारथ प्रिय प्रेम-बेलि अलबेलि मनोहर॥
तुम से बस तुमहीं लसत और कहा कहि चित भरैं।
सिवराज प्रताप ऽरु मेज़िनी किन-किन सों तुलना करैं॥

(५)

एक ओर अन्याय, स्वार्थ की चिन्ता बाढ़ी।
अत्याचार अपार घृणित निर्दयता ठाढ़ी॥
ऊपर ओर मनुषत्व स्वत्व की मूरति निर्मल,
कोमल अति कमनीय किन्तु प्रतिपल प्रण अविचल॥
यहि देवासुर संग्राम में विदित जगत की नीति है।
बस किंकर्तव्य विमूढ़ बहु भूलि परस्पर प्रीति है॥

(६)

अपुहिं सारथी बने कमलदल आयत लोचन।
अरजुन सों बतरात विहँसि त्रयताप-बिमोचन।
धीरज सब बिधि देत यही पुनि-पुनि समझावत।
दैन्यपलापन एकहु ना। मोहि रन में भावत॥
इक निमितमात्र है तू अहे क्यों निज चित विस्मय धरै।
गोपालकृष्ण मोहन मदन सो तुम्हार रक्षा करै॥

(७)

यहि अवसर जो दियो आत्मबल को तुम परिचय ।
लची निरंकुश शक्ति भई मुदमई सत्य जय ॥
जननी जन्मभूमि भाषा यह आज यथारथ ।
पूत सपूत आप जैसो लहि परम कृतारथ ॥
लखि मोहन मुखचंद तव याके हृदय उमंग है ।
त्रयतापहरत मन मुद भरत लहरत भाव तरंग है ॥

(८)

निज कोमल वाणी सों हिन्दू जाति जगावौ ।
नवजीवन यहि नीरस मानस में उमगावौ ॥
अब या हिन्दी को सिर निर्भय उच्च उठावौ ।
सुभग सुमन या के पद पदमनु चारु चढ़ावौ ॥
यह नम्र निवेदन आप सों जिनको प्रेम अनन्य है ।
ह्वै न्यौछावर तव चरनु पै हम जीवनधन धन्य है ॥

सत्यनारायण

भयंकर खाँसी की दवाई का नुसखा

१ भाग बबूल की अन्तर छाल।

१० भाग जल।

$\frac{१}{१६}$ भाग काली मिर्च।

$\frac{१}{८}$ भाग मुलहठी (मधुयष्टि, जेठीमधु) चूर्ण।

$\frac{१}{८}$ भाग बबूल का गोंद।

$\frac{१}{८}$ भाग मिश्री।

इसके अवलेह से कास-श्वाँस में आश्चर्यजनक उपकार होता है।

सत्यनारायण




128
37365


37365